सैंटर फॉर डिस्टैंस एंड आनलाईन ऐजुकेशन
पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला

कक्षा : एम.ए. भाग–1 *सैमेस्टर–1*

पत्रा : चार (आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी) *एकांश संख्या : 1*

:विशेष अध्ययन) बाणभट्ट की आत्मकथा

माध्यम : हिन्दी

पाठ नं.

1.1 आचार्य हज़ारीप्रसाद द्विवेदी : एक सामान्य परिचय, जीवन, व्यक्तित्व और कृतित्व

1.2 'बाणभट्ट की आत्मकथा : उपन्यास या आत्मकथा

1.3 'बाणभट्ट की आत्मकथा' : कथावस्तु, पात्रा, संवाद, देशकाल तथा वातावरण भाषा–शैली और उद्देश्य

1.4 'बाणभट्ट की आत्मकथा' उपन्यास का उद्देश्य

1.5 'बाणभट्ट की आत्मकथा' का सांस्कृतिक महत्व

1.6 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में नारी–मुक्ति का सन्देश

1.7 आधुनिकता की दृष्टि से उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा'

1.8 उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' के प्रमुख गद्यांशों की सप्रसंग व्याख्या

पेपर चार : (विकल्प–1)
हजारीप्रसाद द्विवेदी : विशेष अध्ययन (HINM2PUP-T-104)

प्राईवेट विद्यार्थियों के लिए
पूर्णांक : 100
समय : 3 घण्टे
प्रतिशत : 35

रैगुलर और ओपन एंड डिस्टेंस लर्निंग विद्यार्थियों के लिए
लिखित परीक्षा : 75 अंक
आंतरिक मूल्यांकन : 25 अंक
पास अंक : लिखित में 26 अंक
आंतरिक में 9 अंक

उद्देश्य :–

1. विद्यार्थियों की साहित्य के प्रति रुचि उत्पन्न करना।
2. विद्यार्थियों को हजारीप्रसाद द्विवेदी के जीवन और साहित्य से अवगत करवाना।
3. विद्यार्थियों को हजारीप्रसाद द्विवेदी की विभिन्न विधाओं से परिचित करवाना।

अधिगम प्रतिफल :–

1. हजारीप्रसाद द्विवेदी के साहित्य के माध्यम से विद्यार्थी भारतीय संस्कृति से परिचित होंगे।
2. विद्यार्थियों का बौद्धिक विकास होगा।
3. विद्यार्थी में भारतीय संस्कृति के प्रति रुचि बढ़ेगी।

निर्धारित पाठ्य–पुस्तकें

1. बाणभट्ट की आत्मकथा (उपन्यास), राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।
2. सिक्ख गुरुओं का पुण्य स्मरण, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।
3. अशोक के फूल (मात्र आठ निबंध– अशोक के फूल, बसंत आ गया है, मेरी जन्मभूमि, सावधानी की आवश्यकता, भारतीय संस्कृति की देन, पुरानी पोथियां, आलोचना का स्वतन्त्र मान, मनुष्य ही साहित्य का लक्ष्य है)।

छात्रों और परीक्षकों के लिए आवश्यक निर्देश

1. प्रथम प्रश्न सप्रसंग व्याख्या से संबंधित होगा, जिसमें प्रत्येक रचना से दो–दो व्याख्याएं 'अथवा' के साथ शत प्रतिशत विकल्प के रूप में पूछी जाएंगी। पाठ्यक्रम से किसी भी रचना को छोड़ा नहीं जा सकता। तीनों रचनाओं की एक–एक व्याख्या अनिवार्य है। **3×6=18(रै.,ओ. एंड डि.ल)**

3×8=24 (प्रा.)

2. प्रत्येक रचना से संबंधित दो–दो दीर्घ प्रश्न 'अथवा' के साथ शत प्रतिशत विकल्प के रूप में पूछे जाएंगे। विद्यार्थियों को तीनों रचनाओं से संबंधित एक–एक दीर्घ प्रश्न का उत्तर देना अनिवार्य है।

3×9=27(रै॰,ओ. एंड डि.ल)

3×12=36 (प्रा.)

3. छह (प्राईवेट विद्यार्थियों के लिए आठ) लघु प्रश्न पूरे पाठ्यक्रम से बिना विकल्प के पूछे जाएंगे, जिनमें सभी का उत्तर अनिवार्य होगा। उत्तर सात से आठ पंक्तियों तक सीमित होगा।

6×5=30(रै॰,ओ. एंड डि.ल)

8×5=40 (प्रा॰)

अध्ययन के लिए सहायक पुस्तक सूची

1. हजारीप्रसाद द्विवेदी– सं. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी।
2. शान्ति निकेतन से शिवालिक – सं. शिवप्रसाद सिंह।
3. आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का साहित्य–चौथी राम यादव।
4. साहित्यकार और चिन्तक : आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी–राममूर्ति त्रिपाठी।
5. निबंधकार : आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी–डॉ. रवि कुमार 'अनु'।

आचार्य हज़ारीप्रसाद द्विवेदी : एक सामान्य परिचय, जीवन, व्यक्तित्व और कृतित्व

पाठ की रूपरेखा :

1.1.0 उद्देश्य

1.1.1 भूमिका

1.1.2 आचार्य हज़ारीप्रसाद द्विवेदी : एक सामान्य परिचय

1.1.2.1 जीवन और व्यक्तित्व

1.1.2.2 कृतित्व

1.1.2.3 स्वयं जांच अभ्यास

1.1.3 सारांश

1.1.4 शब्दावली

1.1.5 प्रश्नावली

1.1.6 सहायक पुस्तकें :

1.1.0 उद्देश्य :

इस सर्वप्रथम पाठ में हिन्दी साहित्य के मूर्धन्य विद्वान् आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी का सामान्य परिचय प्रस्तुत किया जाएगा। इनकी निर्धारित पुस्तकों 1. उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा', 2. 'सिक्ख गुरुओं का पुण्य स्मरण' और 3. निबन्ध–संग्रह 'अशोक के फूल' इन तीनों का अध्ययन करने से पूर्व इनके विद्वान् रचनाकार के बारे में यहाँ आवश्यक जानकारी उपलब्ध करवाना ही अभीष्ट है। यहाँ विशेष रूप से उनके जीवन, व्यक्तित्व और कर्तृत्व पर संक्षेप में प्रकाश डाला जा रहा है।

1.1.1 भूमिका :

हिन्दी साहित्य में आचार्य हज़ारीप्रसाद द्विवेदी का नाम किसी विशेष परिचय का मुहताज नहीं है, क्योंकि इन्होंने हिन्दी साहित्य के इतिहास और कबीर, जायसी, तुलसी इत्यादि मूर्धन्य रचनाकारों की समीक्षात्मक पुस्तकों की रचना करने के अतिरिक्त पंजाब के सिक्ख गुरुओं की देन के सम्बन्ध में भी एक महान् ग्रन्थ की रचना की है। इतना ही नहीं, इन्होंने मौलिक हिन्दी साहित्य की रचना के द्वारा भी माँ सरस्वती के भण्डार में

विशेष श्रीवृद्धि की है। इसके अन्तर्गत इन्होंने मौलिक हिन्दी उपन्यासों निबन्धों और कुछेक कविताओं की भी रचना की है। इनकी सभी कृतियाँ न केवल उच्चस्तरीय हैं, अपितु जीवन और जगत् के गहन निरीक्षण का ही सुफल रही हैं। इनके समूचे साहित्य में मानववाद और मानवतावाद के जीवन–दर्शन को ही वाणी प्रदान की गई है। यही कारण है कि इनका नाम हिन्दी साहित्य के इतिहास में सदैव स्वर्णिम अक्षरों में लिखा जाएगा। इस पाठ में इसी महान् साहित्यकार के जीवन, व्यक्तित्व और कर्तृत्व अर्थात् रचनाओं के बारे में पूरी जानकारी प्रदान करना विद्यार्थियों के लिए अत्यन्त आवश्यक और महत्त्वपूर्ण है।

1.1.2 आचार्य हज़ारीप्रसाद द्विवेदी : एक सामान्य परिचय

यहाँ विवेच्य साहित्यकार के बारे में आवश्यक जानकारी प्रस्तुत करना ही अभीष्ट है। सबसे पहले इनके जीवन और व्यक्तित्व पर संक्षेप में प्रकाश डाला जा रहा है। ऐसा इसलिए किया जा रहा है, क्योंकि किसी भी साहित्यकार के साहित्य का भली प्रकार से अध्ययन और समीक्षण करने के लिए उसके निजी जीवन, उससे जुड़ी प्रमुख घटनाओं और परिस्थितियों के साथ–साथ उसके अपने व्यक्तित्व आदि के बारे में जानना विशेष रूप से सहायक ही नहीं, कुछ स्थितियों में अत्यन्त आवश्यक भी हो जाया करता है। ऐसा करने से न केवल विवेच्य साहित्यकार के जीवन, व्यक्तित्व और रचनाओं का मनोवैज्ञानिक अध्ययन हो सकता है, अपितु उसके काल का भी गहन और सूक्ष्म अध्ययन सम्भव हो जाता है।

1.1.2.1 जीवन और व्यक्तित्व :

आचार्य हज़ारीप्रसाद द्विवेदी का जन्म श्रावण शुक्ला एकादशी के दिन संवत् 1964, अगस्त सन् 1907 ई॰ में उत्तर प्रदेश में स्थित बलिया ज़िले के एक छोटे–से गाँव में हुआ था, जो **'ओझ बलिया के आरत दुबे का छपरा'** के नाम से जाना जाता था। उनके बचपन का नाम **वैद्यनाथ द्विवेदी** था। इनके नाम के परिवर्तन का कारण यह बात बताई जाती है कि एक बार इनके पिता कोई मुकद्दमा लड़ रहे थे और उनके पास धन का अभाव था। सौभाग्य से उन्हें कहीं से **एक हज़ार रुपये** की प्राप्ति हो गई थी। इससे पिता की खुशी का ठिकाना न रहा। उन्होंने उस घटना से ही प्रभावित हो कर अपने सुपुत्रा का नाम **हज़ारी प्रसाद** रख दिया था, जोकि आगे चल कर उनके व्यक्तित्व की पहचान बन गया।

उनके प्रपितामह (पड़दादा) के नाम पर ही आरत दुबे के छपरा नाम वाला उनका गाँव बसाया गया था। ज्योतिष विद्या के ज्ञान के कारण ही उस गाँव में उनके वंश की विशेष प्रसिद्धि रही थी। उनके पिता का नाम था पंडित **अनमोल द्विवेदी**। वे स्वयं अत्यन्त अध्ययनशील प्रकृति के व्यक्ति थे। इनकी माता का नाम था **ज्योतिष्मती।** उनके इस सुपुत्रा हज़ारीप्रसाद का विवाह सन् 1927 में **भगवती देवी** के साथ हुआ था।

उनकी प्रारम्भिक शिक्षा उनके चाचा **पंडित बाँके दुबे** के संरक्षण में हुई थी। वे राष्ट्रकवि श्री मैथिलीशरण गुप्त के विशेष प्रेमी थे, इसलिए उन्होंने उनको बचपन में ही गुप्त जी के प्रसिद्ध कविता–संकलन 'भारत भारती' और 'जयद्रथ–वध' नामक खण्ड–काव्य रटा दिए थे। अपने उन्हीं चाचा के निर्देशन और संरक्षण में ही उन्होंने **बसरियापुर** के मिडिल स्कूल से प्रथम श्रेणी में मिडिल कक्षा की परीक्षा पास की। उनके चाचा बहुत बड़े शास्त्राज्ञ थे। उन्होंने उन्हें संस्कृत भाषा के व्याकरण की पुस्तक 'लघु सिद्धान्त कौमुदी' रटवा दी थी। उस समय उन्हें पन्द्रह रुपये मासिक की बिरला छात्रावृत्ति मिला करती थी। सन् 1923 में उन्होंने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से संस्कृत में प्रवेशिका की परीक्षा पास कर ली थी। इसी प्रकार सन् 1929 में उन्होंने साहित्य की परीक्षा भी पूरी कर ली थी और इसके उपरान्त उन्होंने पूर्वजों से प्राप्त संस्कृत भाषा के प्रति अपने गहरे

अनुराग के कारण ही संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी से संस्कृत साहित्य में शास्त्री तथा ज्योतिषशास्त्रा में 'ज्योतिषाचार्य' की उपाधियाँ भी प्राप्त कीं। उन दिनों यह विद्यालय महामना पण्डित मदनमोहन मालवीय द्वारा स्थापित काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से जुड़ा हुआ था, किन्तु आजकल इसे 'बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी' कहा जाता है।

संस्कृत की ये उच्च उपाधियाँ पाने के बाद वे 8 नवम्बर सन् 1930 में कविकुलगुरु श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर (टैगोर) के द्वारा स्थापित शान्ति निकेतन में एक हिन्दी शिक्षक के रूप में नियुक्ति पा कर चले गए। वहाँ आप लगभग दस वर्षों तक हिन्दी–संस्कृत विभाग में इन विषयों के प्राध्यापक रहे। सन् 1940 से ले कर सन् 1950 तक वे हिन्दी भवन के निर्देशक के रूप में कार्य करते रहे। इस मध्य वे विश्वकवि रवीन्द्रनाथ टैगोर, पंडित बनारसीदास चतुर्वेदी, विधुशेखर भट्टाचार्य और आचार्य क्षितिमोहन सेन जैसे मानवतावादी दर्शन से जुड़े विद्वान् साहित्यकारों के निकट सम्पर्क में रहे। यही कारण है कि उनके समस्त साहित्य पर मानववादी और मानवतावादी दर्शन की गहरी छाप देखने को मिलती है। पूरे बीस वर्षों तक उन्होंने हिन्दी साहित्य के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण कार्य सम्पन्न किए, उदाहरणतः सन् 1941 से सन् 1947 तक उन्होंने 'विश्वभारती पत्रिका' का सम्पादन किया। सन् 1950 में ही वे काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में हिन्दी विषय' के प्रोफ़ैसर और विभागाध यक्ष नियुक्त हुए। सन् 1952–53 में वे 'काशी नागरी प्रचारिणी सभा' के अध्यक्ष बने। सन् 1953 में रवीन्द्र भारती, वाराणसी के और सन् 1955 में 'अखिल भारतीय हिन्दी परिषद्' के अध्यक्ष नियुक्त हुए। सन् 1955 में ही उन्होंने अलीगढ़ विश्वविद्यालय में सन्त कबीर पर महत्त्वपूर्ण व्याख्यान दे कर हिन्दी साहित्य को अपने योगदान से लाभान्वित किया। उसी वर्ष वे राष्ट्रपति के द्वारा राज्य सभा के लिए मनोनीत किए गए।

विविध सम्मान :

उनकी रचना–प्रक्रिया के लिए 'अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन' ने उन्हें 'मंगला प्रसाद पुरस्कार' से सम्मानित किया था। नयी दिल्ली की 'साहित्य अकादमी' ने भी आपको दो बार पुरस्कार दे कर सम्मानित किया था। रवीन्द्र शताब्दी के अवसर पर आपको जहाँ 'रवीन्द्र पुरस्कार' दे कर सम्मानित किया गया था, वहाँ 'पुनर्नवा' उपन्यास को भी वर्ष की सर्वश्रेष्ठ कृति के पुरस्कार से नवाज़ा गया था। सन् 1949 में लखनऊ विश्वविद्यालय ने आपकी हिन्दी साहित्य–सम्बन्धी सेवाओं के कारण डी.लिट्. की सर्वोच्च मानद उपाधि से सम्मानित किया गया था। इसी प्रकार हिन्दी साहित्य सम्मेलन, इलाहाबाद ने भी 'आपको साहित्य वाचस्पति' नामक सर्वोच्च सम्मानोपाधि से सम्मानित किया था।

सन् 1957 में वे राष्ट्रपति के द्वारा 'पद्मभूषण' की उपाधि से सम्मानित किए गए। सन् 1958 में नेशनल बुक ट्रस्ट ने उन्हें अपनी सदस्यता प्रदान की थी। सन् 1960 में वे पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़ में हिन्दी विभाग के अध्यक्ष नियुक्त हुए और वहीं उसी पद पर सन् 1967 तक रहे। सन् 1962 में उन्हें पश्चिमी बंग साहित्य अकादमी द्वारा 'टैगोर पुरस्कार' दे कर सम्मानित किया गया।

स्वर्गवास : सन् 1979 ई. में आचार्य द्विवेदी को अस्वस्थ होने के कारण भारतीय चिकित्सा संस्थान, दिल्ली में भर्ती करवाया गया। वहाँ 18 मई के दिन उनका स्वर्गवास हो गया।

व्यक्तित्व :

अब उनके व्यक्तित्व पर विचार करते हैं। वे लम्बे और सुगठित शरीर के स्वामी थे और प्रथम दृष्टि में ही उनका डील–डौल प्रत्येक दर्शक को मनोमुग्ध कर दिया करता था। वे अधिकतर खादी की श्वेत धोती और कुर्ता ही

धारण किया करते थे। उनके कँधों पर सदैव भोजपुरी दुपट्टा लहराया करता था। उनके स्वभाव में महाकवि कालिदास की–सी सहृदयता, बाणभट्ट का–सा पाण्डित्य, सन्त कबीर की–सी निश्छलता, टैगोर की–सी व्यापक सौन्दर्य–चेतना, महामना पंडित मदनमोहन की–सी हार्दिक उदारता और महात्मा गांधी की–सी चारित्रिक दृढ़ता आदि मिलती थीं। उनके शत्रु तक उनके चरित्रा, व्यक्तित्व और कर्तृत्व की प्रशंसायें किया करते थे। उन्हें सही अर्थों में **'अजातशत्रु'** कहा जा सकता है। उनके व्यक्तित्व में प्राचीनता और नवीनता, परम्परा और आधुनिकता, भावयित्रीी प्रतिभा और कारयित्रीी प्रतिभा इन दोनों का ही ऐसा सुन्दर समन्वय मिलता है, जोकि अन्य किसी भी साहित्यकार में प्रायः दुर्लभ ही रहा है।

पं॰ विद्यानिवास मिश्र ने उनके व्यक्तित्व के सम्बन्ध में यह उचित टिप्पणी की है कि, "द्विवेदी जी के सान्निध य में जो आता है, वह दो बातों में हार जाता है। एक तो ठहाकों में, दूसरे कथाओं और लेखों में।"(ग्रन्थ 'शान्ति निकेतन से शिवालिक तक', लेख 'बाणभट्ट की आत्मकथा', पृष्ठ 37)।

डॉ॰ मीरा मिश्रा लिखती हैं कि "द्विवेदी जी के साहित्यिक जीवन पर (अयोध्यासिंह उपाध्याय) 'हरिऔध' जी का बड़ा प्रभाव पड़ा था। वे अपनी रचनायें इन्हें बड़े चाव से सुनाया करते थे और इन्हें कवितायें लिखने के लिए प्रेरित किया करते थे। इन्होंने स्वयं कहा था, "आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के पास जाते मुझे डर लगता था। बाबू श्यामसुन्दर दास जी भी मेरी पहुँच के बाहर थे। हरिऔध जी और लाला भगवानदीन दोनों की मुझ पर बड़ी कृपा थी। जब मैं व्रजभाषा में कवितायें लिखा करता था, मेरी रचनायें वीर रसपूर्ण हुआ करती थीं। मैं उनका पाठ बड़े ज़ोर–शोर से किया करता था। हरिऔध जी कभी–कभी मुझे **'आधुनिक भूषण'** कहा करते थे।"–(ग्रन्थ 'उपन्यासकार हज़ारीप्रसाद द्विवेदी : ऐतिहासिक सन्दर्भ और आधुनिक बोध', पृष्ठ 3)।

इसके अतिरिक्त उनके समूचे साहित्य पर कविकुलगुरु रवीन्द्रनाथ टैगोर की साहित्यिक और सौन्दर्यात्मक चेतना का बहुत प्रभाव देखा जा सकता है। प्रायः इनके कथनों और वक्तव्यों पर उनके स्वरों का प्रभाव देखा जाता था। उनके सामीप्य के कारण ही उनके व्यक्तित्व और साहित्य में जीवन और जगत् के प्रति एक व्यापक मानवतावादी दृष्टिकोण मिलता है। उनकी अपनी भी स्वीकारोक्ति है कि, "ग्यारह वर्षों तक लगातार रवीन्द्रनाथ जैसे महापुरुष के संसर्ग में रहना सौभाग्य की बात ही कही जायेगी, मुझे यह सौभाग्य मिला था। जान कर और अनजान में मैंने उनसे कितना लिया है, इसका कुछ हिसाब नहीं।"

–(निबन्ध–संग्रह 'विचार और वितर्क', पृष्ठ 41)।

इसके अतिरिक्त महात्मा गांधी के सत्य, अहिंसा, प्रेम और करुणा आदि भावों से सम्बद्ध विचारों से भी वे बहुत प्रभावित थे। अपने एक निबन्ध में उन्होंने गांधी जी के विषय में यह वक्तव्य दिया है, "पिछले सताइस वर्षों से मैं महात्मा जी की बातें सुनता आ रहा हूँ और उनके कार्यों को देखता आ रहा हूँ। कई बातों में उनके आदर्शों पर चलने का प्रयत्न भी किया है। महात्मा जी के प्रति मेरे मन में इतनी श्रद्धा रही है जितनी किसी के मन में उपास्य देवता की हुआ करती है। बहुत बड़े ज्योतिषाचार्य होने पर भी वे धार्मिक और सामाजिक अन्धविश्वासों के घोर विरोधी थे। जीवन में वे नियतिवादी और भाग्यवादी दर्शनों का भरसक विरोध ही किया करते थे।" –(निबन्ध–संग्रह 'कल्पलता', पृष्ठ 39)।

महात्मा गांधी के स्वर्गवास को लक्ष्य करके उन्होंने उनके प्रति अपनी श्रद्धा–भावना की अभिव्यक्ति इन शब्दों में की है, "हाय ! हतभाग्य भारतवर्ष, तू आज शोच्य है। तुझे वह रत्न मिला था, जो देवताओं को भी नहीं मिलता। गांधी भारतीवर्ष के अनेक युगों से संचित पुण्य का मधुर फल था। आज देश–जननी की गोद सूनी

है, आज वह सचमुच दरिद्र है।" –(निबन्ध–संग्रह 'कल्पलता', पृष्ठ 105)।

बहुत बड़े ज्योतिषाचार्य होने पर भी वे धार्मिक और सामाजिक अन्धविश्वासों के घोर विरोधी थे। जीवन में वे नियतिवादी और भाग्यवादी दर्शनों का भरसक विरोध ही किया करते थे। जीवन और जगत् के प्रति उनका दृष्टिकोण निवृत्तिमूलक न हो कर प्रवृत्तिमूलक था। दूसरे शब्दों में, वे निराशावादी न हो कर पूर्णतः आशावादी ही थे। डॉ॰ मीरा मिश्रा लिखती हैं कि "वे सच्चे राष्ट्रभक्त एवं भारतीय संस्कृति तथा राष्ट्रीयता के जागरूक सेनानी थे। इस तरह उनका हर क्षेत्रा में निर्बन्ध प्रवेश था। उनके व्यक्तित्व के विशाल वट की शाखायें विभिन्न क्षेत्राों में फैली हुई हैं। प्रतिकूल परिस्थितियों में भी अपने जीवन में द्विवेदी जी ने निरन्तर संयम का परिचय दिया है और अन्तर्विरोधों के बीच समाहार प्रस्तुत करना उनके जीवन का आदर्श रहा। द्विवेदी जी के साहित्य को पढ़ कर तो ऐसा लगता है कि पांडित्य उन्हें सदैव गम्भीर बनाये रहता है, किन्तु पास जाने में पता लगता है कि वह अत्यन्त सरल, ज़िन्दादिल और खुली तबियत के व्यक्ति थे। द्विवेदी जी अध्ययनशील और संत स्वभाव के ही व्यक्ति नहीं थे, वरन् वे एक सफल गृहस्थ भी थे। इसी के साथ वे फक्कड़ और मस्तमौला भी थे। उनके व्यक्तित्व में सदैव अनासक्त बनाये रखने वाली मस्ती रहती थी। अपनी कृतियों में भी वे एक 'मस्त मौला' के रूप में लक्षित होते थे।" –(मीरा मिश्रा, ग्रन्थ ' उपन्यासकार हज़ारी प्रसाद द्विवेदी : ऐतिहासिक सन्दर्भ और आधुनिक बोध, पृष्ठ 4–5)।

1.1.2.2 कृतित्व :

द्विवेदी जी ने विभिन्न क्षेत्राों में साहित्यिक कार्य सम्पन्न किए थे। यहाँ उनमें से कुछेक का विवेचन ही सम्भव है और यह केवल परिचयात्मक दृष्टि से ही प्रस्तुत किया जा रहा है। स्थानाभाव के कारण यहाँ उनके सभी क्या, प्रमुख ग्रन्थों की भी आलोचना प्रस्तुत करनी सम्भव नहीं है। डॉ॰ कृष्ण भावुक ने उनकी निबन्ध–साहित्य–सम्बन्धी देन को रेखांकित करते हुए 'छायावादोत्तर युग' शीर्षक के अन्तर्गत यह सार्थक और सारगर्भित टिप्पणी की है, "आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी (सन् 1907–1979) की शोध–मेधा, संस्कृत–ज्ञान, विद्वत्ता, मानवतावादी जीवन–दृष्टि, हास्य–व्यंग्यप्रियता, लालित्य, उदारहृदयता, नपी–तुल्य आाचार्य शुक्ल की–सी दृष्टान्त–सूक्तिमयी शैली इनके विविध विषयों वाले निबन्धों में मूर्त्तिमन्त हुई है। गुरुवर के पाण्डित्य और सहजता दोनों का ही लोहा उनके शत्राु तक मानते रहे हैं।"–(ग्रन्थ 'हिन्दी साहित्य का प्रामाणिक इतिहास, वर्तमान वर्ष, पृष्ठ 424.)

उनकी सर्वप्रथम पुस्तक **'सूर–साहित्य'** बताई जाती है। उसकी रचना उन्होंने शान्ति–निकेतन के अपने कार्यकाल में ही की थी। इस पुस्तक पर उन्हें इन्दौर (मध्य प्रदेश) की साहित्य–समिति के द्वारा स्वर्ण पदक प्रदान किया गया था। उसके बाद सन् 1934 में उनकी **'हिन्दी कविता'** नामक एक पुस्तिका 'नखदर्पण' पत्रिाका में प्रकाशित हुई थी। इसके बाद इनके महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ **'कबीर'** पर मंगलाप्रसाद पारितोषिक प्रदान किया गया था। इसके बाद इनके निबन्धों का एक संग्रह **'मध्यकालीन धर्म–साधना'** नाम से प्रकाशित हुआ था। इनके अगले ग्रन्थ का नाम था, **'सूर और उनका काव्य'**। इसके बाद उनका सर्वप्रथम मौलिक हिन्दी उपन्यास **'बाणभट्ट की आत्मकथा'** सन् 1946 में प्रकाशित हो कर बहुचर्चित हुआ था। वाराणसी की नागरी प्रचारिणी सभा ने इस कृति पर स्वर्ण पदक प्रदान किया था।

इन्होंने शान्तिनिकेतन के अपने निवासकाल में जो शोध–ग्रन्थ **'नाथ सम्प्रदाय'** नाम से लिखा था, वह अब

प्रकाशित हुआ और उस पर उत्तर प्रदेश सरकार ने पुरस्कार दे कर उन्हें सम्मानित किया था।

सन् 1973 में उन्हें साहित्य अकादमी, नयी दिल्ली ने **'आलोकपर्व'** नामक निबन्ध–संग्रह पर पुरस्कार दे कर सम्मानित किया गया था। इसके बाद उन्होंने विभिन्न विषयों पर साहित्यिक निबन्धों के जो संग्रह प्रकाशित करवाए, उनके नाम इस प्रकार हैं :–1. अशोक के फूल 2. विचार और वितर्क 3. हमारी साहित्यिक समस्यायें 4. विचार–प्रवाह इत्यादि। इसी बीच वे विभिन्न स्थानों पर जा कर उच्चस्तरीय व्याख्यान भी देते रहे, जो कालान्तर में पुस्तकाकार भी प्रकाशित हुए हैं। वाराणसी रहते हुए ही उन्होंने 'हिन्दी साहित्य', 'हिन्दी साहित्य का आदिकाल' और 'हिन्दी साहित्य की भूमिका' जैसे उच्चस्तरीय ग्रन्थों की भी रचना की थी।

सम्पादित ग्रन्थ :

उन्होंने अपने शिष्य डॉ. नामवरसिंह के साथ मिल कर **'संक्षिप्त पृथ्वीराज रासो'** नामक ग्रन्थ का भी सम्पादन किया था। इसी प्रकार डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी के साथ संयुक्त रूप से उन्होंने **'सन्देशरासक'** (सन् 1960) नामक ग्रन्थ भी सम्पादित करके प्रकाशित करवाया था। उनका तीसरा महत्त्वपूर्ण सम्पादित ग्रन्थ **'नाथ–सिद्धों की वाणियाँ'** है। उनकी पूर्वोल्लिखित सम्पादित कृतियों के अतिरिक्त अन्य ग्रन्थों में पं. जगन्नाथ तिवारी के साथ सम्पादित अभिनन्दन ग्रन्थ 'काव्यशास्त्रा', श्री अगरचन्द नाहटा के साथ संयुक्त रूप से सम्पादित ग्रन्थ **'घिताई चरित'** के अतिरिक्त **'रामानन्द की हिन्दी रचनायें'** (सन् 1969) इत्यादि ग्रन्थ भी विशेष रूप से उल्लेख्य हैं।

सम्पादन के अतिरिक्त द्विवेदी जी ने **अनुवाद** के भी कार्य सम्पन्न किए थे। यथा 'प्रबन्ध चिन्तामणि' और 'पुरातन प्रबन्ध–संग्रह' उनके द्वारा अनुवादित ग्रन्थों के ही नाम हैं।

इनके स्वतन्त्रा रूप से रचे कुछ ग्रन्थों के नाम इस प्रकार हैं :–1. मेघदूत : एक पुरानी कहानी 2. कालिदास की लालित्य योजना 3. मृत्यु जय रवीन्द्र 4. सहज साधना इत्यादि।

उन्होंने चण्डीगढ़ के निवासकाल में **'कुटज'** नामक निबन्ध–संग्रह प्रकाशित करवाया था। इसी प्रकार उसी काल में 'चारु चन्द्रलेख' नामक उपन्यास की रचना भी सन् 1973 में हुई थी। उसी काल की इनके द्वारा रचित छोटी पुस्तकों के नाम ये हैं 1. सन्तों की सूक्ष्म वेद 2. अपभ्रंश का रसात्मक साहित्य इत्यादि। इसी प्रकार हिन्दी संस्थान में रहते हुए उन्होंने दो उपन्यासों की रचना की थी 1. **पुनर्नवा** (सन् 1983) और 2. **'अनामदास का पोथा'** (सन् 1986)। इसके अतिरिक्त उन्होंने लखनऊ में 'साहित्य का मर्म' विषय पर कुछ व्याख्यान दिए थे। बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् में **'हिन्दी साहित्य का आदिकाल'** विषय पर भी उन्होंने भाषण किए थे, वे इसी विषय के नाम पर बाद में प्रकाशित भी हुए थे। हिन्दी साहित्य के इतिहास को आधार बना कर प्रकाशित होने वाले इनके अन्य ग्रन्थों के नाम ये हैं :– 1. साहित्य का साथी 2. हिन्दी साहित्य का इतिहास 3. हिन्दी साहित्य का उद्‌भव और विकास इत्यादि। डॉ. मीरा मिश्रा लिखती हैं, "इन सबके बावजूद द्विवेदी जी की इच्छा थी कि तुलसी पर भी एक अच्छा कार्य करें, जिस प्रकार उन्होंने सूर, कबीर आदि पर किया था, परन्तु अचानक मृत्यु के कारण उनकी यह इच्छा फलीभूत नहीं हो सकी।"–(ग्रन्थ 'उपन्यासकार हज़ारी प्रसााद द्विवेदी : ऐतिहसिक सन्दर्भ और आधुनिक बोध', पृष्ठ 6)।

प्रमुख कृतियाँ और उनके प्रकाशन–वर्ष :

अब हम हज़ारीप्रसाद द्विवेदी के प्रमुख ग्रन्थों के नाम और प्रकाशन–वर्ष सूचित कर रहे हैं :– 1. सूर–साहित्य (सन्

1936) 2. हिन्दी साहित्य की भूमिका (सन् 1940) 3. प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद (सन् 1940) 4. कबीर (सन् 1942) 5. बाणभट्ट की आत्मकथा–उपन्यास (सन् 1947) 6. संपादित ग्रन्थ 'नाथ–सिद्धों की बाणियाँ (सन् 1947) 7. 'अशोक के फूल'–निबन्ध–संग्रह (सन् 1948) 8. नाथ संप्रदाय (सन् 1950) 9. कल्पलता–निबन्ध–संग्रह (सन् 1951) 10. हिन्दी साहित्य का आदिकाल (सन् 1952) 11. हिन्दी साहित्य (सन् 1952) 12. दो बहनें – अनुवादित ग्रन्थ (सन् 1952) 13. मध्यकालीन धर्म–साधना (सन् 1952) 14. मेघदूत : एक पुरानी कहानी (सन् 1957) 15. विचार–विमर्श –निबन्ध–संग्रह (सन् 1959) 16. रवीन्द्रनाथ ठाकुर 17. काव्य में लालित्य योजना 18. निबन्ध–संग्रह 'आलोक' 19. उपन्यास 'चारुचन्द्रलेख' (सन् 1963) 20. श्री पृथ्वीनाथ शास्त्राी के साथ सम्पादित ग्रन्थ 'नाट्यशास्त्रा की भारतीय परम्परा और दशरूपक' (सन् 1963) 21. 'लाल कनेर'–अनूदित ग्रन्थ 22. 'पुनर्नवा'–उपन्यास (सन् 1973) 23. निबन्ध–संग्रह 'कुटज' (सन् 1974) 24. उपन्यास 'अनामदास का पोथा' (सन् 1976) इत्यादि।

गौण साहित्यिक कार्य और कृतियाँ :

आचार्य द्विवेदी ने धर्म, कला और संस्कृति के अतिरिक्त ज्योतिषशास्त्रा से सम्बन्धित अनेक ग्रन्थ लिखे हैं, जिनमें **'सहज साधना'** (सन् 1963) और **'सिक्ख गुरुओं का पुण्य स्मरण'** विशेष रूप से उल्लेखनीय कृतियाँ हैं। शान्ति निकेतन में रहते हुए उन्होंने कलकत्ता से प्रकाशित 'अभिनव भारतीय ग्रन्थमाला' का भी सम्पादन किया था। आप राजभाषा आयोग के सदस्य होने के साथ–साथ नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, हिन्दुस्तानी अकेडमी इलाहाबाद और साहित्य अकादमी, नई दिल्ली के भी महत्त्वपूर्ण पदों पर आसीन रहे थे। सन् 1970 से ले कर सन् 1972 तक वे जहाँ केन्द्रीय शिक्षा मन्त्राालय की 'हिन्दी भाषा का ऐतिहासिक व्याकरण' से जुड़ी हुई योजना के निदेशक रहे, वहाँ बनारस विश्वविद्यालय से अवकाश ग्रहण करने के बाद 'उत्तर प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी' के संचालक–मण्डल के भी अध्यक्ष तथा हिन्दी संस्थान के उपाध्यक्ष पद पर शोभायमान रहे थे।

उन्होंने **'कहानी'** नामक विधा के क्षेत्रा में भी विशेष कार्य सम्पन्न किया था। हिन्दी में बाल–साहित्य की कमी का संकेत उन्होंने 'साहित्यकारों का दायित्व' शीर्षक अपने निबन्ध में विदेशी विद्वान् **एण्ड्रयूज़** के सन्दर्भ में अपने एक कथन में किया था।–(हज़ारीप्रसाद द्विवेदी–ग्रन्थावली, भाग 10, पृष्ठ 105)। इसी कमी की पूर्त्ति करने के लिए उन्होंने 'पंचतन्त्रा' और 'हितोपदेश' के समान सरल, सुस्पष्ट और प्रवाहमयी भाषा में कुछ उपदेशपरक कहानियों की रचना की थी। ये कहानियाँ संख्या में केवल आठ ही हैं और इनके नाम ये हैं :–1. धनवर्षण 2. मंत्रा–तंत्रा 3. व्यवसायी बुद्धि 4. बड़ा क्या है 5. बड़ा कौन है 6. देवता की मनौती 7. प्रतिशोध और 8. अछूत। इनमें कुछ कहानियों में तो दोहरे कथानक हैं और कुछ कहानियाँ अत्यन्त सरल और सुबोध शैली में ही रचित हैं। 'पंचतन्त्रा' नामक संस्कृत का ग्रन्थ बालकों को चरित्रा और नीति–सम्बन्धी शिक्षा देने के लिए लिखा गया था। उस ग्रन्थ में मुख्य कथाओं के साथ ही अन्य अवान्तर या गौण कथाओं को भी शामिल किया गया था। उनमें दीर्घ समासों से रहित अत्यन्त सरल और सुबोध भाषा में बालकों को देश के उत्तरदायी नागरिक बनने के प्रयोजन से कहानियों का रोचक और सरस ताना–बाना गूँथा गया था। उन कहानियों में पशु–पात्रा भी मानवों जैसे देशभक्त और विचारशील प्राणी के रूप में चित्रित किए गए हैं। वे बच्चों को कर्त्तव्यपालन और सत्यनिष्ठा के महान् पाठ पढ़ाते हैं। उन कहानियों की ही शैली में आचार्य द्विवेदी ने वैसे ही पाठ बालकों को पढ़ाए हैं। यथा **'धनवर्षण'** कहानी में गुरु के शिष्य को, **'मंत्रातंत्रा'** कहानी में कुमार तथा **'अछूत'** कहानी में नीमू जैसे पात्राों को भी कर्त्तव्यों के प्रति जागरूक दिखाया गया है। जहाँ पंचतंत्रा ग्रन्थ के पात्रा अधिकतर कल्पना–लोक के ही निवासी प्रतीत होते हैं, वहाँ आचार्य द्विवेदी की इन

कहानियों के पात्रा हाड़–मांस के पुतले, इसी संसार के यथार्थवादी पात्रा लगते हैं। फिर भी इन कहानियों की एक सीमा की ओर संकेत करते हुए **श्री नरेन्द्र कोहली** ने यह टिप्पणी की है, "द्विवेदी जी ने कहानी को उपन्यास के तुल्य महत्त्व नहीं दिया और न ही उसके समान इसका दीर्घ विश्लेषण किया है।"

–(ग्रन्थ 'हिन्दी उपन्यास : सृजन और सिद्धान्त', सौरभ प्रकाशन, प्रथम संस्करण सन् 1979, पृष्ठ 209)

विभिन्न भाषण :

आपने जहाँ अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के कराची अधिवेशन की सन् 1946 में आयोजित 'साहित्य परिषद्' की अध्यक्षता की थी, वहाँ बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना के तत्कालीन संचालक आचार्य शिवपूजन सहाय के अनुरोध पर सन् 1952 में 'हिन्दी साहित्य का आदिकाल' विषय पर कुल 5 भाषण भी किए थे, जिनका उल्लेख इससे पहले भी किया जा चुका है।

1.1.2.3 स्वयं जांच अभ्यास

1. हज़ारीप्रसाद द्विवेदी की साहित्यिक रचना का क्षेत्रा अत्यन्त व्यापक है। कथन को स्पष्ट करें।

.....

.....

.....

1.1.3 सार :

आचार्य हज़ारीप्रसाद द्विवेदी की साहित्यिक रचना का क्षेत्रा अत्यन्त व्यापक रहा है। जहाँ उन्होंने अपनी भावयित्राी प्रतिभा के जौहर अपनी शोध–समीक्षापरक कृतियों में दिखाए हैं, वहाँ कारयित्राी प्रतिभा के उदाहरण अपने मौलिक हिन्दी उपन्यासों, निबन्धों और कहानियों के माध्यम से दिए हैं। विषयगत वैविध्य, मानववादी और मानवतावादी दृष्टिकोण, महाकवि तुलसीदास की–सी समन्वयवादी प्रतिभा, भावों और विचारों की गहनता, अभिव्यक्ति की विलक्षणता, शैली की अकृत्रिामता और सरलता, भाषा की उदात्तता होने पर भी सरलता और सुबोधता के साथ प्रसाद और माधुर्य गुणों से उसे लैस करने की विशेषता इनके साहित्य की कुछेक प्रमुख विशेषतायें रही हैं।

1.1.4 शब्दावली :

यहाँ उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में प्रयुक्त कुछ कठिन शब्द, विशेषतः संस्कृत तत्सम शब्द और साथ ही कोष्ठकों में उनके अर्थ दिए जा रहे हैं, ताकि छात्राों को इस उपन्यास के प्रसंग आदि समझने में आसानी हो। छात्राों को चाहिए कि वे इसी प्रकार के अन्य शब्द एकत्रा करके शब्दकोशों की सहायता से उनके अर्थ लिख कर उन्हें याद करने का अभ्यास करते रहें। ऐसा करने से उन्हें उपन्यास की विषय–वस्तु और भाषा–शैली को समझने में सुविधा होगी और निश्चित रूप से लाभ होगा।

कुलभ्रष्टा (जिसका वंश ही पतित या गिरा हुआ हो), दैवी (अलौकिक, स्वर्गिक), अननुकूल टीकाओं (प्रतिकूल आलोचनाओं), सद्धर्म (सच्चा धर्म), कुतर्क (बुरे तर्क या दलीलें), आयुष्मान् (चिरंजीवी, लम्बी आयु तक जीने वाला), संयत (संयमपूर्ण, अपने पर नियन्त्राण रखने वाला), अनुशीलन (ध्यानपूर्वक अध्ययन या निरीक्षण), सद्विचारों (अच्छे विचारों), दावाग्नि (जंगल की आग, लक्ष्यार्थ विनाश करने वाली या उसकी सूचिका), महासन्धि

ाविग्रहिक(राजप्रशासन में सेना का एक उच्च पद, जिसमें युद्ध और शान्ति का निर्णय करने का अधिकार होता है), नैरात्म्य–भावना (वस्तुनिष्ठ भावना, जिसमें वैयक्तिकता या आत्मनिष्ठता नहीं रहती है और एक प्रकार की तटस्थता की ही वृत्ति प्रधान हुआ करती है), चक्र (यहाँ हर्षकाल में होने वाली धार्मिक संगोष्ठी या प्रार्थना–सभा से आशय है), सार्थकता (उपयोगिता, अर्थपूर्णता, महत्ता), आजीवन (जीवन भर, पूरे जीवन, ताउम्र), फक्कड़ (अलमस्त, सांसारिक कामों से अलग, अपने में लीन मस्तमौला), सैन्य संगठन (सेना को गठित करने का कार्य या व्यवस्था), निर्जन वास (वन जैसे किसी एकान्त स्थान में जा कर निवास करना), पुरुष की मर्यादाहीन (किसी भी नैतिक सीमा से रहित या विहीन), शृंखलाहीन (क्रमहीन, बेतरतीब, बिखरी हुई, असंगठित), फेन बुद्बुद (पानी के झाग से बनने वाले बुलबुलों) इत्यादि।

1.1.5 प्रश्नावली (उत्तर–समेत)

इसी पाठ से सम्बन्धित प्रमुख और महत्त्वपूर्ण प्रश्न आगे दिए जा रहे हैं। आगे इनके सम्भवित उत्तर भी हैं। इन्हें देख कर मिलते–जुलते अन्य प्रश्न बना कर स्वयं उत्तर तैयार करने का अभ्यास करते रहें।

प्रश्न 1. आचार्य हज़ारीप्रसाद द्विवेदी के बारे में आप क्या जानते हैं, इनका संक्षिप्त परिचय दें ÷

उत्तर : हिन्दी साहित्य में आचार्य हज़ारीप्रसाद द्विवेदी का नाम किसी विशेष परिचय का मुहताज नहीं है, क्योंकि इन्होंने हिन्दी साहित्य के इतिहास, कबीर, जायसी, तुलसी इत्यादि मूर्धन्य रचनाकारों की समीक्षात्मक पुस्तकों की रचना करने के अतिरिक्त पंजाब के सिक्ख गुरुओं की देन के सम्बन्ध में भी एक महान् ग्रन्थ की रचना की है। इतना ही नहीं, इन्होंने मौलिक साहित्य की रचना के द्वारा भी माँ सरस्वती के भण्डार में विशेष श्रीवृद्धि की है। इसके अन्तर्गत इन्होंने मौलिक हिन्दी उपन्यासों और निबन्धों की भी रचना की है। इनकी सभी कृतियाँ न केवल उच्च स्तरीय हैं, अपितु जीवन और जगत् के गहन निरीक्षण का ही सुफल रही हैं। इनके समूचे साहित्य में मानववाद और मानवतावाद के दर्शन को ही वाणी प्रदान की गई है। यही कारण है कि इनका नाम हिन्दी साहित्य के इतिहास में सदैव स्वर्ण अक्षरों में लिखा जाएगा। इस पाठ में इसी महान् साहित्यकार के जीवन, व्यक्तित्व और कर्तृत्व अर्थात् रचनाओं के बारे में पूरी जानकारी प्राप्त करना विद्यार्थियों के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कहा जा सकता है।

प्रश्न 2. आचार्य हज़ारीप्रसाद द्विवेदी किन महान् लेखकों के सम्पर्क में रहे थे, जिनका प्रभाव उनके साहित्य पर पड़ा है ?

उत्तर : वे 8 नवम्बर सन् 1930 में कविकुलगुरु श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर (टैगोर) के द्वारा स्थापित शान्ति निकेतन में एक हिन्दी शिक्षक के रूप में नियुक्ति पा कर चले गए। वहाँ आप लगभग दस वर्षों तक हिन्दी–संस्कृत विभाग में इन विषयों के प्राध्यापक रहे। सन् 1940 से ले कर सन् 1950 तक वे हिन्दी भवन के निर्देशक के रूप में कार्य करते रहे। इस मध्य वे विश्वकवि रवीन्द्रनाथ टैगोर, पंडित बनारसीदास चतुर्वेदी, विधुशेखर भट्टाचार्य और आचार्य क्षितिमोहन सेन जैसे मानवतावादी दर्शन से जुड़े विद्वान् साहित्यकारों के निकट सम्पर्क में रहे। उनके समूचे साहित्य पर कविकुलगुरु रवीन्द्रनाथ टैगोर की साहित्यिक और सौन्दर्यात्मक चेतना का बहुत प्रभाव देखा जा सकता है। प्रायः इनके कथनों और वक्तव्यों पर उनके स्वरों का प्रभाव देखा जाता था। उनके सामीप्य के कारण ही उनके व्यक्तित्व और साहित्य में जीवन और जगत् के प्रति एक व्यापक मानवतावादी दृष्टिकोण मिलता है। उनकी अपनी भी स्वीकारोक्ति है कि, "ग्यारह वर्षों तक लगातार रवीन्द्रनाथ जैसे महापुरुष के संसर्ग में रहना सौभाग्य की बात ही कही जायेगी, मुझे यह सौभाग्य मिला था। जानकर और अनजान

में मैंने उनसे कितना लिया है, इसका कुछ हिसाब नहीं।"–(निबन्ध–संग्रह 'विचार और वितर्क', पृष्ठ 41)।

इसके अतिरिक्त महात्मा गांधी के सत्य, अहिंसा, प्रेम और करुणा आदि भावों से सम्बद्ध विचारों से भी वे बहुत प्रभावित थे। अपने एक निबन्ध में उन्होंने गांधी जी के विषय में यह वक्तव्य दिया है, "पिछले सताइस वर्षों से मैं महात्मा जी की बातें सुनता आ रहा हूँ और उनके कार्यों को देखता आ रहा हूँ। कई बातों में उनके आदर्शों पर चलने का प्रयत्न भी किया है। महात्मा जी के प्रति मेरे मन में इतनी श्रद्धा रही है जितनी किसी के मन में उपास्य देवता की हुआ करती है। बहुत बड़े ज्योतिषाचार्य होने पर भी वे धार्मिक और सामाजिक अन्धविश्वासों के घोर विरोधी थे। जीवन में वे नियतिवादी और भाग्यवादी दर्शनों का भरसक विरोध ही किया करते थे। (निबन्ध–संग्रह 'कल्पलता', पृष्ठ 39)।

प्रश्न 3. आचार्य द्विवेदी की प्रमुख कृतियों के नामों का उल्लेख करें ?

उत्तर : यहाँ हज़ारीप्रसाद द्विवेदी के प्रमुख ग्रन्थों के नाम और प्रकाशन–वर्ष सूचित कर रहे हैं :–

1. सूर–साहित्य (सन् 1936) 2. हिन्दी साहित्य की भूमिका (सन् 1940) 3. प्राचीन भारत में कलात्मक विनोद (सन् 1940) 4. कबीर (सन् 1942) 5. बाणभट्ट की आत्मकथा–उपन्यास (सन् 1947) 6. संपादित ग्रन्थ 'नाथ–सिद्धों की बाणियाँ (सन् 1947) 7. अशोक के फूल–निबन्ध–संग्रह (सन् 1948) 8. नाथ संप्रदाय (सन् 1950) 9. कल्पलता–निबन्ध–संग्रह (सन् 1951) 10. हिन्दी साहित्य का आदिकाल (सन् 1952) 11. हिन्दी साहित्य (सन् 1952) 12. दो बहनें – अनुवादित ग्रन्थ (सन् 1952) 13. मध्यकालीन धर्म–साधना (सन् 1952) 14. मेघदूत : एक पुरानी कहानी (सन् 1957) 15. विचार–विमर्श –निबन्ध–संग्रह (सन् 1959) 16. रवीन्द्रनाथ ठाकुर 17. काव्य में लालित्य योजना 18. आलोक–निबन्ध–संग्रह 19. चारुचन्द्रलेख–उपन्यास (सन् 1963) 20. श्री पृथ्वीनाथ शास्त्री के साथ सम्पादित ग्रन्थ 'नाट्यशास्त्रा की भारतीय परम्परा और दशरूपक' (सन् 1963) 21. 'लाल कनेर'–अनूदित ग्रन्थ 22. पुनर्नवा–उपन्यास (सन् 1973) 23. निबन्ध–संग्रह 'कुटज'– (सन् 1974) 24. उपन्यास 'अनामदास का पोथा' (सन् 1976) इत्यादि।

प्रश्न 4. आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी के द्वारा सम्पादित कुछ प्रमुख ग्रन्थों का उल्लेख करें।

उत्तर : उन्होंने अपने शिष्य डॉ॰ नामवरसिंह के साथ मिल कर 'संक्षिप्त पृथ्वीराज रासो' नामक ग्रन्थ का भी सम्पादन किया था। इसी प्रकार डॉ॰ विश्वनाथ त्रिपाठी के साथ संयुक्त रूप से उन्होंने 'सन्देशरासक' नामक ग्रन्थ (सन् 1960),भी सम्पादित करके प्रकाशित करवाया था। उनका तीसरा महत्त्वपूर्ण सम्पादित ग्रन्थ 'नाथ–सिद्धों की वाणियाँ' है। उनकी पूर्वोल्लिखित सम्पादित कृतियों के अतिरिक्त अन्य ग्रन्थों में पं॰ जगन्नाथ तिवारी के साथ सम्पादित अभिनन्दन ग्रन्थ 'काव्यशास्त्रा', श्री अगरचन्द नाहटा के साथ संयुक्त रूप से सम्पादित ग्रन्थ 'घिताई चरित' के अतिरिक्त 'रामानन्द की हिन्दी रचनायें' (सन् 1969) इत्यादि ग्रन्थ भी विशेष रूप से उल्लेख्य हैं।

प्रश्न 5. : आचार्य द्विवेदी ने हिन्दी में बाल–साहित्य की ओर कहाँ संकेत किया था और इस कमी को पूरा करने के लिए उन्होंने कौन–सी कहानियाँ रची थीं ? विस्तार से बताइये।

उत्तर : उन्होंने **'कहानी'** नामक विधा के क्षेत्रा में भी विशेष कार्य सम्पन्न किया था। हिन्दी में बाल–साहित्य की कमी का संकेत उन्होंने अपने निबन्ध 'साहित्यकारों का दायित्व' शीर्षक अपने निबन्ध में विदेशी विद्वान् **एण्ड्रयूज़** के सन्दर्भ में अपने एक कथन में किया था। (हज़ारीप्रसाद द्विवेदी–ग्रन्थावली, भाग 10, पृष्ठ 105)। इसी कमी की पूर्त्ति करने के लिए उन्होंने **पंचतन्त्रा** और **हितोपदेश** के समान सरल, सुस्पष्ट और प्रवाहमयी

भाषा में कुछ उपदेशपरक कहानियों की रचना की थी। ये कहानियाँ संख्या में केवल आठ ही हैं और इनके नाम ये हैं :–1. धनवर्षण 2. मंत्रा–तंत्रा 3. व्यवसायी बुद्धि 4. बड़ा क्या है 5. बड़ा कौन है 6. देवता की मनौती 7. प्रतिशोध ा और 8. अछूत। इनमें कुछ कहानियों में तो दोहरे कथानक हैं और कुछ कहानियाँ अत्यन्त सरल और सुबोध शैली में ही रचित हैं। पंचतन्त्रा नामक संस्कृत का ग्रन्थ बालकों को चरित्रा और नीति–सम्बन्धी शिक्षा देने के लिए लिखा गया था। उस ग्रन्थ में मुख्य कथाओं के साथ ही अन्य अवान्तर या गौण कथाओं को भी शामिल किया गया था। उनमें दीर्घ समासों से रहित अत्यन्त सरल और सुबोध भाषा में बालकों को देश के उत्तरदायी नागरिक बनने के प्रयोजन से कहानियों का रोचक और सरस ताना–बाना गूँथा गया था। उन कहानियों में पशु–पात्रा भी मानवों जैसे देशभक्त और विचारशील प्राणी के रूप में चित्रित किए गए हैं। वे बच्चों को कर्त्तव्यपालन और सत्यनिष्ठा के महान् पाठ पढ़ाते हैं। उन कहानियों की ही शैली में आचार्य द्विवेदी ने वैसे ही पाठ बालकों को पढ़ाए हैं। यथा 'धनवर्षण' कहानी में गुरु के शिष्य को, 'मंत्रातंत्रा' कहानी में कुमार तथा 'अछूत' कहानी में नीमू जैसे पात्राों को भी कर्त्तव्यों के प्रति जागरूक दिखाया गया है। जहाँ पंचतंत्रा ग्रन्थ के पात्रा अधिकतर कल्पना–लोक के ही निवासी प्रतीत होते हैं, वहाँ आचार्य द्विवेदी की इन कहानियों के पात्रा हाड़–मांस के पुतले इसी संसार के यथार्थवादी पात्रा लगते हैं।

प्रश्न 6. आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी के संस्कृत भाषा–विषयक ज्ञान के प्रेरक ोत का उल्लेख करते हुए उनकी संस्कृत भाषा–सम्बन्धी शिक्षा के बारे में स्पष्ट करें ?

उत्तर : उनके चाचा बहुत बड़े शास्त्राज्ञ थे। उन्होंने उन्हें 'लघु सिद्धान्त कौमुदी' रटवा दी थी। उस समय उन्हें पन्द्रह रुपये मासिक की बिरला छात्रावृत्ति मिला करती थी। सन् 1923 में उन्होंने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से संस्कृत में प्रवेशिका की परीक्षा पास कर ली थी। इसी प्रकार सन् 1929 में उन्होंने साहित्य की परीक्षा भी पूरी कर ली थी और इसके उपरान्त उन्होंने पूर्वजों से प्राप्त संस्कृत भाषा के प्रति अनुराग के कारण ही संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी से संस्कृत साहित्य में शास्त्राी तथा ज्योतिषशास्त्रा में ज्योतिषाचार्य की उपाधियाँ प्राप्त कीं। उन दिनों यह विद्यालय महामना पण्डित मदनमोहन मालवीय द्वारा स्थापित काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से जुड़ा हुआ था, किन्तु आजकल इसे बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी कहा जाता है।

प्रश्न 7. आचार्य द्विवेदी के बाहरी व्यक्तित्व के सम्बन्ध में कोई रेखाचित्रा देते हुए उनकी वेशभूषा का संक्षेप में परिचय दें ?

उत्तर : वे लम्बे और सुगठित शरीर के स्वामी थे और प्रथम दृष्टि में ही उनका डील–डौल प्रत्येक दर्शक को मनोमुग्ध कर दिया करता था। वे अधिकतर खादी की श्वेत धोती और कुर्ता ही धारण किया करते थे। उनके कँधों पर सदैव भोजपुरी दुपट्टा लहराया करता था। उनके स्वभाव में महाकवि कालिदास की सहृदयता, बाणभट्ट का–सा पाण्डित्य, सन्त कबीर की–सी निश्छलता, टैगोर की व्यापक सौन्दर्य–चेतना, महामना पंडित मदनमोहन की–सी हार्दिक उदारता और महात्मा गांधी की–सी चारित्रिाक सुदृढ़ता आदि मिलती थीं। उनके शत्राु तक उनके चरित्रा, व्यक्तित्व और कर्तृत्व की प्रशंसायें किया करते थे। उन्हें सही अर्थों में **'अजातशत्राु'** कहा जा सकता है। उनके व्यक्तित्व में प्राचीनता और नवीनता, परम्परा और आधुनिकता, भावयित्राी प्रतिभा और कारयित्राी प्रतिभा का ऐसा सुन्दर समन्वय मिलता है, जोकि अन्य किसी भी साहित्यकार में प्रायः दुर्लभ ही रहा है।

प्रश्न 8. आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी के व्यक्तित्व पर एक सारगर्भित टिप्पणी करें।

उत्तर : बहुत बड़े ज्योतिषाचार्य होने पर भी वे धार्मिक और सामाजिक अन्धविश्वासों के घोर विरोधी थे।

जीवन में वे नियतिवादी और भाग्यवादी दर्शनों का भरसक विरोध ही किया करते थे। जीवन और जगत् के प्रति उनका दृष्टिकोण निवृत्तिमूलक न हो कर प्रवृत्तिमूलक था। दूसरे शब्दों में, वे निराशावादी न हो कर पूर्णतः आशावादी ही थे। डॉ॰ मीरा मिश्रा लिखती हैं कि "वे सच्चे राष्ट्रभक्त एवं भारतीय संस्कृति तथा राष्ट्रीयता के जागरूक सेनानी थे। इस तरह उनका हर क्षेत्रा में निर्बन्ध प्रवेश था। उनके व्यक्तित्व के विशाल वट की शाखायें विभिन्न क्षेत्राों में फैली हुई हैं। प्रतिकूल परिस्थितियों में भी अपने जीवन में द्विवेदी जी ने निरन्तर संयम का परिचय दिया है और अन्तर्विरोधों के बीच समाहार प्रस्तुत करना उनके जीवन का आदर्श रहा है। द्विवेदी जी के साहित्य को पढ़ कर तो ऐसा लगता है कि पांडित्य उन्हें सदैव गम्भीर बनाये रहता है, किन्तु पास जाने में पता लगता है कि वह अत्यन्त सरल, ज़िन्दादिल और खुली तबियत के व्यक्ति थे। द्विवेदी जी अध्ययनशील और संत स्वभाव के ही व्यक्ति नहीं थे, वरन् वे एक सफल गृहस्थ भी थें इसी के साथ वे फक्कड़ और मस्तमौला भी थे। उनके व्यक्तित्व में सदैव अनासक्त बनाये रखने वाली मस्ती रहती थी। अपनी कृतियों में भी वे एक 'मस्त मौला' के रूप में लक्षित होते थे।" –(मीरा मिश्रा का ग्रन्थ ' उपन्यासकार हज़ारी प्रसाद द्विवेदी : ऐतिहासिक सन्दर्भ और आधुनिक बोध, पृष्ठ 4–5)।

प्रश्न 9. डॉ॰ हज़ारीप्रसाद द्विवेदी के साहित्य पर शान्तिनिकेतन के किस महापुरुष का सर्वाधिक प्रभाव पड़ा था, विशेष रूप से उनके नाम का उल्लेख करते हुए स्पष्ट करें ?

उत्तर : उनके समूचे साहित्य पर कविकुलगुरु रवीन्द्रनाथ टैगोर की साहित्यिक और सौन्दर्यात्मक चेतना का बहुत प्रभाव देखा जा सकता है। प्रायः इनके कथनों और वक्तव्यों पर उनके स्वरों का प्रभाव देखा जाता था। उनके सामीप्य के कारण ही उनके व्यक्तित्व और साहित्य में जीवन और जगत् के प्रति एक व्यापक मानवतावादी दृष्टिकोण मिलता है। उनकी अपनी भी स्वीकारोक्ति है कि, "ग्यारह वर्षों तक लगातार रवीन्द्रनाथ जैसे महापुरुष के संसर्ग में रहना सौभाग्य की बात ही कही जायेगी, मुझे यह सौभाग्य मिला था। जानकर और अनजान में मैंने उनसे कितना लिया है, इसका कुछ हिसाब नहीं।"

–(निबन्ध–संग्रह 'विचार और वितर्क', पृष्ठ 41)।

प्रश्न 10. आचार्य द्विवेदी के साहित्य में महात्मा गांधी का प्रभाव किस रूप में पड़ा है और महात्मा के देहावसान के बाद उन्होंने कौन–से श्रद्धापूर्ण वचन व्यक्त किए थे ?

उत्तर : महात्मा गांधी के सत्य, अहिंसा, प्रेम और करुणा आदि भावों से सम्बद्ध विचारों से भी वे बहुत प्रभावित थे। अपने एक निबन्ध में उन्होंने गांधी जी के विषय में यह वक्तव्य दिया है, "पिछले सताइस वर्षों से मैं महात्मा जी की बातें सुनता आ रहा हूँ और उनके कार्यों को देखता आ रहा हूँ। कई बातों में उनके आदर्शों पर चलने का प्रयत्न भी किया है। महात्मा जी के प्रति मेरे मन में इतनी श्रद्धा रही है जितनी किसी के मन में उपास्य देवता की हुआ करती है। बहुत बड़े ज्योतिषाचार्य होने पर भी वे धार्मिक और सामाजिक अन्धविश्वासों के घोर विरोधी थे। जीवन में वे नियतिवादी और भाग्यवादी दर्शनों का भरसक विरोध ही किया करते थे। (निबन्ध–संग्रह 'कल्पलता', पृष्ठ 39)।

महात्मा गांधी के स्वर्गवास को लक्ष्य करके उन्होंने उनके प्रति अपनी श्रद्धा–भावना की अभिव्यक्ति इन शब्दों में की है, "हाय ! हतभाग्य भारतवर्ष, तू आज शोच्य है। तुझे वह रत्न मिला था, जो देवताओं को भी नहीं मिलता। गांधी भारतीवर्ष क अनेक युगों से संचित पुण्य का मधुर फल था। आज देश जननी की गोद सूनी है, आज वह सचमुच दरिद्र है।" –(निबन्ध–संग्रह 'कल्पलता', पृष्ठ 105)।

1.1.6 सहायक पुस्तकें :

छात्राों को परीक्षा–सम्बन्धी तैयारी करने और पाठ्य–पुस्तकों से सम्बन्धित आलोचनात्मक और व्याख्यात्मक प्रश्नों के उत्तर तैयार करने के लिए इस पाठ में उद्धृत ग्रन्थों का अधिक–से–अधिक गहन और गम्भीर अध्ययन और अनुशीलन करते रहना चाहिए। कुछ सहायक पुस्तकों की सूची आगे दी जा रही है :–

1. डॉ॰ कृष्ण भावुक, 'हिन्दी साहित्य का प्रामाणिक इतिहास' (पटियाला, पेप्सु बुक डिपो, संस्करण वर्तमान वर्ष)
2. डॉ॰ हरमोहन लाल सूद, 'हज़ारी प्रसाद द्विवेदी का सर्जनात्मक साहित्य' (दिल्ली–94, निर्मल पब्लिकेशन, ए–139, गली नं॰ 3, कबीर नगर, प्रथम संस्करण सन् 1998)
3. डॉ॰ मीरा मिश्रा, 'उपन्यासकार हज़ारी प्रसाद द्विवेदी : ऐतिहासिक सन्दर्भ और आधुनिक बोध' (वाराणसी, विजय प्रकाशन मन्दिर, बी॰ 21/76, कमच्छा, प्रथम संस्करण गंगा दशहरा सन् 1993 ई)
4. आचार्य हज़ारीप्रसाद द्विवेदी, निबन्ध–संग्रह 'विचार और वितर्क'
5. संपादक डॉ॰ शिवप्रसाद सिंह, आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी : 'शान्तिनिकेतन से शिवालिक तक'
6. आचार्य हज़ारीप्रसाद द्विवेदी, निबन्ध–संग्रह 'कल्पलता'
7. नरेन्द्र कोहली, 'हिन्दी उपन्यास : सृजन और सिद्धान्त' (दिल्ली, सौरभ प्रकाशन, प्रथम संस्करण सन् 1979)
8. हज़ारीप्रसाद द्विवेदी–ग्रन्थावली, भाग 10. (नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण)

'बाणभट्ट की आत्मकथा : उपन्यास या आत्मकथा

पाठ की रूपरेखा :

1.2.0 उद्देश्य

1.2.1 भूमिका

1.2.2 हिन्दी साहित्य में 'आत्मकथा' नामक विधा का विकास

1.2.3 उपन्यास की रचना–सम्बन्धी प्रेरक पृष्ठभूमि

1.2.4 उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' आत्मकथा है या जीवनी ?

1.2.4.1 स्वयं जांच अभ्यास

1.2.5 सारांश

1.2.6 शब्दावली

1.2.7 प्रश्नावली

1.2.8 सहायक पुस्तकें

1.2.0 उद्देश्य

इस पाठ का उद्देश्य पाठ्यक्रम में आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी के विशेष अध्ययन के अन्तर्गत निर्धारित उनके हिन्दी के सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक और सांस्कृतिक उपन्यास **'बाणभट्ट की आत्मकथा'** के शिल्प–विधान पर विचार करना ही है। विशेष रूप से यहाँ इस कृति को विद्वान् समीक्षकों के मतों के आलोक में एक **आत्मकथा** या **उपन्यास** नामक विधा ठहराना ही है। यह प्रश्न हिन्दी साहित्य, विशेषतः कथा–साहित्य के समीक्षकों में विशेष रूप से विवादास्पद अर्थात् सन्देहपूर्ण ही रहा है। यही कारण है कि इस पाठ में इस समस्या पर विस्तार से विश्लेषणात्मक अध्ययन किया जा रहा है।

1.2.1 भूमिका

हिन्दी साहित्य में 'आत्मकथा' नामक एक अलग विधा का इतिहास रहा है, चाहे वह बहुत लम्बा नहीं है, फिर भी उसके अन्तर्गत विभिन्न रचनाकारों ने अनेक कृतियों की रचना करके अपनी जीवनी को प्रस्तुत किया है। यह और

बात है कि कुछ संस्मरण या रेखाचित्रा भी आत्मकथात्मक शैली में ही रचित हो सकते हैं। यहाँ आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी के विश्वप्रसिद्ध मौलिक हिन्दी उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' की विधा सुनिश्चित करने पर विचार किया जाएगा। मुख्यतः इस कृति को एक ऐतिहासिक और सांस्कृतिक कोटि या वर्ग का ही उपन्यास ठहराया जाता रहा है, जोकि बहुत उचित भी प्रतीत होता है। फिर भी चूँकि स्वयं विद्वान् लेखक आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ने इस कृति के नाम के साथ **'आत्मकथा'** शब्द जोड़ा हुआ है, इसीलिए इस सम्बन्ध में विस्तार से विचार करने की आवश्यकता है।

1.2.2 हिन्दी साहित्य में 'आत्मकथा' नामक विधा का विकास :

मूल विषय पर आने से पहले यहाँ हिन्दी साहित्य में **'आत्मकथा'** नाम से लिखी गई पुस्तकों पर विचार करना आवश्यक प्रतीत होता है। 'आत्मकथा' नामक विधा हिन्दी साहित्य में गद्य के अन्तर्गत छायावादोत्तर काल में ही पहले–पहल देखने को मिलती है। किसी भी व्यक्ति के द्वारा कलात्मक और साहित्यिक शैली में लिखी गई **अपनी जीवनी** को ही 'आत्मकथा' कहा जाता है। इसमें आत्मकथाकार के निजी जीवन, उसकी प्रमुख घटनाओं, परिस्थितियों आदि का क्रम से वर्णन हुआ करता है। पाठकों की रुचि को देखते हुए उसे रोचक और सरस शैली में प्रस्तुत किया जाता है। सन् 1641 में **पंडित बनारसीदास चतुर्वेदी** के द्वारा लिखित **'अर्द्धकथानक'** नामक रचना को हिन्दी की सर्वप्रथम आत्मकथा माना जाता है। छायावादी काल से पहले भी ये आत्मकथायें रची गई थीं :–सत्यानन्द अग्निहोत्री–कृत 'मुझ में देव–जीवन का विकास' (सन् 1910), स्वामी दयानन्द–कृत 'जीवन–चरित्रा' (1917)। छायावादी युग में ये आत्मकथायें लिखी गईं :–भाई परमानन्द–कृत 'आपबीती' (1921), महात्मा गांधी–कृत 'आत्मकथा' (1923) तथा सुभाषचन्द्र बोस–कृत 'तरुण के स्वप्न' (1935)।

छायावादोत्तर काल में भवानीदयाल संन्यासी–कृत 'प्रवासी की आत्मकथा', सत्यदेव परिव्राजक–कृत 'स्वतन्त्राता की खेज में', डॉ॰ राजेन्द्र प्रसाद की 'आत्मकथा' (1947), महापण्डित राहुल सांकृत्यायन–कृत 1. 'मेरी जीवन–यात्राा' (1946) और 2. 'मेरा जीवन–प्रवाह' (1948), यशपाल–कृत 'सिंहावलोकन' (1952), शान्तिप्रिय द्विवेदी–कृत 'परिव्राजक की प्रजा' (1952), पदुमलाल पुन्नालाल बख़्शी–कृत 'मेरी अपनी कथा' (1958), सेठ गोविन्ददास–कृत 'आत्मनिरीक्षण' (1958)‼, पाण्डेय बेचन शर्मा उग्र–कृत 'अपनी ख़बर' (1960), आचार्य चतुरसेन–कृत 'मेरी आत्म कहानी' (1963), डॉ॰ हरिवंश रॉय बच्चन–कृत 'क्या भूलूँ क्या याद करूँ' (1969),'नीड़ का निर्माण फिर फिर' (1970), इत्यादि में लेखकों का जीवन पूर्वदीप्ति कथा–शैली में बयान किया गया है। इनके अतिरिक्त ओमप्रकाश वाल्मीकि–कृत 'जूठन' (1997), दूधनथसिंह–कृत 'लौट आ, ओ धार' नाम से आत्मकथायें प्रकाशित की हैं। इनमें उपन्यास नामक विधा के अंश तो हो सकते हैं, परन्तु इन्हें उपन्यास कदापि नहीं कहा जा सकता है। इनके अतिरिक्त डॉ॰ रामविलास शर्मा–कृत 'अपनी धरती : अपने लोग' (तीन खण्ड), डॉ॰ नगेन्द्र–कृत 'अर्धकथा', ब्रजमोहन व्यास–कृत 'मेरा कच्चा चिट्ठा', डॉ॰रामदरश मिश्र–कृत 'जहाँ मैं खड़ा हूँ' के अतिरिक्त 'रोशनी की पगडंडियाँ', 'टूटते बनते दिन' और 'उत्तरापथ' नामक कृतियों को भी उनकी आत्मकथाओं का नाम दिया जा रहा है। हंसराज रहबर–कृत 'मेरे सात जन्म' (चार खण्ड) में आत्मकथाकार की प्रगतिवादी दृष्टि विभिन्न सामाजिक सरोकारों को रेखांकित करती चलती है। इसी प्रकार पंजाबी की लेखिक अमृता प्रीतम की आत्मकथा 'रसीदी टिकट' का हिन्दी में अनुवाद हो चुका है।

डॉ॰ माजदा असद के मतानुसार, "आत्मकथा दो प्रकार की होती है–वास्तविक और कल्पित। वास्तविक आत्मकथा अपने सम्बन्ध में होती है और काल्पनिक दूसरों के सम्बन्ध में, जैसे 'पेड़ की आत्मकथा', सड़क की

आत्मकथा, ताजमहल की आत्मकथा, इत्यादि।"

–(ग्रन्थ 'गद्य की नई विधायें', ग्रन्थ अकादमी, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण सन् 1990, पृष्ठ 20)

मनु शर्मा ने गंगा, यमुना, सरस्वती इत्यादि नदियों को आत्मकथात्मक उपन्यासों के रूप में लिखा है। इसके अतिरिक्त कई बार आत्मकथात्मक निबन्ध या लेख भी लिखे जाते रहे हैं। इसी प्रकार इधर लेखिकाओं ने भी आत्मकथायें लिखने में अपनी विशेष रुचि का प्रदर्शन किया है। यथा डॉ. कृष्णा अग्निहोत्री ने **'लगता नहीं है दिल मेरा'** (1997), कुसुम अंसल ने **'जो कहा नहीं गया'** (1996) और मन्नू भण्डारी ने **'एक कहानी यह भी'** नाम से एक आत्मकथा प्रकाशित करवाई है।

जब हम आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी–कृत **'बाणभट्ट की आत्मकथा'** पर दृष्टिपात करते हैं, तो हमें यह कृति पूर्वोक्त सभी कृतियों से बिलकुल अलग खड़ी प्रतीत होती है।

1.2.3 उपन्यास की रचना–सम्बन्धी प्रेरक पृष्ठभूमि

'धर्मयुग' पत्रिका के फ़रवरी सन् 1962 के अंक में इस उपन्यास के लिखे जाने की पृष्ठभूमि का उद्‌घाटन करते हुए एक लेख में दिया गया वक्तव्य आगे प्रस्तुत है। इससे पता चलता है कि आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी को इस उपन्यास के लिखने का विचार कैसे आया था। लेख में कहा गया है, "आचार्य द्विवेदी ने एक **वराह मूर्त्ति** देखी थी, जिसमें परम तेजोमय वराह नन्हीं–सी सलज्ज धरित्री का उद्धार कर रहे हैं। जब वे (हर्षवर्धन द्वारा रचित नाटिका) **'रत्नावली'** पढ़ते थे, तब विवादास्पद मंगलाचरण को ले कर उनका मन बाणभट्ट की ओर गया। तीसरे, इस बीच में राहुल जी ने **'वोल्गा से गंगा'** (उपन्यास) में बाणभट्ट को नाच–गान में लिप्त, व्यसनी, लम्पट तथा शठ अंकित किया। यही बात श्री हर्ष ने भी उनकी बाबत कही थी, तो आचार्य जी ने इसी तथ्य को रोमांटिक तथा प्रतीकात्मक परिवेश देने के लिए राहुल जी के दो अध्यायों से अधिक चार–पाँच अध्याय में बाणभट्ट की एक जीवनी लिखने तथा अन्त में दीदी का पत्रा छापने और हॉवेल का **'कादम्बरी' की भूमिका का खण्डन** करने के लिए उन्हें प्रेरणा मिली। उन्होंने इसे उपन्यास के लिए नहीं लिखा था, किन्तु (समाचारपत्रा) 'विशाल भारत' में पहली दो किस्तों के छपते ही सबसे पहले राहुल जी का प्रशंसात्मक पत्रा और फिर स्व. चतुरसेन शास्त्री का पत्रा मिला। फिर पाँच अध्यायों में समापन किए जाने के लिए संकलित यह 'नॉवलेट' एक अप्रतिम उपन्यास बन गया।"

–(पत्रिका 'धर्मयुग', फ़रवरी सन् 1962)।

श्री राजेन्द्र मोहन भटनागर लिखते हैं कि, "बाणभट्ट के 'कथामुख' से इस उपन्यास में कई धारणायें प्रचलित हो गई थीं। **डॉ. सरनामसिंह शर्मा 'अरुण'** ने 'बाणभट्ट की आत्मकथा' लेख में जो वक्तव्य दिया था, वह इस प्रकार है, 'इस उपन्यास के आते ही बहुत दिनों तक यही विवाद चलता रहा कि **'यह आत्मकथा नहीं है'**। कुछ विद्वान् इसके 'कथामुख' की वास्तविकता को या तो उसके आशय को न समझ कर इस कृति को बाणभट्ट की कृति ही मानते रहे, किन्तु चिन्तन और मनन करने पर विद्वानों की धारणा में परिवर्तन होने के लक्षण दिखाई देने लगे। इतने पर भी स्वरूप–निर्णय के सम्बन्ध में सन्देह की स्थिति बनी रही। जैसे –जैसे 'कथामुख' और 'उपसंहार' के भावों की गहराई में बुद्धि से उतरने का उपक्रम किया गया, वैसे–वैसे इस कृति का स्वरूप अनावृत्त होने लगा।" –(राजेन्द्र मोहन भटनागर, ग्रन्थ 'हिन्दी के दस श्रेष्ठ कथात्मक प्रयोग', पृष्ठ 182)।

इस प्रकार इस उपन्यास के प्रकाशन–काल से ही विद्वानों में मतभेद की स्थिति बराबर बनी रही थी। यहाँ तक

कि विद्वान् पं. शान्तिकुमार नानूराम व्यास यह समझ बैठे कि यह उपन्यास संस्कृत के महान् लेखक बाणभट्ट द्वारा रचित किसी आत्मकथा का ही हिन्दी में रूपान्तर है। यह और बात है कि समय बीतने पर वह भ्रम दूर हो चुका था और इस कृति को **एक सफल ऐतिहासिक उपन्यास** माना जाने लगा था।

'कथामुख' में आत्मस्वीकार के अनुसार लेखक आचार्य हज़ारी प्रसाद जी अपनी दीदी **मिस कैथराइन** से इस आत्मकथा की पाण्डुलिपि पाते हैं। वह 68 वर्ष की अवस्था की **आस्ट्रिया की 'कन्या'** थी। लेखक पर चूँकि उसकी विशेष कृपा–दृष्टि थी, इसीलिए उसने उसे 'दीदी' जैसे स्नेहिल सम्बोधन से परिचित कराया है। हमें वह लेखक के ही शब्दों में भारत के ऐतिहासिक स्थलों पर शोध करती दीख पड़ी थी। वह एक दिन स्वयं लेखक से कहती है, "तुझे ही खोज रही थी। शोध–यात्राा में उपलब्ध सामग्री का हिन्दी रूपान्तर मैंने कर लिया है। तू इसे एक बार पढ़ तो भला। देख, मेरी हिन्दी में जो ग़लती है, उसे सुधार दे और इसका अंग्रेज़ी में उल्था करा ले, ले भला।" इसके बाद वह उस पाण्डुलिपि को कलकत्ता जा कर टाइप करवा लाने का आदेश देती है।

अपने कमरे में आ कर लेखक ने उसे पढ़ना शुरु किया। शीर्षक के स्थान पर लिखा था, "अब बाणभट्ट की आत्मकथा लिख्यते।" उसे यह सब पढ़ कर विशेष आनन्द मिलता है। अगले दिन ही वह उसे टाइप करवाने के लिए कलकत्ता चला जाता है। एक सप्ताह बाद लौटता है। लौटने पर उसे ज्ञात होता है कि दीदी काशीवास करने चली गई है। एक लम्बा समय बीत जाता है। वह पुनः दीदी के दर्शन की आशा छोड़ बैठता है। इस बीच में वह इस आत्मकथा को तथ्यपूर्ण प्रमाणों से युक्त कर चुकता है। अचानक एक दिन मुग़लसराय स्टेशन पर लेखक को दीदी के दर्शन हो जाते हैं। दीदी गाड़ी बदलने में व्यस्त दिखाई पड़ रही थी। लेखक दीदी को उस आत्मकथा की याद दिलाता है। दीदी गाड़ी में बैठती हुई एक कार्ड फेंक कर कहती है, "मैं देश जा रही हूँ। ले, यह मेरा पता है। ले, भला।"

लेखक दीदी से उस आत्मकथा को प्रकाशित कराने की आज्ञा ले कर उसे प्रकाशित करवा देता है। यही है इस आत्मकथा के प्रकाशन की आत्मकथा।"

–(पुस्तक 'बाणभट्ट की आत्मकथा' : एक अध्ययन", पृष्ठ 61–63)

अब हम इस कृति के **आत्मकथा** या **उपन्यास** होने की समस्या पर विस्तार से विचार करेंगे :–

वास्तव में बाणभट्ट ने अपने को लेखक के कला–कौशल से इस कथा में यों रमा लिया है कि वह एक मूल ऐतिहासिक पात्रा ही प्रतीत होता है। कुछ समीक्षक इस रचना को आत्मकथा न मान कर एक कलात्मक जीवनी का ही नाम देते हैं, जोकि आत्मकथा की शैली में ही लिखी गई है। डॉ. सरनामसिंह शर्मा 'अरुण' का कथन है कि यह "आत्मकथा न तो इतिहास है, न जीवनी, न अर्द्धकथा, न आत्मकथा और न ही वर्णन–पुष्ट कहानी, वरन् जादूगर के प्रतिमिक स्पर्शों का मनोहर एवं कौतूहलपूर्ण परिणाम है, जो वस्तुतः आत्मकथात्मक शैली का रोमांस है, जो डायरी शैली का कुछ योग है।"

–(ग्रन्थ 'कृति एवं कृतिकार', पृष्ठ 15)

स्वयं लेखक आचार्य द्विवेदी ने कहा है, "आगे जो कथा दी है, वह दीदी (मिस कैथराइन) ने उन्हें आत्मकथा की पाण्डुलिपि शोण (नदी का नाम) के तट से खोज कर दी है, उसी का यह अनुवाद (हिन्दी में) है और फुटनोटों में जो हवाले दिये गये हैं, वे मेरे हैं।"–(उपन्यास, पृष्ठ 9)।

डॉ. मीरा मिश्रा इस उपन्यास के कथा–शिल्प पर विचार करती हुई लिखती हैं, "इस प्रकार लेखक ने यह विश्वास

दिलाने का प्रयास किया है कि यह बाणभट्ट की लिखी हुई आत्मकथा है, किन्तु यह शिल्प–सम्बन्धी कोई नई बात नहीं है। इसी तरह **राहुल सांकृत्यायन** ने भी अपने **'सिंह सेनापति'** (उपन्यास) में पृष्ठभूमि दी है, जिसने पाठकों को विस्मय में डाल दिया। इससे पूर्व **जैनेन्द्र** ने **'त्यागपत्रा'** में इसका सूत्रापात किया था कि यह उपन्यास **पी. दयाल** का लिखा हुआ है, लेकिन द्विवेदी जी ने अपनी ओर से आत्मकथा की प्रामाणिकता सिद्ध करने की यथासम्भव कोशिश की है। उन्होंने कवि बाण तथा हर्ष की कृतियों के सन्दर्भ में इसका मूल्यांकन किया है, इसीलिए आमुख, उपसंहार, पाद–टिप्पणियाँ इस उपन्यास में प्रयुक्त हुई हैं। इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि द्विवेदी जी की लिखी बाणभट्ट की जीवनी बाणभट्ट की आत्मकथा बन गयी, जो उनके निर्माण–कौशल का परिचायक है।"

–(ग्रन्थ 'उपन्यासकार हजारी प्रसाद द्विवेदी : ऐतिहासिक सन्दर्भ और आधुनिक बोध', पृष्ठ 172)।

वास्तव में संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित होने के कारण आचार्य द्विवेदी ने स्वयं बाण की रचना 'कादम्बरी' के अतिरिक्त उन्हीं के जीवनीपरक ग्रन्थ **'हर्षचरित'** के प्रथम तीन उच्छ्वासों से भी सामग्री का अच्छा चुनाव किया है। उपन्यास के आरम्भ में ही बाणभट्ट के जो विस्तृत शब्द–चित्रा प्रस्तुत किए गए हैं, उनमें आचार्य द्विवेदी जी की अपनी महाकवि कालिदास की–सी कवित्व–शक्ति और मेधा झाँकती देखी जा सकती है। आचार्य नलिन विलोचन शर्मा ने यह टिप्पणी ठीक ही की है कि (यह कृति) "निःसन्देह एक कवि की चित्राकारी रचना है।" –(ग्रन्थ संपादक डॉ. शिवप्रसादसिंह, लेख, नलिन विलोचन शर्मा)।

इस उपन्यास में कथा के कुछ वर्णित विषय सम्राट् हर्ष के द्वारा रचित 'रत्नावली' नाटिका के अतिरिक्त महाकवि और नाटककार कालिदास–कृत काव्य 'कुमारसम्भवं', गीति–काव्य 'मेघदूतं', महाकाव्य 'रघुवंशं', नाटक 'विक्रमोर्वशीयं', वेदव्यास–कृत पौराणिक ग्रन्थ 'महाभारत', शूद्रक–कृत नाटक 'मृच्छकटिकं', भरत मुनि के काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ 'नाट्यशास्त्रा' इत्यादि को भी आधार बना कर लिखे गये हैं, ऐसा कहें, तो इसमें कोई भी अतिशयोक्ति नहीं होगी। इसके अतिरिक्त संस्कृत के जिन ग्रन्थों की सामग्री का लेखक ने यत्रा–तत्रा सदुपयोग किया है, उनमें ये नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय कहे जा सकते हैं:–मालती माधव, अभिलषितार्थ, चिन्तामणि, कामसूत्रा, चतुःशतक, बृहत्संहिता, मिलिन्दप्रश्न इत्यादि।

लेखक ने बाणभट्ट के काल की आर्थिक, दार्शनिक, धार्मिक, नैतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों के प्रामाणिक चित्राांकन के लिए इन ग्रन्थों में निरूपित विभिन्न रीति–रिवाजों, कलात्मक विनोदों और मनोरंजन के साधनों, उत्सव–त्यौहारों, वेशभूषा, रहन–सहन जैसे सभ्यता के विविध अंगों का यथर्थ अंकन करने के लिए पूर्वोक्त ग्रन्थों में उपलब्ध सामग्री का सदुपयोग किया है। इन सभी ग्रन्थों में हमें भारतीय सभ्यता और संस्कृति का जो उच्चतम और आदर्श रूप देखने को मिलता है, उसी को आधार बना कर लेखक ने हर्षकालीन सांस्कतिक इतिहास को परोसने का मूल्यवान् और महान् कार्य सम्पादित किया है।

इसी सन्दर्भ में डॉ. मीरा मिश्रा का वक्तव्य है, "आत्मकथा की शैली 'कादम्बरी' की शैली से मिलती–जुलती है परन्तु जो वर्णनों की प्रचुरता का दोष बाण की शैली में पाया जाता है, वैसा द्विवेदी जी के वर्णन संक्षिप्त और सरल हैं। उपमायें भी अधिक उपयुक्त हैं।" –(ग्रन्थ पूर्वोक्त, पृष्ठ 173)

स्वयं लेखक ने उपन्यास में ही 'उपसंहार' के अन्तर्गत यह आत्मस्वीकार किया है, "कादम्बरी की शैली के साथ उसकी शैली में ऊपर से बहुत साम्य दिखता है, आँखों का प्राधान्य इसमें अन्य इन्द्रियों की अपेक्षा अधिक प्रयुक्त हुआ। रूप का, रंग का, शोभा का, सौन्दर्य आदि का वर्णन खूब किया गया है।....कादम्बरी में प्रेम के जिन विकारों का, अनुभावों का, अयत्नज अलंकारों का प्राचुर्य है, जिनके स्थान में मानस–विकारों का, लज्जा का, अवहित्था का, जडिमा का अधि

ाक प्राचुर्य है।"

–(आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली, बाणभट्ट की आत्मकथा, उपसंहार, पृष्ठ 257

1.2.4 उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' आत्मकथा है या जीवनी ?

अब हम उपन्यास के कथा–शिल्प से सम्बन्धित इस प्रश्न या समस्या पर कुछ शीर्षकों के अन्तर्गत विचार करेंगे:

1. कृति के लिए नयी परिभाषा का मत :

यह कृति एक 'आत्मकथा' है या 'उपन्यास', अब कथा–शिल्प से सम्बन्धित इस समस्या पर विस्तार से विचार किया जाएगा। इस उपन्यास को एक अनुपम कृति बनाने के लिए जितनी महत्ता इसकी विषयवस्तु की है, लगभग उतनी ही महत्ता इस रचना के कथा–शिल्प की भी मानी जा सकती है। जिस प्रकार **अज्ञेय** ने अपने उपन्यास के नाम में कथानायक **शेखर** के नाम के साथ **'एक जीवनी'** शब्द जोड़ दिए थे, ठीक उसी प्रकार हिन्दी साहित्य के मूर्धन्य विद्वान् आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ने भी अपनी कारयित्री प्रतिभा का लोहा मनवाते हुए इस उपन्यास के नाम में कथानायक बाणभट्ट के नाम के साथ **'की आत्मकथा'** ये दो शब्द जोड़ कर जहाँ इस कृति के शिल्प को विवादास्पद बना दिया है और अनेक समीक्षकों को मतभेद प्रकट करने के लिए उकसाया है, वहाँ इस रचना की सामग्री को यथार्थ रूप में घटित होने की **एक अत्यन्त चतुर और कलात्मक युक्ति** से भी काम लिया है। यही कारण है कि **डॉ॰ यश गुलाटी** यह टिप्पणी करते हैं कि, "लेखक ने जिस कुशलता से कथ्य में अनेकानेक व्याख्याओं की सम्भावनाओं को अनुस्यूत किया है, उसी से काम लेते हुए विभिन्न साहित्य–रूपों की विशेषताओं को भी इसमें समाहित किया है। उसकी पहचान–सम्बन्धी परस्पर विरोधी मत–मतान्तरों के मूल में यही बात है। इसे उपन्यास (ऐतिहासिक या मात्रा उपन्यास), आख्यायिका, आत्मकथा, जीवनी ही नहीं ठहराया गया, कई बार तो द्विवेदी जी के साहित्य में **अभिनव प्रयोग** ठहराने वाले कथन के अनुरूप ही इसके लिए **नई परिभाषा** गढ़ने की ज़रूरत भी बतायी गयी है।"

–(ग्रन्थ 'प्रतिनिधि हिन्दी उपन्यास, भाग–एक', पृष्ठ 69)

डॉ॰ गुलाटी ने जिस कथन की ओर संकेत किया है, वह **ठाकुर प्रसाद सिंह** का है, जोकि उन्होंने अपने आलेख **'द्विवेदी जी का परकाय प्रवेश'** में 'बाणभट्ट की आत्मकथा' और 'चारुचन्द्रलेख' इन दो उपन्यासों का विवेचन करते हुए यों व्यक्त किया है, "ये कृतियाँ **नये उपन्यास की परिभाषा** के फ़्रेम में किसी भी तरह अपने को अँटा नहीं पाएँगी, यह तय है। उपन्यास की दृष्टि से इसीलिए इन रचनाओं को न देखा जाए, तो कई बाधाएँ अपने आप सुलझ जाएँगी। बड़ी रचनाओं में इतनी शक्ति होती है कि वे अपने लिए **नयी परिभाषा** बना लें।"–(ग्रन्थ 'शान्तिनिकेतन से शिवालिक', सम्पादक डॉ॰ शिवप्रसादसिंह, आलेख 'द्विवेदी जी का परकाय प्रवेश', पृष्ठ 244)।

यद्यपि इस समीक्षक के विचारों में विशेष दम है, तथापि इनके मत से पूरी तरह से सहमत नहीं हुआ जा सकता है, क्योंकि इन्होंने न तो इस कृति की विधा के लिए किसी भी नए नाम का संकेत किया है और न ही इसके लिए किसी **नयी परिभाषा** को ही प्रस्तुत किया है। अतः हम इस मत से अपनी असहमति ही व्यक्त करेंगे।

2. हिन्दी में अनूदित बाण की आत्मकथा :

कुछ समीक्षकों के मतानुसार यह कृति वास्तव में संस्कृत के महान् लेखक बाणभट्ट की ही आत्मकथा है, जिसका अनुवाद आचार्य द्विवेदी ने कर दिया है। वास्तव में इस कृति के प्रकाशन के तुरन्त बाद कुछेक समीक्षकों न जल्दबाज़ी में ऐसी ग़लत धारणा व्यक्त कर दी थी। उन्होंने अपनी आशु प्रतिक्रिया के पक्ष में ठोस तर्क या प्रमाण

तक प्रस्तुत नहीं किए थे। इनमें **पं॰ भगवतशरण उपाध्याय** जैसे विद्वानों के **'निरन्ध्र इतिहास–कथा'** शीर्षक उस लेख को देखा जा सकता है, जोकि डॉ॰ शिवप्रसाद सिंह ने 'शान्तिनिकेतन से शिवालिक' नाम से सम्पादित एक ग्रन्थ में संकलित था और जिसमें अनेक विद्वानों के आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी के जीवन, व्यक्तित्व और कर्तृत्व के बारे में अनेक लेख संकलित किए गए थे। उसी संकलन में यह एक लेख डॉ॰ भगवतशरण उपाध्याय का भी है।

स्वयं उपन्यासकार ने **'उपसंहार'** के अन्तर्गत **मिस कैथराइन** से प्राप्त बाणभट्ट की आत्मकथा प्रतीत होने वाली पाण्डुलिपि पर जो प्रश्न उठाए हैं, उनमें कुछ ये हैं, "जहाँ उस (बाण) के भावावेग की गति तीव्र होती है, वहाँ वह जम कर लिखता है, परन्तु जहाँ दुःख का आवेग बढ़ जाता है, वहाँ उसकी लेखनी शिथिल हो जाती हैं। अन्तिम उच्छ्वासों (अध्यायों, परिच्छेदों) में तो वह जैसे अपने ही में धीरे–धीरे डूब रहा है। मुझे यह बात विचित्रा लगी। संस्कृत साहित्य में यह शैली एकदम अपरिचित है। मुझे यह बात सन्देहजनक भी मालूम हुई। एक बात और है। **'कादम्बरी'** (बाण के ग्रन्थ और उसकी नारी पात्राा का भी नाम) में प्रेम की अभिव्यक्ति में एक प्रकार की **दृप्त** (उत्तेजनापूर्ण) **भावना** है, परन्तु इस कथा में सर्वत्रा प्रेम की व्यंजना **गूढ़ और अदृप्त भाव** से प्रकट हुई है। ...बाणभट्ट की लेखनी से संभवतः अधिक स्पष्ट और अधिक दृप्त अभिव्यक्ति की आशा की जा सकती है। फिर 'कादम्बरी' में प्रेम के जिन शारीरिक विकारों का–अनुभावों का, हावों का, अयत्नज अलंकारों का प्राचुर्य है, उनके स्थान में कथा के मानस–विकारों का–लज्जा का, अवहित्था का, जड़िमा का–अधिक प्राचुर्य है। यह बात भी मुझे खटकने वाली लगी।" –('बाणभट्ट की आत्मकथा, पृष्ठ 292)

इस प्रकार स्वयं द्विवेदी जी को ही अपनी दीदी अर्थात् मिस कैथराइन से प्राप्त बाण की उस आत्मकथा की सामग्री पर सन्देह था, ऐसा उनका आत्मस्वीकार है। अतः यह उन्हीं के संकेत के अनुसार महाकवि बाण की **आत्मकथा या जीवनी नहीं** हो सकती है।

3. राधा, श्रीकृष्ण और बाणभट्ट की दृष्टियों की कल्पना

आचार्य द्विवेदी यह भी कहते हैं कि "मध्य युग में किसी–'किसी कवि ने राधिका की इस उत्कट अभिलाषा का वर्णन किया है, कि वे समझ सकतीं कि कृष्ण उनमें क्या देख पाते हैं। श्रीकृष्ण ने भी, कहते हैं, कि राधिका की दृष्टि से अपने को देखना चाहा था और इसीलिए नवद्वीप में चैतन्य महाप्रभु के रूप में प्रकट हुए थे।"

–(उपन्यास,'बाणभट्ट की आत्मकथा', पृ.294)

डॉ॰ यश गुलाटी का भी यह मत है कि, "यह कहने की ज़रूरत नहीं कि नारी–कृतित्व की इन विशेषताओं को मिस कैथराइन के पक्ष में भी प्रयुक्त किया गया है। मिस कैथराइन के कल्पनाशील व्यक्तित्व, रात भर जाग कर लिखने जैसे उल्लेखों को आत्मस्वीकृति से पुष्ट करते हुए वे इसे **मिस कैथराइन की आत्मकथा** भी ठहरा देते हैं। मिस कैथराइन की आत्मस्वीकृति के अनुसार वे दिन लज्जा और संकोच में ही निकल गए। कथा लिखने का साहस उन्हें तब हुआ, जब वे 68वें वर्ष की हो गईं। बाद में लिखी हुई चिट्ठी में **मिस कैथराइन** की यह उक्ति कि **'बाणभट्ट केवल भारत में ही नहीं होते**–के बाद भी सन्देह की गुँजाइश न रह जाए, इसलिए 'व्योमकेश शास्त्री' (आचार्य द्विवेदी का शान्तिनिकेतनकालीन उपनाम) से यह टिप्पणी भी जुड़वा दी गयी है–अस्त्रिाय वर्ष की यवन कुमारी देवपुत्रा नन्दिनी क्या आस्ट्रिया देशवासिनी दीदी ही हैं ?" उनके इस वाक्य का क्या अर्थ है कि बाणभट्ट केवल भारत में ही नहीं होते ? आस्ट्रिया में जिस नवीन बाणभट्ट का आविर्भाव हुआ था, वह कौन था ? हाय, दीदी ने क्या हम लोगों के अज्ञात अपने उसी **कवि–प्रेमी की आँखों से अपने को देखने का प्रयत्न** किया था ?"

इसके बाद स्वयं लेखक की यह टिप्पणी कोहरे को और घना बना देती है कि 'काव्य की और धर्म–साधना की दुनिया में जो कल्पना थी, उसे दीदी ने अपने जीवन में सत्य कर दिखा दिया।" –(पृष्ठ वही)

यहाँ तक तो ठीक, आचार्य नलिन विलोचन शर्मा ने तो इस कृति को **स्वयं लेखक आचार्य द्विवेदी की अपनी जीवनी** ही ठहराने की भूल कर डाली थी। डॉ॰ शर्मा ने अपने मत के समर्थन में यह टिप्पणी की है, "उनके और बाणभट्ट के जीवन में एक–से अधिक समान तत्त्व हैं। दोनों में शास्त्रा के ज्ञान और जीवन के अनुभव, पांडित्य और विनोद, संयम और सहृदयता, गांभीर्य और परिहास प्रेम का दुर्लभ संयोग है।"

–(लेख पूर्वोक्त, पृष्ठ 261–62)

कहने का आशय यह है कि उपन्यास पूरा होने के बाद आचार्य जी ने इसमें निहित विषय और भावार्थों को और अधिक गहराने के लिए ही ऐसी अवधारणायें और मौलिक उद्‌भावनायें की हैं और इन सभी का उपन्यास के कथा–शिल्प अर्थात् इसके आत्मकथा या उपन्यास होने की बात के पक्ष अथवा विपक्ष के मतों से प्रत्यक्ष या परोक्ष कोई भी सम्बन्ध नहीं बैठाया जा सकता है।

4. आख्यायिका नहीं है

स्वयं आचार्य द्विवेदी का आत्मस्वीकार है, "इतने संयोग कैसे एकत्रा हो गए ? कितनी विचित्रा बात है यह ? ऐसा जान पड़ता है कि यह किसी निपुण कवि की **प्रसिद्ध आख्यायिका हो।"** –(उपन्यास, पृष्ठ 239)

'अमरकोश' में **'आख्यायिका'** की परिभाषा दे कर इसका स्वरूप स्पष्ट करते हुए यह कहा गया है कि "प्रसिद्ध विषय को ले कर लिखा गया काव्य ही आख्यायिका है।" आचार्य भामह के मतानुसार, "आख्यायिका एक ऐसी रचना है, जो विषयानुकूल तथा श्रवणीय शब्द, अर्थ और पदों वाले गद्य से युक्त होती है। इसमें नायक द्वारा स्वयं अपनी चेष्टाओं का वर्णन किया जाता है।" श्री महेश चन्द्र भारतीय कहते हैं कि आचार्य भामह के ही अनुसार "यह कुछ कवि के भाव को व्यक्त करने वाले चिह्नों से युक्त होती है। इसमें कन्या–हरण, संग्राम, विप्रलम्भ और नायक–विजय (उदय) आदि का वर्णन होता है।"

–(ग्रन्थ 'बाणभट्ट और उनका हर्षचरित', पृष्ठ 22)

डॉ॰ यश गुलाटी के मतानुसार, "इसमें कोई सन्देह नहीं कि आत्मकथा में 'आख्यायिका' की उक्त अनेक विशेषताएँ उपलब्ध हैं–उच्छ्‌वासों में विभाजन, नायक के स्वयं वक्ता और कथा का विषय होने, अपहरण, वियोग, युद्ध आदि। आख्यायिका और आत्मकथा के कई तत्त्वों में समानता होने से उन्हें इस प्रयोग में सहायता मिली है, किन्तु यह भी स्पष्ट है कि आख्यायिका के पूरे शास्त्रीय ढाँचे का निर्वाह इसमें नहीं किया गया।"

–(प्रतिनिधि हिन्दी उपन्यास, भाग एक, पृ. 72)।

5. डायरी नहीं है

यद्यपि आचार्य द्विवेदी ने स्वयं यह स्वीकार किया है कि यह कृति **"बहुत कुछ आजकल की डायरी शैली** पर लिखी गई' है, (उपन्यास, पृष्ठ 305), तथापि समीक्षक अधिकतर इस घोषणा से अपने को सहमत नहीं पाते हैं। **श्री राजेंद्र मोहन भटनागर** का कथन द्रष्टव्य है, "आप सोचिए, जिसकी कथावस्तु, जिसे मैं 'विषय–वस्तु' से अभिहित किए हूँ, अगर वह डायरी शैली पर हुई, तो उसमें 'एकरसता' (यहाँ समीक्षक का आशय **एकरूपता** से है) कैसे बनी रह सकती है ? और फिर इस उपन्यास का कुछ अंश ऐसा भी है, जिससे बाणभट्ट का कोई सरोकार प्रत्यक्ष रूप से दृष्टिगोचर नहीं होता है। कड़ियाँ जोड़ने और उपन्यास को सातवीं शताब्दी के पर्यावरण में उतारने

के लिए कई बातें वैसे ही लाई गई हैं। महामाया भैरवी, अघोर भैरव और विरतिवज्र एवं सुचरिता की कथा मेरी उद्घोषणा का प्रमाण हैं। इसकी पुष्टि में यह कहा जा सकता है कि बाण नगर–नगर घूमा था। तदुपरान्त वह गत घटनाओं और तत्सम्बन्धी अनुभवों को आत्मकथाकार की तरह एक जगह बैठ कर अपनी याददाश्त के सहारे शब्दबद्ध करता गया। उसने 'डायरी शैली' में जैसा कि उपन्यासकार की उद्घोषणा है, इससे सुस्पष्ट है कि उसे नहीं लिखा है। "मैं"–परक लिखने का प्रयत्न अवश्यमेव है। आत्मकथात्मक ढंग से इसे लिखा गया। इस "मैं" का आशय आत्मकथात्मक रूप से है, डायरी शैली से वह तालमेल नहीं बिठला पाता है।"

–(ग्रन्थ 'बाणभट्ट की आत्मकथा' : एक अध्ययन', पृष्ठ 29)

भटनागर जी का निष्कर्ष इसीलिए ठीक जान पड़ता है, क्योंकि यह कृति यदि डायरी की शैली में लिखी गई होती, तो उसमें यथार्थ चित्राण की आवश्यकता होते हुए उस पर खरी उतरने के लिए विविध प्रकार की घटनाओं में लेखक कोई भी परस्पर तालमेल या संगति नहीं बिठला सकता था, जबकि इस उपन्यास की घटनायें किसी माला में पिरोई हुई ही जान पड़ती हैं। अतः यह कृति डायरी–शैली में कदापि नहीं लिखी गई है। हाँ, पूर्वदीप्ति या स्मृत्यवलोकन नाम की मनोवैज्ञानिक कथा–शैली का आश्रय इसमें अवश्य लिया गया कहा जा सकता है।

6. आत्मकथा नहीं, जीवनी है

उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' को **'आत्मकथा'** क्यों नहीं कहा जा सकता है, इसे स्पष्ट करने के लिए डॉ॰ नलिन विलोचन शर्मा के इन विचारों को देखना समुचित रहेगा, "आत्मकथा और जीवनी में अन्तर है। आत्मकथा लिखने वाला अपनी केंचुल से बाहर निकल कर अपना विश्लेषण करता है, इसीलिए ईमानदारी से लिखी गई आत्मकथा जीवनी–सी लगती है। इसके विपरीत जीवनी–लेखक वर्ण्य व्यक्ति से अभिन्न (एक, वही) हो कर उसके व्यक्तित्व का संश्लेषण करता है, फलतः सफल जीवनी आत्मकथा बन जाती है।"

–(लेख 'साहित्यिक परकाय प्रवेश, पृष्ठ 262)।

इससे आगे भी वे इस आत्मकथा को एक **'जीवनी'** मानने के पक्ष में तर्क देते हुए यह भी कहते हैं, "व्यक्ति के जीवन के इतिहास के लिए इतनी सामग्री है, तो काफ़ी है। द्विवेदी जी ने इस सामग्री की सम्भावनाओं को देखा और उनका सफाई के साथ उपयोग किया। बाण ने **आत्मकथा** लिखते हुए भी वस्तुतः **जीवनी** लिखी। द्विवेदी जी ने **जीवनी** लिखी और उसे **आत्मकथा** कहा और हमने उसे ऐसा पाया भी–कुछ लोगों ने तो शब्दशः।" –(वही, पृष्ठ 262–263)

7. न आत्मकथा, न जीवनी

डॉ॰ यश गुलाटी का निजी विचार है कि "इस बात पर ज़्यादा बल देने की ज़रूरत नहीं होनी चाहिए कि बाण के ऐतिहासिक व्यक्तित्व से जुड़ी कुछ घटनाओं के उपयोग के बावजूद यह न तो आत्मकथा है और न जीवनी ही। –(ग्रन्थ 'प्रतिनिधि हिन्दी उपन्यास, भाग एक, पृष्ठ 72)।

अतः हम भी इस विचार से सहमत हैं कि यह कृति न तो आत्मकथा है और न ही परम्परागत अर्थ में एक जीवनी है। तब यह क्या है ? इस स्थिति में इस कृति को **एक उपन्यास** मानना ही तर्कसंगत और युक्तियुक्त निर्णय ठहरता है। यह और बात है कि विद्वान् उपन्यासकार ने इसकी रचना में 'आत्मकथा' और 'जीवनी' नामक दोनों साहित्यिक विधाओं के तत्त्वों का सुन्दर समन्वय कर दिया है।

1.2.4.1 स्वयं जांच अभ्यास

1. 'बाणभट्ट की आत्मकथा' उपन्यास है या आत्मकथा। अपना मत स्पष्ट करें।

.....

.....

.....

1.2.5 सारांश :

'बाणभट्ट की आत्मकथा' में नारी को वर्ण्य विषय बनाया गया है। उपन्यासकार ने कथानायक के माध्यम से किसी गूढ़ संवेदना की अभिव्यक्ति को आधार बनाकर अत्यंत ही गूढ़ भाषा में उसकी अभिव्यंजना की है।

1.2.6 शब्दावली :

इन गद्यांशों में अनेक कठिन शब्द आए हैं, जिनमें से कुछ के अर्थ यहाँ कोष्ठकों में दिए जा रहे हैं। छात्राों को चाहिए कि उपन्यास से इसी प्रकार के अन्य कठिन शब्दों का चुनाव करके शब्द–कोशों की सहायता से उनके अर्थ लिख कर याद करते रहें।

कुलभ्रष्टा (जिसका वंश ही पतित या गिरा हुआ हो), **दैवी** (अलौकिक, स्वर्गिक), **अननुकूल टीकाओं** (प्रतिकूल आलोचनाओं), **सद्धर्म** (सच्चा धर्म), **कुतर्क** (बुरे तर्क या दलीलें), **आयुष्मान्** (चिरंजीवी, लम्बी आयु तक जीने वाला), **संयत** (संयमपूर्ण, अपने पर नियन्त्राण रखने वाला), **अनुशीलन** (ध्यानपूर्वक अध्ययन या निरीक्षण), **सद्विचारों** (अच्छे विचारों), **दावाग्नि** (जंगल की आग, लक्ष्यार्थ है–विनाश करने वाली या उसकी सूचिका), **महासन्धिविग्रहिक** (राजप्रशासन में सेना का एक उच्च पदवीधारी, सेनापति या कोई और पद, जिसका उत्तरदायित्व **सन्धि** और **शान्ति** जैसे राष्ट्रीय हितों के सन्दर्भ में विचार–विमर्श के बाद कोई निर्णय लेना हुआ करता था), **नैरात्म्य–भावना** (वस्तुनिष्ठ भावना, जिसमें वैयक्तिकता या आत्मनिष्ठता नहीं रहती है और एक प्रकार की तटस्थता की ही वृत्ति प्रधान हुआ करती है), **चक्र** (यहाँ हर्षकाल में होने वाली धार्मिक संगोष्ठी या प्रार्थना–सभा से आशय है), **सार्थकता** (उपयोगिता, अर्थपूर्णता, महत्ता), **आजीवन** (जीवन भर , पूरे जीवन, ताउम्र), **फक्कड़** (अलमस्त, सांसारिक कामों से अलग, अपने में लीन मस्तमौला), **सैन्य संगठन** (सेना को गठित करने का कार्य या व्यवस्था), **निर्जन वास** (वन जैसे किसी एकान्त स्थान में जा कर निवास करना), **मर्यादाहीन** (किसी भी नैतिक सीमा से रहित या विहीन), **शृंखलाहीन** (क्रमहीन, बेतरतीब, बिखरी हुई, असंगठित), **फेन बुद्बुद** (पानी के झाग से बनने वाले बुलबुलों) इत्यादि।

1.2.7 प्रश्नावली

यहाँ प्रस्तुत पाठ से सम्बन्धित कुंछेक प्रश्न और उनके उत्तर अभ्यास के लिए दिए जा रहे हैं। छात्राों को चाहिए कि पाठ से सम्बन्धित ऐसे ही कुछ और प्रश्नर बना कर अपने आप उनके उत्तर लिखने का अभ्यास करते रहें, जिससे उन्हें निश्चित रूप से लाभ होगा :–

प्रश्न 1. उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' की रचना–सम्बन्धी प्रेरक पृष्ठभूमि पर प्रकाश डालें।

उत्तर : 'धर्मयुग' पत्रिाका के फ़रवरी सन् 1962 के अंक में इस उपन्यास के लिखे जाने की पृष्ठभूमि का उद्घाटन करते हुए एक लेख में दिया गया वक्तव्य आगे प्रस्तुत किया जा रहा है। इससे पता चलता है कि आचार्य हज़ारी

प्रसाद द्विवेदी को इस उपन्यास के लिखने का विचार कैसे आया था। लेख में कहा गया है, "आचार्य द्विवेदी ने **एक वराह मूर्त्ति** देखी थी, जिसमें परम तेजोमय वराह नन्हीं–सी सलज्ज धरित्री का उद्धार कर रहे हैं। जब वे (हर्षवर्धन द्वारा रचित नाटिका) 'रत्नावली' पढ़ते थे, तब विवादास्पद मंगलाचरण को ले कर उनका मन बाणभट्ट की ओर गया। तीसरे, इस बीच में राहुल जी ने **'वोल्गा से गंगा'** (उपन्यास) में बाणभट्ट को नाच–गान में लिप्त, व्यसनी, लम्पट तथा शठ अंकित किया। यही बात श्री हर्ष ने भी उनकी बाबत कही थी, तो आचार्य जी ने इसी तथ्य को रोमांटिक तथा प्रतीकात्मक परिवेश देने के लिए राहुल जी के दो अध्यायों से अधिक चार–पाँच अध्याय में बाणभट्ट को एक जीवनी लिखने तथा अन्त में दीदी का पत्रा छापने और हॉवेल का 'कादम्बरी' की भूमिका का खण्डन करने के लिए उन्हें प्रेरणा मिली। उन्होंने इसे उपन्यास के लिए नहीं लिखा था, किन्तु (समाचारपत्रा) 'विशाल भारत' में पहली दो किस्तों के छपते ही सबसे पहले राहुल जी का प्रशंसात्मक पत्रा और फिर स्व. **चतुरसेन शास्त्री** का पत्रा मिला। फिर पाँच अध्यायों में समापन किए जाने के लिए संकलित यह 'नॉवलेट' (लघु उपन्यास) एक अप्रतिम उपन्यास बन गया।" –(पत्रिका 'धर्मयुग', फ़रवरी सन् 1962)

प्रश्न 2. उपन्यास बाणभट्ट की आत्मकथा उपन्यास है याकि आत्मकथा युक्तियुक्त विवेचन करें।

उत्तर : वास्तव में बाणभट्ट ने अपने को लेखक के कला–कौशल से इस कथा में यों रमा लिया है कि वह मूल ऐतिहासिक पात्रा ही प्रतीत होता है। कुछ समीक्षक इस रचना को आत्मकथा न मान कर एक कलात्मक जीवनी का ही नाम देते हैं, जोकि आत्मकथा की शैली में ही लिखी गई है। डॉ. सरनामसिंह शर्मा 'अरुण' का कथन है कि यह "आत्मकथा न तो इतिहास है, न जीवनी, न अर्द्धकथा, न आत्मकथा और न ही वर्णन–पुष्ट कहानी, वरन् जादूगर के प्रतिमिक स्पर्शों का मनोहर एवं कौतूहलपूर्ण परिणाम है, जो वस्तुतः आत्मकथात्मक शैली का रोमांस है, जो डायरी शैली का कुछ योग है।"

–(ग्रन्थ 'कृति एवं कृतिकार', पृष्ठ 15)।

स्वयं लेखक आचार्य द्विवेदी ने कहा है, "आगे जो कथा दी है, वह दीदी (मिस कैथराइन) ने उन्हें आत्मकथा की पाण्डुलिपि शीण तटा से खोज कर दी है, उसी का यह अनुवाद (हिन्दी में) है और फुटनोटों में जो हवाले दिये गये हैं, वे मेरे हैं।"(उपन्यास, पृष्ठ 9)।

डॉ. मीरा मिश्रा इस उपन्यास के कथा–शिल्प पर विचार करती हुई लिखती हैं, "इस प्रकार लेखक ने यह विश्वास दिलाने का प्रयास किया है कि यह बाणभट्ट की लिखी हुई आत्मकथा है, किन्तु यह शिल्प–सम्बन्धी कोई नई बात नहीं है। इसी तरह राहुल सांकृत्यायन ने भी अपने 'सिंह सेनापति' में पृष्ठभूमि दी है, जिसने पाठकों को विस्मय में डाल दिया। इससे पूर्व जैनेन्द्र ने 'त्यागपत्रा' में इसका सूत्रापात किया था कि यह उपन्यास पी. दयाल का लिखा हुआ है, लेकिन द्विवेदी जी ने अपनी ओर से आत्मकथा की प्रामाणिकता सिद्ध करने की यथासम्भव कोशिश की है। उन्होंन्रे एक बाण तथा हर्ष की कृतियों के सन्दर्भ में इसका मूल्यांकन किया है। इसीलिए आमुख, उपसंहार, पाद–टिप्पणियाँ इस उपन्यास में प्रयुक्त हुई हैं। इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि द्विवेदी जी की लिखी बाणभट्ट की जीवनी बाणभट्ट की आत्मकथा बन गयी, जो उनके निर्माण–कौशल का परिचायक है।"(–ग्रन्थ 'उपन्यासकार हजारी प्रसाद द्विवेदी : ऐतिहासिक सन्दर्भ और आधुनिक बोध', पृष्ठ 172)।

प्रश्न 3. आचार्य द्विवेदी ने अपने इस उपन्यास की आधारभूत सामग्री संस्कृत के किन ग्रन्थों से ली है, उनके नामों का उल्लेख करें ?

उत्तर : इस उपन्यास की कथा के कुछ विषय सम्राट् हर्ष के द्वारा रचित 'रत्नावली' नाटिका के अतिरिक्त महाकवि

और नाटककार कालिदास–कृत 'कुमारसम्भवं' काव्य, 'मेघदूतं' काव्य, 'रघुवंशं' महाकाव्य, नाटक 'विक्रमोर्वशीयं', वेदव्यास–कृत पौराणिक ग्रन्थ 'महाभारत', शूद्रक–कृत नाटक 'मृच्छकटिकं' भरत मुनि के काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ 'नाट्यशास्त्रा' इत्यादि को भी आधार बना कर लिखे गये हैं, ऐसा कहें, तो इसमें कोई भी अतिशयोक्ति नहीं होगी। इसके अतिरिक्त संस्कृत के जिन ग्रन्थों की सामग्री का लेखक ने यत्रातत्रा सदुपयोग किया है, उनमें ये नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय कहे जा सकते हैं :– मालती माधव, अभिलषितार्थ, चिन्तामणि, कामसूत्रा, चतुःशतक, वृहत्संहिता, मिलिन्दप्रश्न इत्यादि।

प्रश्न 4. आत्मकथा नामक विधा के सम्बन्ध में एक सारगर्भित टिप्पणी लिखें ?

उत्तर : 'आत्मकथा' नामक विधा हिन्दी साहित्य में गद्य के अन्तर्गत छायावादोत्तर काल में ही पहले पहल देखने को मिलती है। किसी भी व्यक्ति के द्वारा कलात्मक और साहित्यिक शैली में लिखी गई अपनी जीवनी को ही आत्मकथा कहा जाता है। इसमें आत्मकथाकार के निजी जीवन, उसकी प्रमुख घटनाओं, परिस्थितियों आदि का क्रम से वर्णन हुआ करता है। पाठकों की रुचि को देखते हुए उसे रोचक और शैली में प्रस्तुत किया जाता है। सन् 1641 में पंडित बनारसीदास चतुर्वेदी के द्वारा लिखित 'अर्द्धकथानक' नामक रचना को हिन्दी की सर्वप्रथम आत्मकथा माना जाता है। छायावादी काल से पहले भी ये आत्मकथायें रची गई थीं :–सत्यानन्द अग्निहोत्रीा–कृत 'मुझ में देव–जीवन का विकास' (सन् 1910), स्वामी दयानन्द–कृत 'जीवन–चरित्रा' (1917)। छायावादी युग में ये आत्मकथायें लिखी गईं :–भाई परमानन्द–कृत 'आपबीती' (1921), महात्मा गांधी–कृत 'आत्मकथा' (1923) तथा सुभाषचन्द्र बोस–कृत 'तरुण के स्वप्न' (1935)।

प्रश्न 5. 'बाणभट्ट की आत्मकथा' के आमुख में लेखक ने इस ग्रन्थ की पाण्डुलिपि किसी से मिलने का जो भ्रम प्रस्तुत किया है, इससे पहले किन लेखकों ने इस मौलिक कल्पना को अपनी पुस्तकों में प्रस्तुत किया था ?

उत्तर : लेखक ने यह विश्वास दिलाने का प्रयास किया है कि यह बाणभट्ट की लिखी हुई आत्मकथा है, किन्तु यह शिल्प–सम्बन्धी कोई नई बात नहीं है। इसी तरह राहुल सांकृत्यायन ने भी अपने 'सिंह सेनापति' में पृष्ठभूमि दी है, जिसने पाठकों को विस्मय में डाल दिया। इससे पूर्व जैनेन्द्र ने 'त्यागपत्रा' में इसका सूत्रापात किया था कि यह उपन्यास पी. दयाल का लिखा हुआ है, लेकिन द्विवेदी जी ने अपनी ओर से आत्मकथा की प्रामाणिकता सिद्ध करने की यथासम्भव कोशिश की है। उन्होंन्रे एक बाण तथा हर्ष की कृतियों के सन्दर्भ में इसका मूल्यांकन किया है। इसीलिए आमुख, उपसंहार, पाद–टिप्पणियाँ इस उपन्यास में प्रयुक्त हुई हैं। इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि द्विवेदी जी की लिखी बाणभट्ट की जीवनी बाणभट्ट की 'आत्मकथा' बन गयी, जो उनके निर्माण–कौशल का परिचायक है।"

1.2.8 सहायक पुस्तकें

1. राजेन्द्र मोहन भटनागर, 'बाणभट्ट की आत्मकथा : एक अध्ययन' (आगरा, विनोद पुस्तक–मन्दिर, षष्ठ संस्करण सन् 1981)
2. डॉ. हरमोहन लाल सूद, 'हज़ारी प्रसाद द्विवेदी का सर्जनात्मक साहित्य' (दिल्ली–94, निर्मल पब्लिकेशन, ए–139, गली नं.3, कबीर नगर, प्रथम संस्करण सन् 1998)
3. डॉ. मीरा मिश्रा, 'उपन्यासकार हज़ारी प्रसाद द्विवेदी : ऐतिहासिक सन्दर्भ और आधुनिक बोध' (वाराणसी, विजय प्रकाशन मन्दिर, बी. 21/76, कमच्छा, प्रथम संस्करण गंगा दशहरा सन् 1993 ई.)

4. डॉ॰ यश गुलाटी, 'प्रतिनिधि हिन्दी उपन्यास' (चण्डीगढ़, हरियाणा साहित्य अकादमी, प्रथम संस्करण सन् 1989)

5. डॉ॰ कृष्ण भावुक, 'हिन्दी साहित्य का प्रामाणिक इतिहास' (पटियाला, पेप्सु बुक डिपो, संस्करण वर्तमान वर्ष)

6. संपादक डॉ॰ शिवप्रसाद सिंह, आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी : 'शान्तिनिकेतन से शिवालिक तक'

7. आचार्य हज़ारीप्रसाद द्विवेदी, निबन्ध–संग्रह 'कल्पलता'

8. नरेन्द्र कोहली, 'हिन्दी उपन्यास : सृजन और सिद्धान्त' (दिल्ली, सौरभ प्रकाशन, प्रथम संस्करण सन् 1979)

9. हज़ारीप्रसाद द्विवेदी–ग्रन्थावली, भाग 10. (नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण)

'बाणभट्ट की आत्मकथा' : कथावस्तु, पात्रा, संवाद, देशकाल तथा वातावरण भाषा–शैली और उद्देश्य

पाठ की रूपरेखा :

1.3.0 उद्देश्य

1.3.1 भूमिका

1.3.2 'बाणभट्ट की आत्मकथा' का तात्त्विक विवेचन

- **1.3.2.1** कथावस्तु
- **1.3.2.2** पात्रों का चरित्रा–चित्राण
- **1.3.2.3** संवाद–योजना
- **1.3.2.4** देशकाल और वातावरण
- **1.3.2.5** भाषा–शैली
- **1.3.2.6** उद्देश्य
- **1.3.2.7** स्वयं जांच अभ्यास

1.3.3 सारांश

1.3.4 शब्दावली

1.3.5 प्रश्नावली

1.3.6 सहायक पुस्तकों की सूची

1.3.0 उद्देश्य

इस पाठ का उद्देश्य विवेच्य उपन्यास **'बाणभट्ट की आत्मकथा'** का तात्त्विक विवेचन करना है। यहाँ इस उपन्यास की कथावस्तु के अन्तर्गत संक्षेप में उपन्यास का सारांश प्रस्तुत करने के बाद इसके कथा–गठन पर भी विचार करना अपेक्षित है। इसके बाद पात्रों का चरित्रा–चित्राण या शील–निरूपण किया जाएगा। उसके बाद संवादों की योजना पर भी विचार किया जाएगा। इसके उपरान्त 'देशकाल और वातावरण' शीर्षक के अन्तर्गत इस उपन्यास के बाणकालीन परिवेश में आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों का संक्षेप में लेखा–जोखा

प्रस्तुत करने का प्रयास होगा। आगे उपन्यास की भाषा और शैली पर प्रकाश डाला जाएगा और अन्त में इस ऐतिहासिक और सांस्कृतिक उपन्यास के प्रमुख और गौण उद्देश्यों पर विचार करते हुए इससे मिलने वाले पाठ या सन्देश की ओर भी संकेत करना अभीष्ट रहेगा।

1.3.1 भूमिका

इस पाठ में जिस उपन्यास का तात्त्विक विवेचन करना अभीष्ट है, वह एक 'आत्मकथा' है याकि 'उपन्यास', इस समस्या का विस्तार से विवेचन पिछले पाठ में किया जा चुका है। यहाँ विभिन्न तत्त्वों के आधार पर इस उपन्यास की समीक्षा की जाएगी। यहाँ इस बात का ध्यान रखा जाना आवश्यक है कि वर्तमान काल में रचित अधिकतर उपन्यास पुराने कथा–शिल्प को त्याग कर नवीन प्रयोगों में भी रुचि प्रदर्शित कर रहे हैं। आचार्य जी का यह उपन्यास ऐतिहासिक और सांस्कृतिक होते हुए भी जयशंकर प्रसाद, वृन्दावनलाल वर्मा और आचार्य चतुरसेन शास्त्री के ऐतिहासिक–सांस्कृतिक उपन्यासों से अलग कथा–शिल्प लिए हुए शोभायमान है। कथा–शिल्प के आधार पर यही इसका सबसे बड़ा जमाबिन्दु (Plus-point) कहा जा सकता है।

1.3.2 'बाणभट्ट की आत्मकथा' का तात्त्विक विवेचन

अब विभिन्न शीर्षकों के अन्तर्गत इस उपन्यास की तात्त्विक दृष्टि से समीक्षा प्रस्तुत की जा रही है।

1.3.2.1 कथावस्तु

पहले इस उपन्यास की कथा का सारांश प्रस्तुत किया जा रहा है। कहानी का वास्तविक **आरम्भ** तो बाणभट्ट की कहानी के मध्य भाग से ही होता है। कथानायक बाण कहता है कि वह अपनी इस कहानी का आरम्भ दुर्भाग्य की अपेक्षा सौभाग्य के बखान से करेगा। घटनाओं को पूर्वदीप्ति–पद्धति (फ़्लैशबैक–सिस्टम) के अनुसार स्मृतियों में पिरोया गया है। बाण का जन्म कुलीन माने जाने वाले वात्स्यायन ब्राह्मण–परिवार में हुआ था। पिता प्रकाण्ड पण्डित थे, जिनके दस भाई थे, जिनमें से अधिकतर बाण के जन्म से पहले ही मर चुके थे। चूँकि बचपन में ही बाण की माता और पिता का देहान्त हो गया था, इसीलिए उसका पालन–पोषण उसके चचेरे भाई **उडुपति** ने किया था। वह आरम्भ में नगर–नगर भटकते रहा। वह कभी नट बने, कभी पुतलियों का नाच दिखाता रहा, कभी उसने नाटक–मण्डली का संगठन किया और कभी पुराण बाँच कर वह लोगों की आँखों में धूल भी झोंकता रहा। एक बार घूमते हुए युवक बाण **स्थाण्वीश्वर** (वर्तमान थानेसर) पहुँच गया। उस समय वह नगर महाराज हर्षवर्धन की राजधानी था। संयोग से उसी दिन महाराज के छोटे भाई **कुमार कृष्णवर्धन** के नवजात पुत्रा का जन्मोत्सव मनाया जा रहा था। बाण पुरस्कार पाने के लोभवश कुमार को बधाई देने के लिए महल चल पड़ा। मार्ग में उसे **निउनिया** (निपुणिका) मिल गई। इससे पहले वह नाटक–मण्डली में उसके सम्पर्क में आ चुकी थी। वह नारी उसी से प्रेम करने लगती है। एक दिन वह किसी भ्रान्ति के कारण वह नाटक–मण्डली ही छोड़ कर चली जाती है। कुछ वर्षों बाद बाण की उससे फिर भेंट होती है। बाण उसी की सहायता से भट्टिनी का उद्धार करता है। वह सम्राट् तुवुरमिलिन्द की सुपुत्री थी, जो बाद में दस्युओं के द्वारा पकड़ ली गई थी और स्थाण्वीश्वर के एक छोटे–से राजकुल में बन्दी रह कर निरन्तर कामवासना का शिकार हो रही थी। उसका उद्धार करने के बाद बाण ने सुचरिता, महामाया और निपुणिका के साथ मिल कर राजा हर्ष के द्वारा रचित नाटिका **'रत्नावली'** को मंचित करने की योजना बनाई। इसी प्रकार उसी नाटिका में मंच पर जब राजा बने हुए बाण के हाथ में वासवदत्ता का अभिनय कर रही निपुणिका रत्नावली का हाथ देने लगती है, तब अपने हृदय पर आघात होने के कारण वहीं गिर कर दम तोड़ देती है। उसके मरते ही **सुचरिता** ये शब्द कहती है,

"निपुणिका धन्य हो गई, आर्य ! उसकी चिन्ता छोड़ो, परन्तु उसका बलिदान तभी सार्थक होगा, जब तुम उसके दान का सम्मान करोगे। कौन जानता था कि निपुणिका अपने जीवन से स्त्रीत्व की मर्यादा स्थापित कर जाएगी ?"

अब इस उपन्यास के **कथा–गठन** पर विस्तार से विचार करते हैं। इस उपन्यास की कथावस्तु सरल है, जटिल नहीं। यह उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' केवल अपने नाम में ही **'आत्मकथा'** लिए हुए है। यह कृति मध्यकालीन इतिहास, विशेषतः स्थाण्वीश्वर (वर्तमान थानेसर) के सम्राट् हर्षवर्धन के जीवन और उनके सभापण्डित महाकवि बाणभट्ट के जीवन, प्रेम–प्रसंगों और महान् आदर्शों पर आधारित रचना है। इसमें लेखक ने हर्षकालीन सभ्यता, संस्कृति, रीति–रिवाजों आदि को चित्रित किया है। इसके साथ ही लेखक ने महाकवि बाण की आत्मा में भीतर तक पैठ कर उसके **कलाकार और पण्डित** के अन्तर्द्वन्द्व को भी साकार किया है। इसके साथ ही कहीं–कहीं **'वराह'** के प्रतीक के साथ उसका तादात्म्य भी स्थापित करने की चेष्टा लक्षित होती है।

आधुनिककालीन हिन्दी साहित्य में कथानक को प्रस्तुत करने की जो शैलियाँ प्रचलन में रही हैं, उनका संक्षेप में उल्लेख आगे किया जा रहा है :–1. चित्राण या कथानक का **विश्लेषणपरक प्रस्तुतीकरण** करने की शैली यथा मुंशी प्रेमचन्द के लगभग सभी उपन्यास इसी श्रेणी में रखे जा सकते हैं। 2. **दैनन्दिनी (डायरी)** के रूप में लिखी गई कहानी यथा आचार्य द्विवेदी ने इस उपन्यास को इसी 'डायरी'–शैली में लिखी हुई एक रचना घोषित किया है। वैसे अनेक समीक्षक उनकी इस धारणा से सहमत नहीं हैं। 3. **आत्मकथात्मक शैली,** इसमें सर्वश्री जैनेन्द्र–कृत 'सुखदा', 'व्यतीत' तथा अज्ञेय–कृत 'शेखर : एक जीवनी' नामक उपन्यास और आचार्य द्विवेदी का यह विवेच्य उपन्यास इसी श्रेणी में ये सभी आते हैं। 4. **समय–विपर्यय** की शैली, इस शैली में अतीत, भविष्य और वर्तमान समय को आगे–पीछे करके प्रस्तुत करने का कौशल दिखाया जाता है, उदाहरणतः **जैनेन्द्र** का उपन्यास **'कल्याणी'** ऐसी ही रचना ठहरती है। 5.**पत्रा–शैली** में लिखा हुआ उपन्यास यथा पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' का उपन्यास 'चन्द हसीनों के खतूत' इसी वर्ग की रचना कही जाएगी। 6. **चेतना–प्रवाह–शैली** का ग्रहण केवल मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में ही किया जाता रहा है। हिन्दी साहित्य में अभी इस शैली को अपना कर कोई भी सशक्त उपन्यास नहीं लिखा गया है। अंग्रेज़ी में **जेम्स जॉयस** का उपन्यास **'यूलिसिस'** इसी कोटि का उपन्यास माना जाता है। इस शैली के उपन्यास में मुख्य पात्रा या नायक का विचार–प्रवाह अनेक पृष्ठों तक चला करता है। ऐसे उपन्यास में घटनाओं की अपेक्षा पात्रों के चिन्तन–मनन की ही प्रधानता होती है।

अब हम विवेच्य उपन्यास या आत्मकथा पर विचार करते हैं, तो यह पाते हैं कि लेखक ने इसकी रचना वास्तव में डायरी की अपेक्षा **आत्मकथा की शैली** में ही की है। इस विषय में श्री राजेन्द्र मोहन भटनागर लिखते हैं, "डायरी हमारे जीवन के दिनांक–क्रम पर थिरकती वह कथा है, जो उचितानुचित, लाभालाभ और महत्त्वामहत्त्व को बिना सोचे–समझे लिखी जाती है, यद्यपि महत्त्व का पुट उसमें लुप्त नहीं हो सकता है, क्योंकि डायरी जीवन का लेखा–जोखा है और वह लेखा–जोखा अमहत्त्वपूर्ण क्रम ही होता है, तथापि महत् सर्जना करना उसका एक मात्रा ध्येय नहीं है।

दूसरी ओर, आत्मकथात्मक प्रणाली में **पूर्वदीप्ति** (Flash-Back) का प्रयोग रहता है। यथा 'बाणभट्ट की आत्मकथा' और 'शेखर : एक जीवनी', परन्तु पूर्वदीप्तिविहीन उपन्यास इलाचन्द जोशी का 'पर्दे की रानी' अवलोकनीय है। फिर भी यह अन्तर रह जाता है कि आत्मकथात्मक प्रणाली में कथांश उत्तम पुरुष की शैली अर्थात् मैं–शैली में एक या अनेक पात्रा स्वयं कहते हैं, जैसे 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में निपुणिका, महामाया तथा सुचरिता करती हैं। इस उपन्यास में कथानायक बाणभट्ट ही कथा का प्रमुख केन्द्र है। वह जीवन भर भटकता रहा। अपने विषय में वह स्वयं कहता है, "जन्म का आवारा, गप्पी, अस्थिरचित्त और घुमक्कड़, मैं जब घर से भागा था, अपने साथ गाँव के अन्य छोकरों

को भी उड़ा ले गया था। मगध की बोली में 'बण्ड आप गये, साथ में नौ हाथ का पगहा भी लेते गए' (कहावत)। सो, लोग मुझे **'बण्ड'** कहने लगे। इसी को बाद में संस्कृत शब्द **'बाण'** द्वारा संस्कार करके मैंने इस नाम की कुछ इज़्ज़त बढ़ा ली।"

इस कृति में बाणभट्ट न केवल अपने परिवेश की देन है, अपितु वह विरोधी परिस्थितियों के साथ टकराव में भी खड़ा होते नज़र आता है। "वे अपने जीवन में कुछ मान्यतायें ले कर चले और उनकी रक्षा के लिए अपने अस्तित्व को होम कर देने को तत्पर रहे। संकल्प की इस अडिग शक्ति ने उन्हें एक ऐसी अन्तःदृष्टि प्रदान की, जिससे उन्होंने अपना एक मौलिक संसार रच लिया, जिसमें जीते हुए उन्होंने एक उच्च स्थान प्राप्त किया और वे सार्वजनिक, सार्वकालिक और सार्वदेशिक बन गए। उन्होंने अपने समय के इतिहास को चुनौती दी, क्योंकि वे अपने समय के इतिहास से आगे के व्यक्ति थे। बाण ने अपने परिवेश से संघर्ष करके अपने परम अहं द्वारा अपनी चित्तवृत्तियों का उदात्तीकरण किया, जिसका उल्लेख इस आत्मकथा में हुआ है।

इस प्रकार लेखक का मुख्य प्रयोजन कथानायक बाण के चरित्रा द्वारा जीवन में वास्तविक प्रेम की व्यंजना करना ही रहा है। उसके आत्मबलिदान की प्रशंसा लेखक ने **चारुस्मिता** के इन शब्दों में करवाई है, "निपुणिका स्त्राी जाति की शृंगार थी, स्त्रीत्व की मर्यादा थी और हमारे जैसी उन्मार्गगामिनी नारियों की मार्गदर्शिका थी।" इस प्रकार निपुणिका ने नारी मात्रा को मानो **पंक** से **पंकज** बना दिया था।

डॉ॰ सत्यपाल चुघ व्यंग्यपूर्वक लिखते हैं, "बाणभट्ट की आत्मकथा' में बाणभट्ट की कथा है, जिसे द्विवेदी ने रचा है। वैचित्रय स्पष्ट है कि किसी की जीवनी लिखते समय भी नाम दिया गया है आत्मकथा। इसी में लेखक का उद्देश्य निहित है। उसे तत्कालीन इतिहास की पृष्ठभूमि में बाणभट्ट के साहित्यिक तत्कालीन इतिहास की पृष्ठभूमि में बाणभट्ट के साहित्यिक कृतित्व (**'कर्तृत्व'** शब्द ही सही है) की ऐसी सजीव, समृद्ध एवं यथातथ्याभासी अवगति देनी है, जो उसकी प्रामाणिक आत्मकथा होने का भ्रम उत्पन्न कर सके।"

इस आलोचना के आधार पर तो इस कृति को एक **'उपन्यास'** मानना ही समुचित प्रतीत होता है। डॉ॰ देवराज उपाध्याय ने अपने शोध–प्रबन्ध 'आधुनिक हिन्दी कथा–साहित्य और मनोविज्ञान' में कहा था कि आजकल के मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार अपनी कथाओं में **अविश्वास का इच्छित निराकरण** (Willing Suspension of Disbelief) वाली तकनीक का प्रयोग किया करते हैं। दूसरे शब्दों में, लेखक पाठकों के मन में वर्णित घटनाओं के बारे में जो सन्देह या अविश्वास की भावनायें उदित हुआ करती हैं या उनके उदय होने की आशंका/सम्भावना बनी रहती है, लेखक उसके निराकरण करने के लिए कुछ कल्पित नुस्ख़ों या युक्तियों का सहारा लेने लगे हैं। **डॉ॰ मीरा मिश्रा** का कथन विचारणीय है कि "द्विवेदी जी ने पाठकों को **आत्मकथा की सच्चाई का भुलावा देने के लिए** 'कथामुख' में एक भ्रम उत्पन्न किया है कि –"आगे जो कथा दी है, वह दीदी (मिस कैथराइन) ने उन्हें आत्मकथा की पाण्डुलिपि शोण तट से खोज कर दी है। उसी का अनुवाद (हिन्दी में) और फुट–नोटों में जो पुस्तकों के हवाले दिए गए हैं, वे मेरे हैं।"

–(उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा', पृष्ठ 9)

इस प्रकार की कपोलकल्पित बात महापण्डित राहुल सांकृत्यायन ने भी अपने उपन्यास **'सिंह सेनापति'** की पृष्ठभूमि के रूप में दी थी। हो सकता है, उसी शिल्पगत युक्ति से आचार्य द्विवेदी को भी प्रेरणा मिली हो। डॉ॰ मीरा मिश्रा लिखती हैं कि "इससे पूर्व जैनेन्द्र के उपन्यास **'त्यागपत्रा'** में भी इस (कथाशिल्पगत कौशल) का सूत्रापात किया गया था कि यह उपन्यास **पी॰ दयाल** का लिखा हुआ है, लेकिन द्विवेदी जी ने अपनी

ओर से आत्मकथा की प्रामाणिकता सिद्ध करने की यथासम्भव कोशिश की है। उन्होंने बाण तथा हर्ष की कृतियों के सन्दर्भ में इसका मूल्यांकन किया है, इसीलिए आमुख, उपसंहार, पाद–टिप्पणियाँ इस उपन्यास में प्रयुक्त हुई हैं। इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि द्विवेदी जी की लिखी बाणभट्ट की जीवनी बाणभट्ट की आत्मकथा बन गयी, जो उसके निर्माण–कौशल का परिचायक है।"–(ग्रन्थ पूर्वोक्त, पृष्ठ 172)। यहाँ विदुषी लेखिका ने पुनः एक भ्रम खड़ा कर दिया है और स्पष्ट रूप से यह निर्धारित नहीं किया है कि यह कृति एक आत्मकथा न हो कर 'उपन्यास' नामक विधा की ही रचना है। बाणभट्ट के ग्रन्थ 'कादम्बरी' में भी जो आत्मकथ्या की शैली मिलती है, उससे इस उपन्यास की शैली की तुलना करने पर अवश्य विदुषी लेखिका ने ये सही निष्कर्ष प्रतिपादित किए हैं, "जो **वर्णनों की प्रचुरता का दोष** बाण की शैली में पाया जाता है, वैसे द्विवेदी जी के वर्णन संक्षिप्त एवं सरल हैं। उपमायें भी अधिक उपयुक्त हैं। द्विवेदी जी ने स्वयं 'उपसंहार' में लिखा है, "कादम्बरी की शैली के साथ उसकी शैली में ऊपर से बहुत साम्य दिखता है, आँखों का प्राधान्य इसमें अन्य इन्द्रियों की अपेक्षा अधिक प्रयुक्त हुआ। रूप का, रंग का, शोभा का, सौन्दर्य आदि का वर्णन खूब किया गया है।"

–(आचार्य हज़ारीप्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली, उपसंहार, पृष्ठ 257)

इस उपन्यास में मुख्य कथा **बाणभट्ट तथा भट्टिनी** की है। **'फलागम'** की दृष्टि से यह पक्ष और सुदृढ़ कहा जा सकता है। चूँकि निपुणिका का परिचय बाण के साथ पहले होता है और अन्त भी उसी के देहावसान के साथ होता है, इसीलिए कुछ समीक्षक **बाण और निपुणिका की कथा** को ही इस उपन्यास में प्रधान ठहराते हैं। दोनों के बीच भट्टिनी तो एक समस्या भर है। वह इस कथा को गति तो अवश्य देती ही है। फिर भी जो तुक निपुणिका की बाण के साथ बैठती है, वह भट्टिनी के साथ कदापि नहीं बैठती है। वैसे भी निपुणिका भी कथा के विकास में पर्याप्त सहायक हुई है।

दूसरी ओर, **गौण कथा** में **विरतिवज्र और सुचरिता** की ही कहानी और महामाया की कथा भी आती है। लेखक ने संयोग, भाग्य–विधान और घटनामूलक चमत्कार जैसी पुरानी कथा–युक्तियों से भी काम निकाला है। इसी प्रकार **अघोर भैरव, चारुस्मिता, मदनश्री, सुगतभद्र** आदि की कथायें तो मात्रा भर्ती की ही कही जा सकती हैं। गौण महत्त्व की इन कथाओं में देवी के **आराधक साधक की कथा** अवश्य अपना स्वतन्त्रा महत्त्व रखने वाली कही जा सकती है। विरतिवज्र और सुचरिता की कथा तो उपन्यास की कथा के विकास में साधक न हो कर बाधक ही प्रतीत होती है। इस गौण कथा की उद्‌भावना केवल बौद्ध और वैष्णव संघर्ष को गहराने के लिए ही की गई है। अघोरभैरव महामाया, चण्डमण्डना और अघोरघण्ट आदि पात्रों के प्रसंग केवल वाममार्गी साधना के ही सूचक कहे जा सकते हैं। वसुमती का प्रसंग केवल बौद्ध पाखण्डों को उजागर करने के लिए लाया गया है। इसी प्रकार सुगतभद्र को एक मर्मज्ञ और पारंगत आचार्य के रूप में प्रस्तुत किया गया है। इसी प्रकार मदनश्री और चारुस्मिता जैसे गौण नारी पात्रों की अवतारणा वातावरण की रचना करने के लिए ही की गई है। केवल एक महामाया की प्रासंगिक कथा ही मुख्य कथा से ठीक से जुड़ी हुई है।

उपन्यासकार ने इस उपन्यास को **एक अधूरी कहानी** ही माना है। यह और बात है कि कुछ आलोचक इसे **एक पूरी कथा** ही स्वीकार करते हैं। फिर भी हम यह बात कह सकते हैं कि इस उपन्यास का अन्त पाठकों के मनों में कुछ जिज्ञासायें छोड़ देता है, जिसे उपन्यास के शिल्प के धरातल पर एक गुण माना जाए या फिर दोष, यह बात विवाद के योग्य हो सकती है।

यद्यपि इस उपन्यास की कथा कुछ विचित्रा प्रासंगिक कथाओं को ले कर चलती है, तथापि कथानक में वर्णनात्मक ढंग से जो कुछ वर्णित हुआ है, उसमें कुछेक अपवादों को छोड़ कर लगभग सभी घटनायें सम्भावित और प्रत्याशित होने के कारण इस उपन्यास के मुख्य उद्देश्य में बाधक न हो कर साधक या सहायक ही कही जायेंगी।

अतः कुल मिला कर यह उपन्यास कथावस्तु या कथा–गठन की कसौटी पर सुगठित, सुनियोजित, सुसम्बद्ध और प्रभावोत्पादक ही कहा जाएगा। यदि कहीं कुछ बिखराव आया भी है, तो वह परिवेश की संस्कृति के चित्राण की दृष्टि से निरर्थक न हो कर सार्थक ही ठहराया जा सकता है। श्री राजेन्द्र मोहन भटनागर के इस निष्कर्ष से हम भी सहमत हैं कि, "परिवेश को यथार्थ रूप में जीवन्त करने के लिए जितनी भी बिखरी हुई सम्पृक्त उपकथायें हैं, वे सब इस महाकाव्य (उपन्यास) की परिसीमा के अन्तर्गत सुष्ठु रूप से समा जाती हैं, बिखरी हुई नहीं रह जाती हैं–यही बात इसके कथानक की कसावट के लिए ज्वलन्त प्रमाण है।" आगे भी लिखते हैं, "उपन्यासकार की कथा–नियोजना में सबसे बड़ी विशेषता रही है कि उसने बाण के माध्यम से एक युग विशेष को जीवन्त रूप में प्रस्तुत करने में आशातीत सफलता प्राप्त की है। उपकथाओं ने युग को मुखर किया है। इस प्रकार कथा के टूटते या बिखरे हुए सूत्रा इसकी एक विशेषता बन गए हैं, इस सत्य से कोई इन्कार नहीं कर सकता। इन्कार इस बात से भी नहीं किया जा सकता कि कथा रोचक, रहस्यात्मक, प्रभावोत्पादक तथा संवेदन–सूत्राों को अपने में समेट कर चली है और उसने अतलस्पर्शी स्थलों को सशक्त रूप में प्रस्तुत किया है।"

–(पुस्तक 'बाणभट्ट की आत्मकथा : एक अध्ययन', पृष्ठ 95)

1.3.2.2 पात्राों का चरित्रा–चित्राण

इस उपन्यास में प्रधान पात्रा केवल तीन ही हैं **बाणभट्ट, भट्टिनी** और **निपुणिका**। इनके अतिरिक्त गौण पात्राों में पुरुष पात्रा ये हैं :–**कुमार कृष्ण, वाभ्रव्य, लोरिक देव, अघोर भैरव, सुगत भद्र, धावक, विरतिवज्र**और स्त्राी–पात्राों में **सुचरिता, महामाया** इत्यादि हैं। कथानायक बाणभट्ट को छोड़ कर शेष पात्रा यद्यपि काल्पनिक ही हैं, तथापि अपने परिवेश और स्थितियों आदि के सशक्त निरूपण के कारण ये सभी अनैतिहासिक या इतिहास–विरोधी कदापि नहीं लगते हैं। उपन्यास में इनके **अन्तर्द्वन्द्वों का यथार्थपरक चित्राण** देखते ही बनता है। मानवीय भावों के वाहक और मुख्य कथा से जुड़े महत्त्वपूर्ण पात्रा ये हैं बाण, भट्टिनी, निपुणिका, लोरिक देव और सुचरिता। दूसरे वर्ग में ये पात्रा गिनाए जाते हैं –महाराज हर्षवर्धन, कुमार कृष्ण, छोटे राजकुल के महाराज, वाभ्रव्य, वेंकटेश भट्ट, अघोर भैरव, भर्वुशर्मा, सुगतभद्र, तुवरमिलिन्द, विरतिवज्र, महामाया, भैरवी, मदनश्री इत्यादि।

कथानायक **बाण** एक गतिशील चरित्रा है। यद्यपि अपने बचपन में आवारगी उसके स्वभाव की नित्य विशेषता थी, परन्तु बड़े हो कर वह नारी की स्वातन्त्रय चेतना का प्रबल पक्षधर हो जाता है। उसकी घोषणा थी कि **"मैं स्त्राी–शरीर को देव–मन्दिर जैसा पवित्रा मानता हूँ।"**(पृष्ठ 8)। आवारगी का स्वभाव छोड़ कर वह महाराज हर्षवर्द्धन का सभा–पण्डित बन जाता है और नारी मात्रा के लिए स्वतन्त्राता और उसके अधिकारों की रक्षा के लिए जी–जान से लगा रहता है। उसके स्वभाव की अन्य विशेषतायें हैं–आत्मसम्मान, विद्रोह–चेतना, दृढ़संकल्पता, परिहासप्रियता, आदर्शवादिता इत्यादि।

भट्टिनी राजकुल में जन्म ले कर भी दस्युओं के हाथों में पड़ जाती है। फिर छोटे राजकुल के अन्तःपुर की शोभा बना दी जाती है और कामवासना का शिकार होती रहती है। फिर भी महावराह की आराधिका के नाते उसकी आस्तिकता और धर्मनिष्ठा पर मुहर लगती है। वह एक रूपवती नारी है और गम्भीरता, दृढ़ चरित्रा–सम्पन्नता, प्रेमपरकता, मानवतावादिता, संयमशीलता इत्यादि उसके चरित्रा की प्रमुख विशेषतायें कही जा सकती हैं।

निपुणिका एक अनुपम चरित्रा वाली नारी है। त्यागशीलता, संयमशीलता, उत्कट प्रेम–भावना, आदर्शवादिता, परहितैषिता, समर्पणशीलता इत्यादि उसके चरित्रा के प्रमुख गुणों में गिनाए जा सकते हैं।

महामाया एक गरिमामयी नारी है। बचपन में कुछ घृण्य लोगों ने उसका अपहरण कर लिया था। उसकी इच्छा

के विरुद्ध उसका विवाह बलात् मौखरी नरेश **ग्रहवर्मा** से कर दिया गया था। उस विवाह से पहले उसका वाग्दान **अघोर भैरव** से हो चुका था। महामाया आगे चल कर अन्तःपुर का त्याग करके एक तपस्विनी का जीवन व्यतीत करने लगती है। राजसत्ता और सामन्ती वैभव–विलास के प्रति उसके मन में घोर वितृष्णा का भाव जम चुका था, जिसके कारण ही उसने आजीवन तपस्या करने का व्रत लिया था। अपने इस प्रकार के विद्रोही स्वरों से वह अपने देश के वासियों के सोए पड़े मनों को जगाने का कार्य करती है। वह कहती है, "निरीह प्रजा की बेटियाँ उनकी नयनतारा नहीं हुआ करतीं ? क्या राजा और सेनापति की बेटियों का खो जाना ही संसार की सबसे बड़ी दुर्घटनायें हैं ?.....मैं तुम्हारे देश की लाख–लाख अपमानित, लांछित और अकारण दण्डित बेटियों में से एक हूँ।" जब वह राजकुल के लोगों को ही नारियों का अनैतिक व्यापार करते देखती है, तब भी उसका आक्रोश इन शब्दों में फूट पड़ता है, "कौन नहीं जानता कि इस व्यवसाय के प्रधान आश्रय सामन्तों एवं राजाओं के अन्तःपुर हैं।...अमृतपुत्रो ! धर्म की रक्षा अनुनय–विनय से नहीं होती, शास्त्रा–वाक्यों की संगति लगाने से नहीं होती, अपने को मिटा देने से न्याय के लिए प्राण देना सीखो, मृत्यु का भय माया है।" सुचरिता और विरतिवज्र के बन्दी बना लिए जाने पर वह जनता के बीच जा कर जो भाषण करती है, उससे उसके विद्रोही चरित्रा की रेखायें और अधिक स्पष्टता से उजागर हो जाती हैं। उसके बारे में डॉ॰ मीरा मिश्रा की टिप्पणी है, "डूबती भट्टिनी के बचने के बाद वह उसे माता–सा प्यार देती है। इसके साथ हम देखते हैं कि महामाया के चरित्रा के माध्यम से लेखक को कथा–विस्तार के अनेक बिखरे सूत्राों को एक कड़ी में जोड़ने का सुअवसर मिला है, जिसके द्वारा कथा में स्वाभाविकता दिखाई देती है।

सुचरिता निपुणिका की सखी है। बचपन में ही उसके पति विरतिवज्र संन्यास ग्रहण करके तान्त्रिाक साधना में जा कर आत्मलीन हो जाते हैं। अन्त में जब उसके यही पति वापस आ जाते हैं, तब दोनों ही मिल कर उपासना करने लगते हैं। उपन्यास में हम उसे प्रेम की सच्ची शक्ति के प्रतीक के रूप में देखते हैं। कथानायक बाण के मुख से मानो स्वयं लेखक आचार्य द्विवेदी ही बोलते प्रतीत होते हैं, "तुम सार्थक हो, देवि ! तुम्हारा शरीर और मन सार्थक हैं, तुम्हारा ज्ञान और वाणी सार्थक हैं, सबसे बढ़ कर तुम्हारा प्रेम सार्थक है।....तुम सतीत्व की मर्यादा हो, पातिव्रत्य की पराकष्ठा हो, स्त्राी–धर्म की अलंकार हो !"

डॉ॰ मीरा मिश्रा के शब्दों में, "इस प्रकार कलुषित समाज के कीचड़ में फँसी सुचरिता एक ऐसी मणि है, जो समय आने पर अपनी चमक से रूढ़िग्रस्त समाज को आलोकित करती दिखाई पड़ती है।" –(पूर्वोक्त ग्रन्थ, पृष्ठ 190–191)।

कुल मिला कर यही कहा जा सकता है कि जहाँ गौण पात्राों के चरित्राों का विकास नहीं हो पाया है, वहाँ इन सभी मुख्य पुरुष और स्त्राी पात्राों के चरित्रा यथासम्भव विकसित हुए हैं, एकाध अपवाद की बात अलग है। जिन के चरित्राों को अविकसित ही छोड़ दिया गया है, उनमें कुमार कृष्णवर्द्धन, अघोर भैरव, विरतिवज्र, मदनश्री, चारुस्मिता आदि के नामों का विशेष रूप से उल्लेख किया जा सकता है।

1.3.2.3 संवाद–योजना

इस उपन्यास के संवाद पात्राों के सामाजिक स्तर के पूर्णतः अनुकूल हैं और वे उनके मनोभावों और अन्तर्द्वन्द्वों का पूर्णतः प्रकाशन करने में सर्वत्रा समर्थ कहे जा सकते हैं। उपन्यासकार ने इन संवादों की भाषा भी पात्राों की शिक्षा–दीक्षा और सामाजिक स्तर के अनुकूल ही रखी है। इन संवादों से जहाँ कथा का विकास होता है, वहाँ इनकी सहायता से वक्ता या वक्त्राी की मनोदशा और समस्या आदि का भी प्रकाशन होता चलता है।

इस उपन्यास के कथोपकथनों के विषय में **श्री राजेन्द्र मोहन भटनागर** के इस मत से सहमत हुआ जा सकता है कि, "यद्यपि कथोपकथन इतने अधिक लम्बे कहीं नहीं हुए हैं, कि जिनकी वजह से कथाधारा में व्यवधान

पड़ता हो, अथवा शिथिलता आती हो, तथापि जहाँ कहीं भी लम्बे कथोपकथन की संयोजना हुई है, वहीं जटिल विषय–प्रतिपादन को सहज व सुगम बनाने की उपन्यासकार की चेष्टा रही है। इस सन्दर्भ में ध्यातव्य है कि उपन्यासकार इन स्थलों की खोज सम्यक् रूप से कर सका है, जिनसे उपन्यास को बल मिला है और एकरसता से पाठक को छुटकारा मिल सका है। नीरसता को बेंधने में वातावरण, चरित्रा–चित्राण और विषय–प्रस्थापन तथा प्रतिपादन में कथनोपकथन द्वारा उपन्यास को मिला सहयोग निस्सन्देह अप्रतिम है।"

–(ग्रन्थ ''बाणभट्ट की आत्मकथा' :एक अध्ययन', पृष्ठ 168.)

यहाँ एक उदाहरण प्रस्तुत है। जब बाण भट्टिनी के लिए प्रश्रय माँगने के लिए आचार्यपाद के पास जाता है, तब वे उसे अपने शिष्य कुमार कृष्णवर्धन के पास भेज देते हैं, जोकि उस समय महासन्धिविग्रहिक (युद्ध और शान्ति की समस्याओं से सम्बद्ध मन्त्राी) के पद पर नियुक्त थे। दोनों के मध्य जो संवाद होता है, उसमें वे देवपुत्रा की कन्या भट्टिनी के सामने उसको अपने घर में ही रहने का प्रस्ताव करते हैं। यह सुन कर बाण उस लज्जाजनक प्रस्ताव करने के कारण उन्हें डाँट कर चुप कराने का साहस प्रदर्शित करता है। उपन्यास के ही शब्दों में संवाद इस प्रकार हैं :–

कुमार की भृकुटियाँ तन गईं–"दुर्विनीत ब्राह्मण–बटु ! तुम कल जिस व्यक्ति से भीख माँगने जा रहे थे, उससे बात करने की यह पद्धति है ?"

"कल मैं राह का भिखारी था, कल मैं स्थाण्वीश्वर में राज्य करने वाले राजवंश के कलंक से परिचित नहीं था।"

"और आज क्या हो ?"

"आज मैं विषम समर–विजयी वाह्लीकविमर्दन प्रत्यन्तबाडव देवपुत्रा तुवरमिलिन्द की प्राणाधिका कन्या का अभिभावक हूँ"

"अभिभावक !"

"हाँ, अभिभावक"

"मेरे एक इशारे पर तुम्हारी रक्षणीया देवपुत्रा–कन्या और तुम्हारा क्या हाल हो सकता है, तुम जानते हो ?"

"जानता हूँ; परन्तु कुमार को शायद बाणभट्ट का पूरा परिचय नहीं मालूम। उस इशारे के होने से बहुत पूर्व इशारा करने वाली आँखें नहीं रहेंगी।" यहाँ हमें बाण के रौद्र रूप का स्पष्ट परिचय मिलता है। कुल मिला कर इस उपन्यास के संवाद पाठक के मन पर एक गहरी छाप छोड़ जाने में पूरी तरह से सक्षम माने जा सकते हैं।

1.3.2.4 देशकाल और वातावरण

यह उपन्यास बाणभट्ट की 'आत्मकथा' होने पर भी आत्मकथा की विधा में इसलिए नहीं ठीक बैठती है, क्योंकि लेखक का मुख्य लक्ष्य सम्राट् हर्षवर्द्धनकालीन समाज और संस्कृति का अधिकाधिक चित्राण करना ही था और इसीलिए उसने डायरी की–सी शैली में हर्ष के काल को मूर्तिमन्त करने के लिए महाकवि बाण के द्वारा उसकी आत्मकथा कहने की युक्ति से ही काम लिया है। उस समय की आर्थिक दशा के अन्तर्गत नगरों की प्रजा की आर्थिक समृद्धि का खुल कर वर्णन हुआ है। लेखक ने उस समय **'दीनार'** नामक मुद्रा के जिस चलन की बात की है, वह इसीलिए त्रुटिपूर्ण है, क्योंकि उस समय **'दीनार' (अश्रफ़ी)** नाम वाली वह मुद्रा तो क्या, किसी भी मुद्रा (सिक्के) का प्रचलन न था। इस उल्लेख के एक मात्रा अपवाद को छोड़ दें, तो जन्मोत्सव जैसे उत्सवादि मनाने से उस काल में सभी वर्गों की आर्थिक समृद्धि का अवश्य पता चलता है। इसी प्रकार उस

समय आज की ही तरह से भिक्षावृत्ति की भयावनी समस्या भी न थी। इतना ही नहीं, लोग समाज में विभिन्न जातियों में विभाजित भी न थे।

उस काल में राजनीतिक अवस्था भी उथल–पुथल वाली थी। इसका कारण राजा और प्रजा दोनों का ही मलेच्छों के आक्रमणों से भयभीत होना है। राजपुत्राों की वेतन लेने वाली सेना भला मलेच्छों के आक्रमणों को कैसे रोक सकती थी ? उसमें राष्ट्रीय चेतना का घोर अभाव था। राजसी वर्ग के कामुक लोग और सामन्त आदि तो सदैव नारियों के क्रय–विक्रय में ही लगे रहते थे। यही सामन्त जन भी महाराज हर्षवर्धन की प्रभु–सत्ता से ईर्ष्या रखते थे। विभिन्न पदाधिकारी हरदम कूटनीतियों और षड्यन्त्राों में निमग्न रहा करते थे।

उस समय अवधूत, बौद्ध और वैष्णव सम्प्रदायों का बोलबाला था। धार्मिक क्षेत्राों में भोग–विलास, बाहरी आडम्बर और अनैतिकता बढ़ती जा रही थी। बौद्ध मत को मानने वाले पीले चीवर धारण किया करते थे। बौद्ध विहारों में शिक्षा की अवश्य उच्चस्तरीय व्यवस्था थी। सुगतभद्र जैसे आचार्य प्रायः सभाओं का आयोजन करते रहते थे, जिनमें स्वयं राजा भी जा कर सम्मिलित होते थे। सुचरिता नामक गौण पात्राा महावराह और बाल वासुदेव की भी आराधना करती थी। इससे लोगों की धर्मनिष्ठा का ही प्रमाण मिलता है। इसी प्रकार बनजारों की तरह से घूमने वाले अवधूत साधू, जो चमत्कार दिखाया करते थे, उनसे प्रभावित हो कर निम्नजातीय लोग जा कर उनके अवधूत सम्प्रदाय के ही सदस्य हो जाया करते थे।

इस उपन्यास में **जन्मोत्सव, होलिकोत्सव, मदनोत्सव** आदि मनाने का भी वर्णन हुआ है। चारुस्मिता और विद्युत्अपांगा नामक नर्तकी और गणिका वर्ग की युवतियाँ नृत्य करती दिखाई गई हैं, जिससे संगीतकला और नृत्यकला में लोगों की विशिष्ट अभिरुचि का रेखांकन होता है। मनोरंजन के विभिन्न साधनों में सामन्त **पाशों, द्यूत–क्रीड़ाओं, अन्त्याक्षरी, मानसी, प्रहेलिका, अक्षरच्युतक, वीणावादन**जैसे प्रकारों और **पद–व्याख्या** आदि तरीक़ों से विभिन्न प्रकार की व्याख्यायें किया करते थे। इतना ही नहीं, राजा हर्ष के दरबार में कवियों और कलाकारों को पूर्ण प्रश्रय दिया जाता था। उदाहरणतः कथानाक बाण को भी राजकवि के साथ–साथ 'सभा–पण्डित' भी घोषित किया जाता है। उसी के माध्यम से नाटकों के मंचन की लोक–रुचि का भी पता चलता है। एक ओर, राजपरिवार के लोग नारियों के क्रय–विक्रय में रुचि लेते थे; दूसरी ओर, राज्य भर में जलदस्यु राजशासन की व्यवस्था को पूरी तरह से छिन्न–भिन्न करने पर तुले हुए थे।

इसी प्रकार निपुणिका के प्रसंग से विधवा–विवाह, पुनर्विवाह जैसी सामाजिक समस्याओं को उभारा गया है। उपन्यास में एक स्थल पर भट्टिनी के इस कथन से सामाजिक जातिवाद और भेद–भाव की नीति पर करारा कटाक्ष हुआ है, "यहाँ इतना स्तर–भेद है, कि मुझे आश्चर्य होता है कि यहाँ लोग कैसे जीते हैं। यही देखो, यदि तुम किसी यवन–कन्या से विवाह करो, तो इस देश में एक भयंकर सामाजिक विद्रोह माना जायेगा...भारतवर्ष में जो ऊँचे हैं, वह बहुत ऊँचे हैं, जो नीचे हैं, उनकी निचाई का कोई आर–पार नहीं।"–(पृष्ठ 269)।

इस प्रकार इस उपन्यास में सम्राट् हर्ष के काल के परिवेश को धार्मिक, सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टियों से अधिक–से–अधिक यथार्थ बनाने का प्रयास विद्वान् लेखक के द्वारा किया गया है। पूर्वोक्त स्तर–भेद जैसे उल्लेखों से यह उपन्यास आज भी प्रासंगिक और समय–संगत हो जाता है।

1.3.2.5 भाषा–शैली

जिस काल का वातावरण आदि इस उपन्यास में चित्रित किया गया है, वह **7**वीं शताब्दी से सम्बन्ध रखता है। उस समय भारत में शिक्षित जनों के द्वारा देववाणी संस्कृत ही बोली जाती थी। यही कारण है कि भारत के उच्च कोटि के संस्कृत और हिन्दी भाषा के विद्वान् आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ने इस

उपन्यास में अधिकतर **संस्कृतनिष्ठ हिन्दी** भाषा को ही उस काल को साकार करने के लिए अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया है। फिर भी लेखक ने अपने को दीर्घ समासों वाले वाक्य–विन्यासों से अपने को बचाया है। एक ओर, वह **दूकान, काजल, कोठरी, बन्द** जैसे सर्वजनप्रिय शब्दों से अपनी भाषा में प्रवाहपूर्णता, सरलता और सहजता लाता रहता है; दूसरी ओर, **7**वीं शताब्दी का धन–वैभव और औदात्य दिखाने के लिए **संस्कृतनिष्ठ तत्सम शब्दावली** का भी आश्रय लेता चलता है। इन दोनों ही प्रकार की भाषा के उदाहरण क्रमशः आगे प्रस्तुत हैं :–

1. बोली, "देव–मन्दिर का उद्धार करना है।"

   "इस दूकान पर बैठे हुए निश्चय ही मैंने अपने को काजल की कोठरी में बन्द कर दिया है"

2. "उस दिन मेरा निश्चित विश्वास हो गया कि तुम जड़–पाषाण पिंड हो, तुम्हारे भीतर न देवता है, न पशु है, है एक अडिग जड़ता।"

भाषा की चित्रोपमता के उदाहरणस्वरूप प्रासाद के प्रांगण, फाग खेलने के दृश्य, जलमग्न नौका का वर्णन, राजमार्ग पर जा रहे राजसी जुलूस का वर्णन आदि देखे जा सकते हैं। अन्तिम दृश्य का यह उरेहन देखते ही बनता है, "कूर्मापृष्ठ के समान उन्नतोदर राजमार्ग पर एक बड़ा भारी जलूस चला जा रहा था। उसमें स्त्रियों की संख्या ही अधिक थी। राजवधुएँ बहुमूल्य शिविकाओं पर आरूढ़ थीं। साथ–साथ चलने वाली परिचारिकाओं के चरण–विघटनजनित नूपुरों के क्वणन से दिगन्त शब्दायमान हो उठा था। वेगपूर्वक भुजलताओं के उत्तोलन के कारण मणिजड़ित चूड़ियाँ चंचल हो उठी थीं। इससे बाहुलताएँ भी झनकार करने चली थीं। उनकी ऊपर उठी हथेलियों को देखने से ऐसा लगता था, मानो आकश–गंगा में खिली हुई कमलिनियाँ हवा के झोंके से विलुलित हो कर नीचे उतर आयी हों। भीड़ के संघर्ष से उनके कानों के पल्लव खिसक रहे थे। वे एक दूसरे से टकरा जाती थीं। इस प्रकार एक का केयूर दूसरी की चादर में लग कर उसे खरोंच डालता था। पसीने से धुल–धुल कर अंगराग उसके चीनांशुकों को रंग रहे होते थे।"

आचार्य जी के इस उपन्यास में मुहावरों और कहावतों के साथ प्रायः **सूक्तियों** का भी प्रयोग देखने को मिलता है यथा कुछेक उदाहरण आगे अवलोकनीय हैं :–

1. स्नेह बड़ी दारुण वस्तु है, ममता बड़ी प्रचण्ड शक्ति है।"
2. "पुरुष स्त्री की शक्ति समझ कर ही पूर्ण हो सकता है, पर स्त्री स्त्री की शक्ति समझ कर अधूरी रह जाती है।"
3. नारी की सफलता पुरुष को बाँधने में है और सार्थकता उसको मुक्त करने में"।
4. "बुद्धिमान् की नीति मौन है।"
5. "नारी–देह वह स्पर्श–मणि है, जो प्रत्येक ईंट–पत्थर को सोना बना देती है।"
6. "वस्तुतः कल्मष भी मनुष्य का अपना सत्य है। उसे स्वीकार करके ही वह सार्थक हो सकता है, दबाने से वह मनुष्य को नष्ट कर देता है।"
7. "सत्य अविरोधी होता है।"
8. "जो लक्ष्मी है, वह शोक भी है, जो फूल है, वही मारणास्त्रा भी।"

9. "मृत्यु का भय माया है।"

इस उपन्यास की भाषा में संस्कृत के जो **तत्सम शब्द** प्रयुक्त हुए हैं, उनमें अप्रचलित और प्रचलित दोनों ही प्रकार के शब्द हैं। यथा **स्मयमान** (अर्थ मुस्कराते हुए), **आलक्तक–रस** (महावर), **वराटक** (कौड़ी), **तिष्करिणियाँ** (पर्दे), **सौगन्धिक पुटिका** (इत्रादान), **कुट्टिम** (संगमर्मर), **प्रच्छदपट** (चादर), **अंशुकांत** (आंचल), **धारायन्त्रा** (फव्वारा), **न्यग्रोध** (बरगद का पेड़), **कम्मलेक** (ऊँट), **पतद्ग्रह** (पीकदान) इत्यादि।

तद्भव और देशज शब्दों का भी यत्रातत्रा प्रयोग हुआ है, जो संस्कृत के तत्सम शब्दों की सभा के बीच नगीनों से चमक रहे होते हैं यथा **कनाबड़ा, किवाड़, जबड़े, पगहा, भरती, उलीचना, खली, निउनिया, हथियाना, भटकान, दुतल्ला** इत्यादि।

हिन्दी से इतर भाषाओं के शब्दों की भी बहार देखी जा सकती है यथा **अंग्रेज़ी शब्द** फुटनोट, अरबी शब्द यथा **फ़ुरसत, शामिल, लायक, मुश्किल, सिवा, गरीब, सिर्फ़, साफ़, इशारे, बेतरह** फ़ारसी शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं यथा **होश, बेकार, शर्म, बेहोश, कोशिश, परवा, दरवाज़े, देर, ज़िंदगी** इत्यादि। कन्नौजी बोली के शब्दों में **क्षीबा** शब्द है और अपभ्रंश भाषा के शब्दों में **अज्ज** जैसे एकाध शब्द ही का प्रयोग हुआ है। वास्तव में ऐसे शब्द विरल ही हैं।

इसी प्रकार भाषा में **प्रसाद गुण** सर्वत्रा देखा जा सकता है। परस्पर संवादों के समय यह गुण विशेष रूप से उभर आया करता है। एक स्थल पर **भट्टिनी** का यह कथन इसी गुण से ओतप्रोत माना जा सकता है, "यही देखो, तुम यदि किसी यवन–कन्या से विवाह करो, तो इस देश में एक भयंकर सामाजिक विद्रोह माना जाएगा। परन्तु यह क्या सत्य नहीं है कि यवन कन्या भी मनुष्य है और ब्राह्मण युवा भी मनुष्य है। महामाया जिन्हें म्लेच्छ कह रही हैं, वे भी मनुष्य हैं। भेद इतना ही है कि इनमें सामाजिक ऊँच–नीच का ऐसा भेद नहीं है।"

अब **माधुर्य गुण** से युक्त भाषा का यह सटीक उदाहरण देखें, जिसमें भट्टिनी कहती है :–"भट्ट, मैं अभागिन हूँ। तुमने ही मुझे जीने की सार्थकता सिखलायी है। मैं नहीं जानती कि किसी प्राक्तन पुण्य से महावराह ने तुम्हें मेरे पास भेज दिया था। तुम्हारे साथ रह कर मैं भूल गई थी कि मैं भाग्यहीना हूँ ! मैंने तुम्हें बहुत कष्ट दिया है और भी बहुत देती रहूँगी। मैं अबोध बाला हूँ। निपुणिका ने आज उन्मत्त प्रलाप के भीतर से मुझे मेरा स्वरूप दिखला दिया है। कौन जाने, उसका कहना ठीक हो कि मैं तुम्हें गंगा में डुबाने के लिए स्वयं गंगा में कूद पड़ी थी, मैं नहीं कह सकती। मुझे क्षण भर के लिए ऐसा मालूम हुआ था कि मौखरियों के उस निर्घृण महाराज ने मुझे फिर से क़ैद करना चाहा था। जब विग्रह वर्मा तुमसे बता रहा था कि वह मौखरि है, तभी मुझे संदेह हुआ था।"

इसी प्रकार उपन्यास के 'अष्टादश उच्छ्वास' में भैरवियों के द्वारा अपभ्रंश भाषा में जो गान गाया गया है, उसमें **ओज गुण** मिलता है। इसी प्रकार अगले कथनों में भी यही गुण विद्यमान देखा जा सकता है। इस गुण के कुछ उदाहरण आगे प्रस्तुत किए जा रहे हैं :–

1. "समुद्रगुप्त के प्रताप ने क्या किया, चन्द्रगुप्त के रण–हुँकार ने **क्या किया,** मौखरियों की दुर्दान्त वाहिनी ने **क्या किया** ? म्लेच्छ अब भी जीवित हैं। अमृत के पुत्राो ! प्रत्यन्त दस्यु आ रहे हैं।" यहाँ **क्या किया** वाक्य की आवृत्ति से शैली में विशेष नाटकीयता और सरसता आ गई है।

2. "राजाओं का भरोसा करना प्रमाद है, राजपुत्राों की सेना का मुँह ताकना कायरता है, आत्म–रक्षा का भार किसी जाति पर छोड़ना मूर्खता है। जवानो ! प्रत्यन्त दस्यु आ रहे हैं।" यहाँ **'प्रत्यन्त दस्यु आ रहे हैं'** इस

वाक्य से भाषा में **नाटकीयता की शैली** का समावेश सहज रूप में हो गया है।

3. "कौन है, जो इसकी गति रोक सके। कौन है, जो इसके तरंगावर्त में न डूब जाये, कौन है, जो इसके भीम वेग में न बह जाये–यह है आर्यावर्त के तरुणों की दुरंगम वाहिनी।"

4. अमृतपुत्राो ! कुलवधुओं का सुहाग तुम्हारे हाथ में है, बालिकाओं की लाज तुम्हारे हाथ में है, वृद्धों का मान तुम्हारे हाथ में है–यह है आर्यावर्त के तरुणों की दुरंगम वाहिनी।" यहाँ भी तुम्हारे हाथ में है' इस वाक्य से भाषा में **नाटकीयता की शैली** का समावेश देखा जा सकता है।

इसी प्रकार उपन्यास की भाषा **मुहावरों और कहावतों** के प्रचुर प्रयोग से रोचक और सरस शैली वाली हो गई है। कुछ **मुहावरे** ये हैं :–नयनतारा, काजल की कोठरी, आकाशकुसुम, उबल पड़ना, काँटे की तरह चुभना, सिर चढ़ा रखना, पौ बारह, मुँह ताकना, आँख दिखाना, बहत्तर घाट का पानी पीना, नाक बचाना, मुँह जोहना, सिर–आँखों पर, पथराई आँखों से ताकना, गाँठ बाँध लेना, उबल पड़ना, काठ मारना, खेत रहना इत्यादि।

कहावतों या लोकोक्तियों का प्रयोग देखें :–1. अकेला चना क्या भाड़ फोड़ सकता है ? 2. दूध का जला, मट्ठा फूँक कर पीता है, इत्यादि।

इसी प्रकार कथा प्रस्तुत करने की शैली में मनोवैज्ञानिक उपन्यासों–कहानियों आदि में सिनेमैटोग्राफ़ी की तकनीक के प्रभावस्वरूप **पूर्वदीप्ति** (या **पूर्वावलोकन** या **स्मृत्यवलोकन** –(फ़्लैशबैक Flashback) पद्धति का प्रयोग होने लगा है। इस शैली में अतीतकालीन घटनाओं आदि को स्मृतियों के सहारे बिलकुल वर्तमान काल में घटित होने वाली घटनाओं आदि की तरह से ही लेखक के द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। प्रस्तुत उपन्यास में ऐसे कई स्थल हैं, जहाँ इस शैली का व्यवहार देखा जाता है, यथा बाणभट्ट अतीत के किसी समय में अपनी वेशभूषा धारण करने के विषय में याद करते हुए कहता है, "उस दिन मैंन डट के स्नान किया, शुक्ल अंगराज धारण किया, शुक्ल पुष्पों की माला धारण की, आगुल्फ शुक्ल धौत उत्तरीय धारण किया–वही मेरा प्रिय वेश था।"

इसी प्रकार निपुणिका का रूप–वर्णन करते हुए लेखक प्रायः किसी चित्राकार की तूलिका के–से स्पर्शों का प्रयोग करता नज़र आता है। यथा दो उदाहरण इस **काव्यात्मक और चित्राात्मक शैली** के प्रस्तुत हैं:–

1. "उसके मुख–मण्डल पर तारुण्य था, परन्तु उसकी दीप्ति धुँधली हो गई थी, जैसे धुआँ उगलती हुई दीपशिखा हो। उसकी आँखें संध्या के धुँधले प्रकाश में चमक रही थीं। उनके किनारों पर साफ़ दिख जाने वाली काली रेखायें उस चमक को अभिभूत नहीं कर पाती थीं। उसका रंग अवश्य शेफालिका के कुसुमजाल के रंग से मिलता था; परन्तु उसकी सबसे बड़ी चारुता–सम्पत्ति उसकी आँखें और अंगुलियाँ ही थीं।...नटी की प्रणामांजलि और पताका–मुद्राओं को सफल बनाने में पतली–छरहरी अंगुलियाँ अद्‌भुत प्रभाव डालती हैं।" यहाँ सांस्कृतिक धरातल पर **नृत्यकला–विषयक ज्ञान** का भी प्रमाण प्रस्तुत होता है।

2. जैसे ही बाण उसे आवाज़ लगाता है, वह तुरन्त उसके सामने आ कर खड़ी हो जाती है :–"उसका बाँयाँ हाथ कटि–प्रदेश पर व्यस्त था, कंकण कलाई पर सरक आया था, दाहिना हाथ शिथिल श्यामलता के समान झूल पड़ा था, उसकी कमनीय देह–लता नृत्य–भंग से ज़रा झुक गई थी, मुख–मण्डल श्रमबिन्दुओं से परिपूर्ण था। ...उसके अधरों पर ज़रा–सी स्मिति–रेखा प्रकट हो आई और कुछ देर के लिए उसकी आँखें झुक गईं। उसी समय उसके शिथिल कबरीबंध से एक मल्लिका–पुष्प गिर गया और इस अपराध का दण्ड उसे तुरन्त मिल गया। निपुणिका अपने पादांगुष्ठों से उसे इधर–उधर रगड़ने लगी।"

गद्य की शैलियों के दो ही मुख्य प्रकार माने गए हैं। पहला प्रकार तो वह है, जहाँ लेखक कम–से–कम शब्दों में किसी व्यक्ति, स्थिति, दृश्य, घटना आदि का नपा–तुला वर्णन करने का कला–कौशल प्रदर्शित करता है। इस उपन्यास में गद्य की इस **समास शैली** का भी कहीं–कहीं प्रयोग मिल जाता है यथा :–

1. बाबा हँ.सते रहे। बोले, "ना रे पागल, प्राण मैं नहीं माँगता। मैं जानना चाहता हूँ कि उस कन्या पर तेरी ममता है या नहीं ? सीधा क्यों नहीं कहता है कि तेरी जाति टेढ़ी है। हाँ रे, और महावराह पर तेरी ममता है ?"

2. "प्रवृत्तियों से डरना भी गलत है, उन्हें छिपाना भी ठीक नहीं और उनसे लज्जित होना बालिशता है।"

3. "साधारणतः जिन स्त्रियों को चंचल और कुलभ्रष्टा माना जाता है, उनमें एक दैवी शक्ति भी होती है, यह बात लोग भूल जाते हैं।"

4. पुरुष निःसंग है, स्त्री आसक्त; पुरुष निर्द्वन्द्व है, स्त्री द्वन्द्वोन्मुखी; पुरुष मुक्त है, स्त्री बद्ध।" ये सभी उदाहरण 'गागर में सागर' भरने वाली गद्य की समास शैली के ही हैं।

इस शैली के ठीक विपरीत गद्य की **व्यास शैली** हुआ करती है, जिसमें बातों को विस्तार के साथ बताया या वर्णित किया जाता है। **'व्यास'** शब्द का अर्थ ही है विस्तार, फैलाव। अब इस व्यास शैली का भी एक उदाहरण देखें, क्योंकि इस उपन्यास में अनेक स्थलों पर विद्वान् लेखक आचार्य द्विवेदी ने इस शैली का भी खुल कर प्रयोग किया है। कुमार कृष्णवर्द्धन के महल का एक शब्दचित्रा अवलोकनीय है, "कुमार का गृह बहुत स्वच्छ और सुन्दर था। दीवारें स्फटिक–मणि के समान स्वच्छ थीं। उनके ऊपरी हिस्से में बहुत उत्तम अलंकार–चित्रा बने थे। उत्फुल्ल कमलों का एक अविरल प्रवाही ोत–सा अंकित था, जिसके बिन्दु–बिन्दु पर हंस, मत्स्य, गज और शार्दूल ोत की अभिमुख दिशा में ंलपकते हुए चित्रित थे। सारा ऊपरी हिस्सा एक सुलझी हुई कमलिनी–लता की धारा थी, जिसके प्रत्येक पत्ते में कोई–न–कोई जीवाकृति बन जाती थी। दरवाज़े के सामने वेस्सन्तर जातक का भावपूर्ण चित्रा था। जो ब्राह्मण राजकुमार के पुत्रा को दान–रूप में माँग रहा था। उसकी कातर मुख–मुद्रा स्पष्ट ही फूट रही थी, परन्तु राजकुमार और उनके पुत्राों में जो सहज दानवीर भाव था, वह देखने लायक़ था।" यहाँ सांस्कृतिक धरातल पर पुनः एक धार्मिक ग्रन्थ का उल्लेख अवलोकनीय है। इसके साथ ही दानशीलता की नैतिकता की संस्कृति भी उभरती है।

इसी व्यास शैली के गद्य का एक और सटीक उदाहरण यह है, जहाँ बाण भट्टिनी के दर्शन पहली बार करता है :–"निश्चय ही यह धर्म के हृदय से निकली हुई है। मानो विधाता ने शंख खोद **कर**, मुक्ता से खींच कर, मृणाल से सँवार **कर**, चन्द्रकिरणों के कूर्चक से प्रक्षालित **कर**, सुधाचूर्ण से धो **कर**, रजतरज से पोंछ **कर**, कुटज कुन्द और सिन्धुवार पुष्पों की धवल कान्ति से सजा **कर** ही उसका निर्माण किया था।"

यहाँ **'कर'** शब्द की सायास आवृत्तियों से जहाँ प्रवाहमयता, नाटकीयता आदि गुण आ गए हैं। गद्य की यह शैली श्री जयशंकर प्रसाद के काव्यात्मक गद्य का स्मरण दिलाते हैं, जबकि वे स्वयं एक सशक्त कवि और नाटककार थे। आचार्य द्विवेदी ने अपवाद–रूप में कुछ कविताएँतो अवश्य लिखी थीं, किन्तु नाटक कोई भी नहीं लिखा था। फिर भी उनके गद्य में ऐसे **नाटकीय तत्त्व** उसमें रोचकता, सरसता और प्रवाहमयता का समावेश करने वाले ही जमाबिन्दु हैं।

1.3.2.7 स्वयं जांच अभ्यास

1. 'बाणभट्ट की आत्मकथा' उपन्यास में देशकाल और वातावरण विषय पर प्रकाश डालें।

.....

.....

.....

2. 'बाणभट्ट की आत्मकथा' उपन्यास के उद्देश्य पर प्रकाश डालें।

.....

.....

.....

1.3.3 सारांश

बाणभट्ट की आत्मकथा उपन्यास में मुख्य कथा बाणभट्ट तथा भट्टिनी के इर्द गिर्द घूमती है। फलागम की दृष्टि से यह पक्ष सुदृढ़ कहा जा सकता है। इससे कथा को गति मिलती है।

1.3.4 शब्दावली

इन गद्यांशों में अनेक कठिन शब्द आए हैं, जिनमें से कुछ के अर्थ यहाँ कोष्ठकों में दिए जा रहे हैं। छात्राों को चाहिए कि उपन्यास से इसी प्रकार के अन्य कठिन शब्दों का चुनाव करके शब्द–कोशों की सहायता से उनके अर्थ लिख कर याद करते रहें।

कुलभ्रष्टा (जिसका वंश ही पतित या गिरा हुआ हो), **दैवी** (अलौकिक, स्वर्गिक), **अननुकूल टीकाओं** (प्रतिकूल आलोचनाओं), **सद्धर्म** (सच्चा धर्म), **कुतर्क** (बुरे तर्क या दलीलें), **आयुष्मान्** (चिरंजीवी, लम्बी आयु तक जीने वाला), **संयत** (संयमपूर्ण, अपने पर नियन्त्राण रखने वाला), **अनुशीलन** (ध्यानपूर्वक अध्ययन), **सद्विचारों** (अच्छे विचारों), **दावाग्नि** (जंगल की आग, लक्ष्यार्थ विनाश करने वाली या उसकी सूचिका), **महासन्धिविग्रहिक**(राजप्रशासन में सेना का एक उच्च पद, सेनापति या कोई और पद, जिसका उत्तरदायित्व **सन्धि** और **शान्ति** जैसे राष्ट्रीय हितों के सन्दर्भ में विचार–विमर्श के बाद कोई निर्णय लेना हुआ करता था), **नैरात्म्य–भावना** (वस्तुनिष्ठ भावना, जिसमें वैयक्तिकता या आत्मनिष्ठता नहीं रहती है और एक प्रकार की तटस्थता की ही वृत्ति प्रधान हुआ करती है), **चक्र** (यहाँ हर्षकाल में होने वाली धार्मिक संगोष्ठी या प्रार्थना–सभा से ही आशय है), **सार्थकता** (उपयोगिता, अर्थपूर्णता, महत्ता), **आजीवन** (जीवन भर, पूरे जीवन, ताउम्र), **सैन्य संगठन** (सेना को गठित करने का कार्य या व्यवस्था), **निर्जन वास** (वन जैसे किसी एकान्त स्थान में जा कर निवास करना), **पुरुष, मर्यादाहीन** (किसी भी नैतिक सीमा से रहित या विहीन), **शृंखलाहीन** (क्रमहीन, बेतरतीब, बिखरी हुई, असंगठित), **फेन बुद्बुद** (पानी के झाग से बनने वाले बुलबुलों) इत्यादि। **देशज शब्द** विरल ही हैं यथा **फक्कड़** (अलमस्त, सांसारिक कामों से अलग, अपने में लीन मस्तमौला)।

1.3.5 प्रश्नावली

यहाँ उपन्यास से सम्बन्धित कुछ लघु प्रश्न और उनके उत्तर दिए जा रहे हैं, जोकि मात्रा संकेतस्वरूप ही हैं।

इन्हीं के सहारे छात्रों को लघु और सुदीर्घ दोनों प्रकार के ही उत्तर लिखने का अभ्यास करते रहना चाहिए। ऐसा करने से परीक्षा में वे प्रश्नों के अपेक्षित उत्तर दे सकेंगे।

प्रश्न 1. कृति 'बाणभट्ट की आत्मकथा' कथा–शिल्प के धरातल पर एक आत्मकथा है याकि उपन्यास, तर्कपूर्ण उत्तर दें।

उत्तर : लेखक ने इस कृति की रचना वास्तव में डायरी की अपेक्षा आत्मकथा की शैली में ही की है। इस विषय में श्री राजेन्द्र मोहन भटनागर लिखते हैं, "डायरी हमारे जीवन के दिनांक–क्रम पर थिरकती वह कथा है, जो उचितानुचित, लाभालाभ और महत्त्वामहत्त्व को बिना सोचे–समझे लिखी जाती है, यद्यपि महत्त्व का पुटा उसमें लुप्त नहीं हो सकता है, क्योंकि डायरी जीवन का लेखा–जोखा है और वह लेखा–जोखा अमहत्त्वपूर्ण क्रम ही होता है, तथापि महत् सर्जना करना उसका एक मात्रा ध्येय नहीं है। डॉ॰ सत्यपाल चुघ व्यंग्यपूर्वक लिखते हैं, "बाणभट्ट की आत्मकथा' में बाणभट्ट की कथा है, जिसे द्विवेदी ने रचा है। वैचित्रय स्पष्ट है कि किसी की जीवनी लिखते समय भी नाम दिया गया है 'आत्मकथा'। इसी में लेखक का उद्देश्य निहित है। उसे तत्कालीन इतिहास की पृष्ठभूमि में बाणभट्ट के साहित्यिक तत्कालीन इतिहास की पृष्ठभूमि में बाणभट्ट के साहित्यिक कृतित्व ('कर्तृत्व' शब्द ही सही है) की ऐसी सजीव, समृद्ध एवं यथातथ्याभासी अवगति देनी है, जो उसकीइ प्रामाणिक आत्मकथा होने का भ्रम उत्पन्न कर सके।"

इस आलोचना के आधार पर तो इस कृति को एक 'उपन्यास' मानना ही समुचित प्रतीत होता है।

प्रश्न 2 'बाणभट्ट की आत्मकथा' के कथागठन के सन्दर्भ में बताइये कि आत्मकथा की सच्चाई का भुलावा देने का क्या अर्थ है ?

उत्तर : डॉ॰ देवराज उपाध्याय ने अपने शोध–प्रबन्ध 'आधुनिक हिन्दी कथा–साहित्य और मनोविज्ञान' में कहा था कि आजकल के मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार अपनी कथाओं में अविश्वास का इच्छित निराकरण (Willing Suspension of Disbelief) वाली तकनीक का प्रयोग किया करते हैं। दूसरे शब्दों में, लेखक पाठकों के मन में वर्णित घटनाओं के बारे में जो सन्देह या अविश्वास की भावनायें उदित हुआ करती हैं या उनके उदय होने की आशंका रहती है, लेखक उसके निराकरण करने के लिए कुछ कल्पिन नुस्ख़ों या युक्तियों का सहारा लेने लगे हैं। डॉ॰ मीरा मिश्रा का कथन विचारणीय है कि "द्विवेदी जी ने पाठकों को **आत्मकथा की सच्चाई का भुलावा देने के लिए** कथामुख में एक भ्रम उत्पन्न किया है कि "आगे जो कथा दी है, वह दीदी (मिस कैथराइन) ने उन्हें आत्मकथा की पाण्डुलिपि शीण तट से खोज कर दी है उसी का अनुवाद (हिन्दी में) और फुटनोटों में जो पुस्तकों के हवाले दिए गए हैं, वे मेरे हैं।"(उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा', पृष्ठ 9)।

इस प्रकार की कपोलकल्पित बात महापण्डित **राहुल सांकृत्यायन** ने भी अपने उपन्यास **'सिंह सेनापति'** की पृष्ठभूमि के रूप में दी थी। हो सकता है, उसी शिल्पगत युक्ति से आचार्य द्विवेदी को भी प्रेरणा मिली हो। डॉ॰ मीरा मिश्रा लिखती हैं कि "इससे पूर्व जैनेन्द्र के उपन्यास **'त्यागपत्रा'** में भी इस (कथाशिल्पगत कौशल) का सूत्रापात किया गया था कि यह उपन्यास **पी॰ दयाल** का लिखा हुआ है, लेकिन द्विवेदी जी ने अपनी ओर से आत्मकथा की प्रामाणिकता सिद्ध करने की यथासम्भव कोशिश की है। उन्होंने बाण तथा हर्ष की कृतियों के सन्दर्भ में इसका मूल्यांकन किया है, इसीलिए आमुख, उपसंहार, पाद–टिप्पणियाँ इस उपन्यास में प्रयुक्त हुई हैं। इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि द्विवेदी जी की लिखी बाणभट्ट की जीवनी बाणभट्ट की आत्मकथा बन गयी, जो उसके निर्माण–कौशल का परिचायक है।"(ग्रन्थ पूर्वोक्त, पृष्ठ 172)।

प्रश्न 3. 'बाणभट्ट की आत्मकथा' के कथागठन पर विचार करते हुए इसकी मुख्य और गौण कथाओं का भी संकेत करें।

उत्तर : इस उपन्यास में मुख्य कथा बाणभट्ट तथा भट्टिनी की है। फलागम की दृष्टि से यह पक्ष और सुदृढ़ कहा जा सकता है। चूँकि निपुणिका का परिचय बाण के साथ पहले होता है और अन्त भी उसी के देहावसान के साथ होता है, इसीलिए कुछ समीक्षक बाण और निपुणिका की कथा को ही इस उपन्यास में प्रधान ठहराते हैं। दोनों के बीच भट्टिनी तो एक समस्या भर है। वह इस कथा को गति तो अवश्य देती ही है। फिर भी जो तुक निपुणिका की बाण के साथ बैठती है, वह भट्टिनी के साथ कदापि नहीं बैठती है। इसके अतिरिक्त निपुणिका भी कथा के विकास में पर्याप्त सहायक हुई है।

दूसरी ओर, गौण कथा में विरतिवज्र और सुचरिता और महामाया की कथा भी आती है। लेखक ने संयोग, भाग्य–विधान और घटनामूलक चमत्कार जैसी पुरानी कथा–युक्तियों से भी काम निकाला है। इसी प्रकार अघोर भैरव, चारुस्मिता, मदनश्री, सुगतभद्र आदि की कथायें तो मात्रा भर्ती की ही कही जा सकती हैं। गौण महत्त्व की इन कथाओं में देवी के आराधक साधक की कथा अवश्य अपना स्वतन्त्रा महत्त्व रखने वाली कही जा सकती है। विरतिवज्र और सुचरिता की कथा तो उपन्यास की कथा के विकास में साधक न हो कर बाध क ही प्रतीत होती है। इस गौण कथा की उद्‌भावना केवल बौद्ध और वैष्णव संघर्ष को गहराने के लिए ही की गई है। अघोरभैरव महामाया, चण्डमण्डना और अघोरघण्ट आदि पात्राों के प्रसंग केवल वाममार्गी साधना के ही सूचक कहे जा सकते हैं। वसुमत?ी का प्रसंग केवल बौद्ध पाखण्डों को उजागर करने के लिए लाया गया है। इसी प्रकार सुगतभद्र को एक मर्मज्ञ और पारंगत आचार्य के रूप में प्रस्तुत किया गया है। इसी प्रकार मदनश्री, चारुस्मिता की अवतारणा वातावरण की रचना करने के लिए ही की गई है। केवल एक महामाया की प्रासंगिक कथा ही मुख्य कथा से ठीक से जुड़ी हुई है।

प्रश्न 4. 'बाणभट्ट की आत्मकथा' उपन्यास में हर्ष के काल की धार्मिक स्थिति पर एक सारगर्भित टिप्पणी करें ?

उत्तर : उस समय अवधूत, बौद्ध और वैष्णव सम्प्रदायों का बोलबाला था। धार्मिक क्षेत्राों में भोग–विलास, बाहरी आडम्बर और अनैतिकता बढ़ती जा रही थी। बौद्ध मत को मानने वाले पीले चीवर धारण किया करते थे। बौद्ध विहारों में शिक्षा की अवश्य उच्चस्तरीय व्यवस्था थी। सुगतभद्र जैसे आचार्य प्रायः सभाओं का आयोजन करते रहते थे, जिनमें स्वयं राजा भी आ कर सम्मिलित होते थे। सुचरिता महावराह की पूजा करती थी और बाल वासुदेव की भी आराधना करती थी। इससे लोगों की धर्मनिष्ठा का ही प्रमाण मिलता है। इसी प्रकार बनजारों की तरह से घूमने वाले अवधूत साधू जो चमत्कार दिखाया करते थे, उनसे प्रभावित हो कर निम्नजातीय लोग उनके अवधूत सम्प्रदाय के सदस्य हो जाया करते थे।

प्रश्न 5. 'बाणभट्ट की आत्मकथा' उपन्यास में देशकाल के चित्राण पर संक्षेप में विचार व्यक्त करें ?

उत्तर : लेखक का मुख्य लक्ष्य सम्राट् हर्षवर्द्धनकालीन समाज और संस्कृति का अधिकाधिक चित्राण करना ही मुख्य अभीष्ट था और इसीलिए उसने डायरी की–सी शैली में हर्ष के काल को मूर्तिमन्त करने के लिए महाकवि बाण की आत्मकथा कहने की युक्ति से काम लिया है। उस समय की आर्थिक दशा के अन्तर्गत नगरों की प्रजा की आर्थिक समृद्धि का खुल कर वर्णन हुआ है। लेखक ने उस समय **दीनार** के जिस चलन की बात की है, वह इसीलिए त्राुटिपूर्ण है, क्योंकि उस समय **दीनार (अश्रफ़ी)** नाम वाली इस मुद्रा क्या, किसी भी मुद्रा

(सिक्के) का प्रचलन न था। इस उल्लेख से और जन्मोत्सव जैसे उत्सवादि मनाने से उस काल में सभी वर्गों की आर्थिक समृद्धि का अवश्य पता चलता है। इसी प्रकार उस समय भिक्षावृत्ति की भयावनी समस्या भी न थी। समाज जातियों में विभाजित भी न थे।

प्रश्न 6. 'बाणभट्ट की आत्मकथा' उपन्यास में हर्ष के काल की सांस्कृतिक स्थिति पर एक सारगर्भित टिप्पणी करें ?

उत्तर : इस उपन्यास में जन्मोत्सव, होलिकोत्सव, मदनोत्सव आदि मनाने का भी वर्णन हुआ है। चारुस्मिता और विद्युत्अपांगा नामक नर्तकी और गणिका वर्ग की युवतियाँ नृत्य करती दिखाई गई हैं, जिससे संगीत और नृत्य कला में लोगों की विशिष्ट अभिरुचि का रेखांकन होता है। मनोरंजन के विभिन्न साधनों में सामन्त पाशों, द्यूत–क्रीड़ाओं, अन्त्याक्षरी, मानसी, प्रहेलिका, अक्षरच्युतक, वीणावादन और पद–व्याख्या आदि से विभिन्न प्रकार की व्याख्यायें किया करते थे। राजा हर्ष के दरबार में कवियों और कलाकारों को पूर्ण प्रश्रय दिया जाता था। बाण को राजकवि घोषित किया जाता है। बाण के माध्यम से नाटकों के मंचन की रुचि का भी पता दिया गया है। एक ओर राजपरिवार के लोग नारियों के क्रय–विक्रय में रुचि लेते थे, दूसरी ओर, जलदस्यु राजशासन की व्यवस्था को पूरी तरह से छिन्न–भिन्न करने पर तुले हुए थे। इसी प्रकार निपुणिका के प्रसंग से विधवा–विवाह, पुनर्विवाह जैसी सामाजिक समस्याओं को उभारा गया है। भट्टिनी के इस कथन से सामाजिक जातिवाद और भेद–भाव की नीति पर कटाक्ष हुआ है, "यहाँ इतना स्तरभेद है, कि मुझे आश्चर्य होता है कि यहाँ लोग कैसे जीते हैं। यही देखो, यदि तुम किसी यवन कन्या से विवाह करो, तो इस देश में एक भयंकर सामाजिक विद्रोह माना जायेगा...भारतवर्ष में जो ऊँचे हैं, वह बहुत ऊँचे हैं, जो नीचे हैं, उनकी निचाई का कोई आर–पार नहीं।"(पृष्ठ 269)।

प्रश्न 7. संक्षेप में उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' की रचना का उद्देश्य लिखें ?

उत्तर : प्रत्येक सफल और सशक्त साहित्यिक रचना की ही तरह से यह उपन्यास भी एक सोद्देश्य रचना बन पड़ी है। इसमें हर्षकालीन अतीत की कथा के माध्यम से वर्तमान काल की विविध समस्याओं को भी प्रतिबिम्बित किया गया है। इसी जमाबिन्दु के कारण यह उपन्यास पूरी तरह से प्रासंगिक और समयसंगत बन पड़ा है। इसके साथ ही भारत के गौरवमय अतीत के प्रति भारतीयों के कम होते जा रहे आकर्षण और मोह को जगाना भी इस उपन्यास का एक मुख्य लक्ष्य कहा जा सकता है। यह उपन्यास मध्यकालीन इतिहास पर आधारित है। इसके माध्यम से द्विवेदी जी ने बाण की चारित्रिक विशेषताओं को आलोकित करते हुए हर्षकालीन भारत के सांस्कृतिक और सामाजिक पक्ष को भी उभारा है। उपन्यास की सम्पूर्ण कथा का विवेचन करने के बाद लगता है कि हर्षकालीन समाज की स्थिति से अवगत करना तथा बाण का सुन्दर व्यक्तित्व खड़ा करना ही द्विवेदी जी का उद्देश्य रहा होगा। प्रस्तुत उपन्यास में द्विवेदी जी ने अपने को बाण की आत्मा में बैठा कर, कलाकार बाण और पंडित बाण के अन्तर्द्वन्द्व का, बाणभट्ट की मूल प्रेरणा के ोत का चित्राण करने का प्रयास किया है। यद्यपि इस उपन्यास में ऐतिहासिक तिथियों एवं घटनाओं की सत्यता का अभाव है और ऐतिहासिक पात्रा भी कम हैं, फिर भी उपन्यासकार ने तत्कालीन वातावरण के निर्माण द्वारा उपन्यास में ऐतिहासिकता लाने का प्रयास किया है।

1.3.6 सहायक पुस्तकों की सूची :

1. राजेन्द्र मोहन भटनागर, 'बाणभट्ट की आत्मकथा : एक अध्ययन' (आगरा, विनोद पुस्तक–मन्दिर, षष्ठ संस्करण सन् 1981)

2. डॉ॰ हरमोहन लाल सूद, 'हज़ारी प्रसाद द्विवेदी का सर्जनात्मक साहित्य' (दिल्ली–94, निर्मल पब्लिकेशन, ए–139, गली नं॰ 3, कबीर नगर, प्रथम संस्करण सन् 1998)

3. डॉ॰ मीरा मिश्रा, 'उपन्यासकार हज़ारी प्रसाद द्विवेदी : ऐतिहासिक सन्दर्भ और आधुनिक बोध'(वाराणसी, विजय प्रकाशन मन्दिर, बी॰ 21/76, कमच्छा, प्रथम संस्करण गंगा दशहरा सन् 1993 ई.)

4. डॉ॰ यश गुलाटी, 'प्रतिनिधि हिन्दी उपन्यास' (चण्डीगढ़, हरियाणा साहित्य अकादमी, प्रथम संस्करण सन् 1989)

5. डॉ॰ कृष्ण भावुक, 'हिन्दी साहित्य का प्रामाणिक इतिहास' (पटियाला, पेप्सु बुक डिपो, संस्करण वर्तमान वर्ष)

6. संपादक डॉ॰ शिवप्रसाद सिंह, आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी : 'शान्तिनिकेतन से शिवालिक तक'

7. आचार्य हज़ारीप्रसाद द्विवेदी, निबन्ध–संग्रह 'कल्पलता'

8. नरेन्द्र कोहली, 'हिन्दी उपन्यास : सृजन और सिद्धान्त' (दिल्ली, सौरभ प्रकाशन, प्रथम संस्करण सन् 1979)।

'बाणभट्ट की आत्मकथा' उपन्यास का उद्देश्य

पाठ की रूपरेखा :

1.4.0 उद्देश्य

1.4.1 भूमिका

1.4.2 'बाणभट्ट की आत्मकथा' का उद्देश्य

1.4.2.1 आर्थिक उद्देश्य से सम्बद्ध स्थितियाँ

1.4.2.2 धार्मिक उद्देश्य से सम्बद्ध स्थितियाँ

1.4.2.3 राजनीतिक उद्देश्य से सम्बद्ध स्थितियाँ

1.4.2.4 सामाजिक उद्देश्य से सम्बद्ध स्थितियाँ

1.4.2.5 सांस्कृतिक उद्देश्य से सम्बन्धित स्थितियाँ

1.4.2.6 नारी की महिमा और स्वातन्त्रय चेतना

1.4.2.7 प्रेम की अनूठी व्यंजना

1.4.3 उपन्यास से पाठ और सन्देश

1.4.4 स्वयं जांच अभ्यास

1.4.5 सारांश

1.4.6 शब्दावली

1.4.7 प्रश्नावली

1.4.8 सहायक पुस्तकें

1.4.0 उद्देश्य

इस उपन्यास का प्रमुख उद्देश्य संस्कृत के महाकवि बाणभट्ट के चरित्रा के माध्यम से नारी मात्रा की महिमा को स्थापित करते हुए उनके आश्रयदाता नरेश हर्षवर्धन के काल की आर्थिक, दार्शनिक, धार्मिक, नैतिक, राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों का भी उरेहन करना है। विद्वान् लेखक आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ने भारतवासियों को स्वदेश की अतीतकालीन सभ्यता और सांस्कृतिक गौरव की स्मृति दिलाने और अपने देश की वर्तमान समस्याओं को अतीत के दर्पण में प्रतिबिम्बित करने के लक्ष्य से इस महान्

ऐतिहासिक और सांस्कृतिक उपन्यास की रचना की है। इसके कथाशिल्प में जीवनी और आत्मकथा दोनों ही विध ाओं का ऐसा सुन्दर समन्वय हुआ है कि समीक्षक इसके कथाशिल्प के लिए **एक नई परिभाषा** की ही आवश्यकता अनुभव करते हैं। प्रस्तुत पाठ में इस उपन्यास से मिलने वाले प्रमुख सन्देशों का रेखांकन करने का भी प्रयास किया गया है। कुल मिला कर यह उपन्यास जीवन के उन उच्चतर जीवन–मूल्यों का समर्थक है, जोकि अतीत या वर्तमान किसी भी काल में प्रचलित हो सकते हैं।

1.4.1 भूमिका

प्रत्येक सफल और सशक्त उपन्यास की ही भाँति आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी का उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' भी एक सोद्देश्य रचना है। इसमें प्रमुख उद्देश्यों के अतिरिक्त उससे जुड़े और अलग कुछ अन्य गौण उद्देश्यों को भी चरितार्थ कर दिया गया है। इन सभी का विवेचन इस पाठ में किया जाएगा, ताकि इस उपन्यास की उपयोगिता और महत्ता पर प्रकाश डाला जा सके। लेखक से पूर्व ऐतिहासिक उपन्यास तो अवश्य लिखे जाते रहे हैं, किन्तु उनमें भारत की विश्वजनीन संस्कृति का ऐसा व्यापक और प्रामाणिक निरूपण कम ही देखने को मिलता है।

1.4.2 'बाणभट्ट की आत्मकथा' का उद्देश्य

इस पाठ में पहले विवेच्य उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' के रचना–विषयक प्रमुख उद्देश्य पर आलोक–प्रक्षेपण किया जाएगा। इस उद्देश्य नामक तत्त्व को हम आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक और सामाजिक–सांस्कृतिक उद्देश्यों के वर्गों में विभाजित कर सकते हैं। आगे क्रमशः इन्हीं का विवेचन सोदाहरण किया जा रहा है।

1.4.2.1 आर्थिक उद्देश्य से सम्बद्ध स्थितियाँ

विवेच्य उपन्यास में यद्यपि महर्षि मनु द्वारा विवेचित वर्ण–व्यवस्था का कठोरता से पालन किया जाता था, तथापि कहीं–कहीं यह लचीली भी थी। जब निम्न जाति के किसी व्यक्ति को राजकीय संरक्षण प्रदान कर दिया जाता था, तब वह जा कर अभिजात कुलीन समाज में ही मिल जाया करता था। उदाहरणतः **निपुणिका** नीची जाति से सम्बन्ध रखती थी और उसके पूर्वजों को सौभाग्यवश गुप्त राजाओं के यहाँ अच्छी नौकरी मिल गई थी। उसका अपना जन्म अछूत समझे जाने वाले परिवार में ही हुआ था। वह जा कर अभिजात कुल के लोगों के ही साथ रहने लगी थी। वह अपने को वैश्य जाति का ही मानती थी। उच्च कुल की हो कर वह ब्राह्मणों और क्षत्रियों के रीति–रिवाजों का निर्वाह करने लग जाती है। इस प्रकार उच्च और निम्न जातियों में आर्थिक आधार पर अन्तर रहता आया है।

वैसे कुल मिला कर समाज में **जातिवादी भेद–भाव** भी खूब थे। शासक वर्ग के लोग अधिकतर अपने धन–वैभव के नशे में मस्त रहा करते थे और अपने से हीन जाति वालों को घृणा की दृष्टि से ही देखा करते थे। चूँकि शासन की व्यवस्था शिथिल थी, इसीलिए आए दिन दस्यु आ–आ कर न केवल जनता को लूटा करते थे, अपितु कभी–कभी उनकी कुमारी कन्याओं का अपहरण करके भी ले जाया करते थे या उन्हें राजकुल के उच्चपदाधिकारियों के हाथ बेच डाला करते थे। फिर वही कन्यायें वहाँ दासियों और गणिकाओं का–सा जीवन बिताने के लिए ही अभिशप्त हो जाया करती थीं। कहानी में नायक बाणभट्ट से प्रेम करने वाली भट्टिनी कुमार कृष्णवर्धन के किसी सेवक के महल में बन्दिनी का ही जीवन बिता रही थी कि बाण जा कर उसका उद्धार करता है और उसके बाद वह नारी मात्रा के स्वातन्त्रय और नव चेतना का प्रबल पक्षधर हो कर मानवतावादी जीवन–दर्शन का ही प्रचार करने लग जाता है। स्वयं भी वह पहले आवरगी का जीवन बिता रहा था, अब अपने व्यक्तित्व का सुधार करने के बाद वह सम्राट् हर्षवर्धन का सभापण्डित या राजकवि हो जाता है। कुमार कृष्णवर्द्धन के सुपुत्रा

के जन्म के उपलक्ष्य में जो उत्सव मनाया जाता है, उसका वर्णन करते हुए लेखक लिखता है, "राजमहल में रहने वाले बौने, कुबड़े, नपुंसक और मूर्ख लोग उद्धत नृत्य से विह्वल हो कर भागे जा रहे थे। एक वृद्ध कंचुकी की दशा बड़ी दयनीय हो गई थी। उसके गले में एक नृत्यपरायण रमणी का उत्तरीय वस्त्रा अटक गया था और खींच–तान में पड़ा हुआ बेचारा बूढ़ा उपहास का पात्रा बन गया था।"

श्री राजेन्द्र मोहन भटनागर हर्षकालीन आर्थिक दशा को कुल मिला कर सन्तोषजनक मानते हुए भी यह वक्तव्य देते हैं, "नगर में जो दृश्य देखने में आए हैं, उनसे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि सामाजिक काफ़ी खुशहाल थे। वे सब राग–रंग में मस्त थे। जीवनयापन की चिन्ता किसी को न थी। सुचरिता के पति विरतिवज्र पर उसके पिता का कर्ज़ एक सह **दीनार** धनदत्त श्रेष्ठी ने बतलाया। वह उसे अदा न कर सके या कुछ अन्यथा भी यहाँ समझा जा सकता है कि वह देना नहीं चाहते थे। बात कुछ भी हो, पर है सन्दिग्ध ही। हम यदि सुचरिता की पैसे न देने की स्थिति में कल्पना करें, तो यह बात भी स्पष्ट हो जाती है कि उस समय सामान्य जनता बहुत खुशहाल नहीं थी। यद्यपि इसके कहने से मेरा यह अभिप्राय कदापि नहीं है कि जनता ग़रीब थी। वह मज़े में थी, सुख–चैन से दिन गुज़ारती थी। वर्णानुसार अपनी आवश्यकताओं की प्रायः सभी वस्तुओं को सहज ही ख़रीद पाती थी। यों उस समय के नगर–निवासियों की दशा अच्छी थी–यही कहा जायेगा।"

–(ग्रन्थ पूर्वोक्त)

साधारणतः उस काल में आम जनता को रोटी, पानी और भोजन की कोई समस्या न थी। चूँकि उस काल में मुद्राओं या सिक्कों का बिलकुल प्रचलन न था, इसीलिए पूर्वोक्त उद्धरण में **'दीनार'** (जिसे फ़ारसी भाषा में अश्रफ़ी कहा जाता है) शब्द का उल्लेख **एक कालगत दोष या त्रुटि** ही माना जाएगा।

इतना होने पर भी राजा और प्रजा दोनों ही दस्युओं के आक्रमणों से सन्त्रास्त रहा करते थे। देवपुत्रा तुवरमिलिन्द की कन्या चन्द्रदीधिति (नया नाम भट्टिनी) को मार्ग में से ही दस्यु नज बलात् अपहरण करके ले गये थे। उसका पिता साहसी था और उसका आतंक दस्यु जनों तक पर माना जाता था। फिर भी वह अपनी कन्या को अपहृत होने से न बचा पाया था। शासन के पदाधिकारी उन दस्युओं को रोकने में अपने को पूरी तरह से असमर्थ पा रहे थे। ऐसी स्थिति में महामाया ने चेतना की दृष्टि से सभी सोते हुए सैनिकों को जगाया। उपन्यास में अपभ्रंश भाषा के गीत और उसके अभिभाषण से इसी तथ्य की पुष्टि हो जाती है।

1.4.2.2 धार्मिक उद्देश्य से सम्बद्ध स्थितियाँ

यदि धार्मिक दृष्टि से बाण और राजा हर्ष के काल के भारत पर विचार करें, तो हम यह पायेंगे कि उस समय यहाँ अवधूत साधुओं के सम्प्रदाय के अतिरिक्त बौद्ध और वैष्णव सम्प्रदाय के अनुयायियों का भी बोलबाला था। प्रासंगिक या गौण कथाओं में विरतिवज्र और सुचरिता के प्रसंग वैष्णव और बौद्ध धर्मों के परस्पर संघर्ष को वाणी प्रदान करने के लिए आए हैं। इसी प्रकार अघोर भैरव, महामाया, चण्डमण्डना और अघोर घण्ट जैसे पात्राों की उद्भावना वाममार्गी साधना के प्रचलन के प्रमाणस्वरूप नियोजित की गई मानी जा सकती है। लेखक का स्वयं इस साधना और तन्त्रामन्त्रा के साथ और इसके साथ ही समूचे तौर पर ज्योतषशास्त्रा में गहरी आस्था न भी मानें, तो इनके सम्बन्ध में उनके द्वारा पर्याप्त ज्ञान रखने और उसी का प्रदर्शन करने में दो मत नहीं हो सकते हैं। उपन्यास में लेखक महोदय वसुमती का प्रसंग बौद्ध पाखण्डियों की पोल खोलने के लिए ही लाते हैं। इसके विपरीत वे बौद्ध मत की गम्भीरता और गहनता के समर्थन में सुगतभद्र को एक पारंगत और मर्मज्ञ आचार्य के रूप में प्रस्तुत करते हैं और इसके साथ ही शिक्षा–संस्थाओं में धार्मिक अध्ययन करने–कराने पर भी पर्याप्त प्रकाश डालते हैं। समाज में लोग अपनी इच्छानुसार कोई भी धर्म अपना सकते थे, शासन की ओर से

उन पर किसी प्रकार का कोई भी नियन्त्राण न होने से धार्मिक धरातल पर चारों ओर उस समय अस्तव्यस्तता का ही वातावरण व्याप्त था। विभिन्न सम्प्रदायों के समर्थकों में परस्पर शास्त्रार्थ होते रहते थे। सम्राट् हर्षवर्धन स्वयं बौद्ध था, परन्तु जब बौद्ध भिक्षु वसुभूति उडुपति से शास्त्रार्थ में हार जाता है, तब यही राजा नाटिका में बुद्ध के स्थान पर शिव–पार्वती की ही नियोजना करते हैं। ऐसी स्थिति में सुगतभद्र जैसे भी बौद्ध चिन्तक थे, जोकि इस प्रकार के राजनीतिक और धार्मिक झमेलों से अपने को अलग ही रखा करते थे। उनके विपरीत राजा हर्षवर्द्धन धर्म की राजनीति के बुरी तरह से शिकार ही कहे जायेंगे।

बौद्ध सम्प्रदाय के मत को मानने वाले लोग पीले रंग के चीवर धारण किया करते थे और बौद्ध विहारों में शिक्षा ग्रहण करने और देने की पूरी व्यवस्था थी। आचार्यपाद सुगत भद्र स्वयं आचार्य थे और चिन्तन–मनन पर विशेष बल दिया करते थे। वे कुमार कृष्णवर्द्धन के गुरु थे। इसी प्रकार बौद्ध धर्म के गुरु वसुभूति का बहुत प्रभाव राजा हर्षवर्द्धन पर था। महामाया भी समय–समय पर राजनीतिक गतिविधियों में भाग लेती रहती थी। वह जनसाधारण को सम्राट् के द्वारा किए जा रहे अन्यायों का परिचय दे कर जब–तब अपने ओजस्वी और विद्रोही भाषणों से भड़काती रहती थी। इससे यह ज्ञान होता है कि जनता पर राजसत्ता का कोई विशेष नियन्त्राण या आतंक न था। समय–समय पर बौद्ध मत या धर्म के प्रचार के लिए जिन सभाओं और संसदों का आयोजन किया जाता था, उनमें प्रजा के अतिरिक्त समाज के विशिष्ट महापुरुषों के अतिरिक्त स्वयं सम्राट् भी सम्मिलित हुआ करते थे। आचार्यपाद सुगत भद्र बौद्ध मत के विषय में उठने वाली सभी शंकाओं का स्वयं समाधान किया करते थे।

इसी प्रकार अवधूत सम्प्रदाय का निम्न जाति और उच्च जाति के लोगों में बहुत प्रचार था। इस सम्प्रदाय के सन्त सदैव भ्रमण किया करते थे और जनसाधारण को अपने द्वारा किए जाने वाले चमत्कारों से अभिभूत करते रहते थे। उनसे प्रभावित हो कर निम्न जाति के लोग उनके सम्प्रदाय में जा कर मिल जाते थे। ये लोग अधिकतर भगवान् शिव की ही उपासना करते थे और सदैव अपने हाथों में त्रिाशूल धारण किए रहते थे। ये मदिरापान भी किया करते थे। महामाया जैसी नारियाँ इसी सम्प्रदाय से जुड़ी हुई थीं। इससे पता चलता है कि इस सम्प्रदाय में नारियों का प्रवेश कदापि वर्जित न था। इसमें उनकी सक्रिय भागीदारी हुआ करती थी।

सभी धार्मिक सम्प्रदायों में आडम्बरों का भी बोलबाला था, जिसके कारण साधुओं को ढोंगी भी समझा जाने लगा था। वसुभूति वास्तव में ऐसाही एक ढोंगी बौद्ध भिक्षु था। उपन्यास में एक स्थल पर स्वयं बाणभट्ट को अघोरघण्ट नामक साधु बलि चढ़ाने लगा था। इससे पता चलता है कि बलि–प्रथा का भी प्रचलन आम था। ज्योतिष विद्या, सम्मोहन विधि आदि में लोगों की गहरी आस्था देखी जाती थी। फलित ज्योतिष और होरा शास्त्रा में भी जनसाधारण का गहरा विश्वास था। इससे लोगों की अशिक्षा, अल्पशिक्षा, रूढ़िवादिता आदि का ही प्रमाण मिलता है। लोग भजन–कीर्तन करने में विशेष रुचि रखते थे और टोलियाँ बना कर नाचते–गाते हुए अपने–अपने इष्ट देवी–देवताओं का नाम–स्मरण आदि किया करते थे। ग्राम–देवता और तत्कालीन शासक या राजा की पूजा करने का भी विधान था।

उस समय धर्म और राजनीति का गठबन्धन होने के कारण धार्मिक महापुरुष राजन्य वर्ग के लोगों पर अपना प्रभुत्व स्थापित किए हुए थे।

1.4.2.3 राजनीतिक उद्देश्य से सम्बद्ध स्थितियाँ

इस उपन्यास में निरूपित सम्राट् हर्षवर्धन के राज्य की व्यवस्था कुल मिला कर शिथिल ही बताई गई है। उदाहरणस्वरूप चरणाद्रि दुर्ग के पास भट्टिनी की नौका पर ईश्वरसेन के सैनिक आक्रमण कर देते हैं और प्रबल संघर्ष होता है। निपुणिका, भट्टिनी और बाण तीनों गंगा में कूद जाते हैं। महामाया एक स्थल पर कहती

है कि "राजनैतिक शक्ति धार्मिकों द्वारा अपव्यय की जाती थी। विरततिवज्र तथा आयुष्मती सुचरिता को बन्दीगृह में डालना इसका एक ज्वलन्त प्रमाण माना जा सकता है।

इसी प्रकार सामन्तों और राजाओं के अन्तःपुर अपहृत करके लाई और ख़रीदी गई कन्याओं से भरे पड़े थे। ये लोग नारी–सम्बन्धी भोग–विलासों में अपनी सारी शक्ति का अपव्यय कर रहे थे। राजसैनिक भी जलदस्युओं को देश को लूटने से बचाने के लिए कुछ भी करने में पूर्णतया असमर्थ थे। इसी प्रकार केवल वेतनभोगी सेना म्लेच्छों के आक्रमणों को रोक नहीं पा रही थी। प्रजा राजसत्ता के विरुद्ध विद्रोह करने के लिए सदैव तत्पर नज़र आया करती थी। कुल मिला कर प्रदेश में कूटनीतियों और षड्यन्त्राों का एक व्यापक जाल बिछा हुआ था। राजा राजनीतिक उथल–पुथल के उस काल में विक्षुब्ध और असन्तुष्ट जनता को केवल चारुस्मिता और विद्युतपांगा जैसी नारियों के नृत्य और संगीत से शान्त करने की चेष्टा कर रहा था। वह म्लेच्छों के भय के कारण ही भट्टिनी का भी स्वागत–सत्कार करने के लिए अपने को पूरी तरह से विवश पाता है। इसका एक अन्य कारण उसके पिता तुवरमिलिन्द से उसे सहयोग मिलने की कुछ आशा थी। कुल मिला कर हर्षवर्द्धन के राज्य में चारों ओर राजनीतिक अव्यवस्था का ही वातावरण छाया हुआ था। उसी के कुशासन के कारण बाद में अनेक वर्षों तक प्रदेश में राजनीतिक प्रशासन में अराजकता ही व्याप्त रही थी।

1.4.2.4 सामाजिक उद्देश्य से सम्बद्ध स्थितियाँ

हर्षवर्द्धन के काल में **जातिवादी व्यवस्था** पूरे यौवन पर थी और जातिवादी भेदभावों का ही ज़ोर था। लोग अपने कर्म से नहीं, केवल जन्म मात्रा से ही ब्राह्मण, क्षत्रिाय, वैश्य और शूद्र जैसे परम्परागत वर्गों में विभाजित हुआ करते थे। उपन्यास में लेखक ने निम्न से ले कर उच्चवर्गीय समाजों का निरूपण किया है। इसके अपवाद–रूप में केवल निपुणिका ही अपनी अछूत जाति से उठ कर उच्च वैश्य वर्ग में पहुँच सकी थी, जिसका एक मात्रा कारण उसके किसी पूर्वज को सम्राट् के कुल में अच्छी नौकरी का मिल जाना रहा था। उससे पहले **विधवा–विवाहों का पूर्ण निषेध** ही था, केवल अब जा कर विधवाओं के पुनर्विवाह होने आरम्भ हो गए थे। **निपुणिका** अपने पहले विवाह के केवल एक वर्ष के भीतर ही विधवा हो गई थी। उसका वह विवाह केवल 16 वर्ष की अवस्था में सम्पन्न हुआ था। वह विवाह किसी एक भड़भुँजे से हुआ था, जबकि दूसरा विवाह एक ऐसे सेठ से हुआ था, जोकि कान्दविक वैश्य जाति का था। वैधव्य के दिन कठिनाई से बिताने के बाद उसके अच्छे दिन फिर से आ जाते हैं। इसी प्रकार सुचरिता का विवाह बालपन में ही हो गया था। उसका पति मोक्ष पाने के चक्कर में घर से निकल कर संन्यासी का जीवन अपना चुका था। समाज में शासन–व्यवस्था के अच्छी न होने के कारण भट्टिनी और महामाया जैसी नारियों का अपहरण कर लिया गया था। राजकुल में भट्टिनी का बलात् विवाह छोटे–से राजकुल के ग्रहवर्मा से कर दिया गया था। यह और बात है कि उससे पहले उसकी सगाई (वाग्दान) किसी और (अधोर भैरव) के संग हो चुकी थी। राजकुलों में अपहृत करके या भगा कर लाई गई नारियों को भर्ती कर–कर के उन्हें करंकवाहिनियों और चामरधारिणी जैसे निम्नस्तरीय कार्य सौंप दिए जाते थे। कुल मिला कर नारियों की स्थिति उस समाज में दीनहीन और दयनीय ही कही जा सकती है। उनके मान–सम्मान की रक्षा करने का ध्यान किसी भी व्यक्ति को न था।

शिक्षा की स्थिति उस काल में अवश्य सन्तोषजनक थी। समाज में ब्राह्मणों का विशेष आदर–सत्कार किया जाता था और वे शिक्षा–संस्थानों में शिक्षा देने का सम्मानजनक कार्य सम्पन्न किया करते थे। यहाँ तक कि उनके घरों में शुक–सारिकायें तक छात्राों को उनके द्वारा अशुद्ध उच्चारण सुन कर टोकती रहती थीं। ब्राह्मण जाति के लोग न केवल यजमानों के घरों में जा कर पुरोहित का धार्मिक कार्य किया करते थे, अपितु शास्त्राादि का अध्ययन और अध्यापन भी करते थे। उनके द्वारा आए दिन शास्त्रार्थ भी किए जाते थे। उनमें वे धार्मिक नियमों आदि की शास्त्रीय

व्याख्यायें, मीमांसायें और विवेचनायें करते हुए अपनी व्यवस्था (अन्तिम निर्णय) दिया करते थे। जो भी पण्डित शास्त्रार्थ में विजयी हुआ करता था, सम्राट् उसी का धर्म स्वीकार कर लिया करता था। चूँकि बौद्ध वसुभूति एक बार उडुपति से शास्त्रार्थ में पराजित हो गया था, इसीलिए सम्राट् ने बौद्ध धर्म त्याग कर वैष्णव धर्म अंगीकार कर लिया था। पण्डित जन फलित ज्योतिष, होरा शास्त्रा और प्रश्नशास्त्रा जैसी विद्याओं के अपने ज्ञान की धाक लोगों पर जमाए हुए थे। वे जनसाधारण को राशिफल और कर्मफल बतलाने का काम सम्पन्न किया करते थे, जिनको 'यावनी गाथा' के आधार पर बनाया गया था और जिस काम के लिए उन्हें उनसे एक अच्छी राशि मिला करती थी। कुल मिला कर समाज में विभिन्न जातियों के लोग रहते थे और उनमें जब–तब छोटी–बड़ी बातों पर कलहें भी होती रहती थीं।

1.4.2.5 सांस्कृतिक उद्देश्य से सम्बन्धित स्थितियाँ

संस्कृति का सम्बन्ध किसी देश की कलाओं, काव्य–कला, चित्राकला, मूर्त्तिकला, संगीतकला और स्थापत्य या भवन–निर्माण–कला के अतिरिक्त नाट्यकला आदि विभिन्न कलाओं से भी हुआ करता है। इस दृष्टि से हर्षवर्द्धन का काल बहुत समृद्ध था। आचार्य द्विवेदी ने इसे प्रदर्शित करने के लिए हर्षवर्द्धन द्वारा रचित **'रत्नावली'** जैसी नाटिका के बाण द्वारा किए गए सुन्दर मंचन आदि का विस्तार से वर्णन किया है और प्रसंगवश सुप्रसिद्ध नर्तकियों की नृत्यकला की ऐसी–ऐसी बातें लिखी हैं, जोकि महाकवि कालिदास–कृत नाटक 'मालविकाग्निमित्रां' तक में मिल जाती हैं। नाटक के मंचन के समय समाज के धनी–मानी व्यक्ति और महापुरुष ही नहीं, स्वयं राजा तक सम्मिलित हो कर जनसाधारण का उत्साहवर्धन किया करते थे। राजा हर्षवर्धन के बारे में समीक्षकों द्वारा यह भी कहा गया है कि वे अपने द्वारा किए जाने वाले अत्याचारों और अन्यायों से जनता का ध्यान बँटाने के लिए ही नाटकों आदि का मंचन किया करते थे। सांस्कृतिक धरातल पर ही कलाओं के बाद विभिन्न प्रकार के ज्ञान–विज्ञानों यथा दर्शनशास्त्रा, नीतिशास्त्रा, धर्मशास्त्रा इत्यादि से सम्बद्ध प्रगति और विकास के विभिन्न आयामों का नाम आया करता है। इस दृष्टि से अवश्य सम्राट् हर्षवर्द्धन के काल को एक 'स्वर्णिम काल' कहा जा सकता है।

कुमार कृष्णवर्द्धन के सुपुत्रा का **जन्मोत्सव** मनाने की घटना से ऐसे उत्सवों के प्रचलन के प्रमाण मिलते हैं। इसी प्रकार **होलिकोत्सव, मदनोत्सव** या **वसन्तोत्सव** आदि के मनाने के दृश्यों से भी इस उपन्यास में रोचकता और सरसता में अभिवृद्धि होने के अवसर मिलते हैं। उपन्यास **में मदनोत्सव** के अवसर पर सारा समाज ही आ कर उपस्थित हो गया था। चारुस्मिता और कुछ अन्य गणिकायें मयूर नृत्य का कला–कौशलपूर्वक प्रदर्शन कर रही थीं। इसी प्रकार मनोरंजन के अन्य साधनों में **पुस्तकवाचन, मानसी काव्य–क्रिया, दुर्वाचक–योग, अक्षरमष्टिक, पद्मविन्दुमती** जैसी कलापूर्ण क्रीड़ाओं और विद्याओं का भी प्रयोग किया जाता था। जब सरस्वती मन्दिर में जनसाधारण के सामने चारुस्मिता ने अपना मयूर नृत्य, जो उसने उससे पहले केवल राजपुरुषों की उपस्थिति में ही प्रदर्शित किया था, पहली बार प्रस्तुत किया, तो उस समय जनता का नृत्यकला के विषय में अनुराग छलका पड़ता था। उस समय प्रेक्षागार शिल्पजाल का अछूता नमूना बना हुआ था। शिल्पियों ने प्रेक्षकशाला को एक मोहक रूप दे रखा था। इसी प्रकार लेखक **ने होलिकोत्सव** का भी मनमोहक वर्णन प्रस्तुत किया है। कुल मिला कर यह कहा जा सकता है कि उस काल में राजधानी स्थाण्वीश्वर कलाओं और मनोरंजन के अन्यान्य साधनों का एक अद्भुत केन्द्र बनी हुई थी। नारियाँ भी इन उत्सवों में न केवल मदिरापान करती थीं, अपितु अश्लील गीत तक गाने में कोई अनैतिकता या बुराई नहीं समझा करती थीं। इसी प्रकार गणिकायें प्रसन्नता के विभिन्न अवसरों पर अपने नृत्य–गान आदि के द्वारा जनसाधारण का भरपूर मनोरंजन किया करती थीं।

1.4.2.6 नारी की महिमा और स्वातन्त्रय चेतना

लेखक ने इस उपन्यास में न केवल नारी की दुर्दशा का ही मार्मिक वर्णन किया है, अपितु दूसरी ओर, उसके प्रति समाज के आदर–सत्कार को बढ़ाने के लिए विशिष्ट स्थितियों और परिस्थितियों की भी योजना की है। एक प्रकार से कथानायक बाणभट्ट के माध्यम से नारी की स्वातन्त्रय चेतना और महिमा का विशेष रूप से बखान करना ही इस उपन्यास का एक महान् और प्रमुख कार्य माना जा सकता है। **निपुणिका** पतित समाज में रहती रही है। उसका जीवन कीचड़ में उगे हुए किसी कमल के समान ही कहा गया है। वह बाणभट्ट से अथाह प्रेम करती है। यह और बात है कि वह स्वयं को बाण के प्रेम का पात्रा या योग्य नहीं मानती है। वह उसके मार्ग में कोई बाधा केवल इसीलिए नहीं उत्पन्न करना चाहती है, क्योंकि वह उसे एक महान् लेखक और 'दुर्लभ रत्न' मानती है। एक ज्योतिषी ने यह भविष्यवाणी की थी कि जिस दिन वह उसे प्राप्त हो जायेगी, तब वह उस पर एक काव्य लिख देगा और ऐसा करने से उसकी अपनी आयु कम रह जाएगी। बस, इसी भय से और उसका परम हित देखते हुए वह उससे कभी 'भेंट' (यहाँ 'सम्भोग' की ओर संकेत है) नहीं करती है।

एक साधारण–सी नारी होने पर भी निपुणिका में वैचारिक प्रौढ़ता और त्यागशीलता मिलती है। वह एक बार अपने प्रेमी बाण से दो टूक शब्दों में यह कहती है, "मेरी शपथ करके तुम सत्य–सत्य कहो कि मेरा कौन–सा ऐसा पाप–चरित्रा है, जिसके कारण मैं निदारुण दुःख की भट्टी में आजीवन जलती रही ? क्या स्त्राी होना ही सारे बन्धनों की जड़ नहीं है ?" वह अपने नरक जैसे जीवन को भली भाँति जानती हुई अपनी निराशा इन अनुभवपूर्ण शब्दों में व्यक्त करती है, "आर्यावर्त्त के समाज के मूल में घुन लग गया है। इसे महानाश से कोई नहीं बचा सकता। क्या बृहत्तर सत्य के नाम पर मिथ्या का ताण्डव नहीं चल रहा ? कैसे आशा करते हो कि आर्य देवपुत्रा का प्रबल भुजदण्ड इस समाज को नाश की गति से बचा लेगा ?" वास्तव में जिन परिस्थितियों में वह जी रही है, उनसे मुक्ति की कोई आशा नहीं। वह अपने जीवन और प्रेम–सम्बन्धों के प्रति एक विशेष दृष्टिकोण रखती है। वह जानती है कि भट्टिनी भी उसी की तरह से बाण से अगाध प्रेम करती है। इतना होने पर भी वह उससे कोई ईर्ष्या कदापि नहीं करती है। उसका व्यवसाय अवश्य निम्न स्तर का ही है, फिर भी वह एक उदार और उदात्त चरित्रा वाली नारी है। कुछ समीक्षक उसे इसीलिए इस उपन्यास की नायिका मानते हैं, क्योंकि उसी से बाण की सर्वप्रथम भेंट होती है और कथान्त में उसी के देहावसान से इस उपन्यास का भी दुःखान्त घटित होता है।

वह कहती है कि जो वास्तव है, उसे दबाना है और जो अवास्तव है, उसका आचरण करना तो अभिनय है। वह आजीवन यही तथ्य अनुभव करती रहती है। एक विद्वान् का मत है कि "निपुणिका के व्यक्तित्व की तीक्ष्णता ने इसे भट्टिनी और बाण दोनों से भी ऊपर उठा दिया है। आत्मोन्नति में भी वह बाण और भट्टिनी दोनों को बहुत पीछे छोड़ देती है। वस्तुतः निपुणिका इस आत्मकथा की सर्वाधिक माननीय, सजीव और मार्मिक पात्रा कही जा सकती है। बाण इसके जीवन की मर्म–वेदना को भली भाँति समझता है। यही कारण है कि वह उसके प्रति सहानुभूति और सहयोग की भावना बनाए रखता है। निपुणिका नाटक–मण्डली में भाग लेती है। वह एक नाटक में **वासवदत्ता** की भूमिका करते समय राजा बने हुए बाण के हाथ में रत्नावली का हाथ थमाते हुए इतनी अधिक भावुक हो जाती है कि विचलित और पीड़ित हो कर वहीं ढेर हो जाती है और अपना दम तोड़ देती है। उसके प्राण–पखेरू उड़ जाने पर **सुचरिता** बाण से कहती है, "निपुणिका धन्य हो गयी, आर्य ! उसकी चिन्ता छोड़ो, परन्तु उसका बलिदान तभी सार्थक होगा, जब तुम उसके दान का सम्मान करोगे....कौन जानता था कि निपुणिका अपने जीवन के स्त्राीत्व की मर्यादा स्थापित कर जाएगी।"

वैसे यदि उसके चरित्रा को छोड़ दें, तो इस उपन्यास में नारी को अधिकांशतः **एक भोग्या** के रूप में ही चित्रित

किया गया है। मानो उसका जन्म अपनी सार्थकता के लिए नहीं हुआ (पृष्ठ 109), पुरुष की भोगेच्छा की तृप्ति के लिए ही होता है। वह रानी हो या दासी, उसकी अपनी इच्छा–अनिच्छा का कोई मूल्य नहीं है। राजाओं और सामन्तों के अन्तःपुर एक ओर निर्यातित वधुओं के क्रन्दन से भरे हैं (पृ. 255); दूसरी ओर, चामरधारिणियों और करंकवाहिनियों के रूप में विद्यमान भगाई हुई निरीह वधुओं और बेटियों से" (पृ. 193)।

लेखक विधि–निषेधों, कठोर नियमों, सामाजिक वर्जनाओं और पाप के भय से या उसके बल पर नारी के संसर्ग को हेय और त्याज्य ठहराने वाले लोगों की हीन कोशिशों का भरपूर विरोध करता है। वह कहता है, "नारीहीन तपस्या संसार की भद्दी भूल है। वह धर्म–कर्म का विशाल आयोजन, सैन्य संगठन और राज्य–व्यवस्थापन सब फेन–बुद्बुद की भाँति लुप्त हो जायेंगे, क्योंकि नारी का इसमें सहयोग नहीं है। यह सारा ठाठ–बाठ, संसार में केवल अशान्ति पैदा करेगा।"–(उपन्यास, पृष्ठ 147)। इस प्रकार इस उपन्यास में यत्रा–तत्रा नारी की महिमा और स्वातन्त्रय चेतना के निदर्शन भरे पड़े हैं, जोकि लेखक आचार्य द्विवेदी के ही निजी विचारों का एक सार्थक प्रक्षेपण (Projection) माने जा सकते हैं।

1.4.2.7 प्रेम की अनूठी व्यंजना

आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ने प्रेम की पावनी व्याख्या करने के प्रयोजन से ही निपुणिका जैसे निस्स्वार्थ नारी–पात्रा की अवतारणा की है। वह जाति से एक पतित स्त्राी होते हुए भी महान् आत्मबलिदान कर जाती है। यह कोई कम बड़ी बात नहीं है। वह अपने महान् त्याग से नारी मात्रा की मर्यादा स्थापित कर जाती है। अपनी मुक्ति का जो मार्ग उसने अपनाया, उसने अन्य नारियों की पूर्ण मुक्ति के लिए एक उच्च प्रकाशस्तम्भ का–सा कार्य अवश्य किया है। **चारुस्मिता** उसके बलिदान को रेखांकित करती हुई ये शब्द कहती है, "निपुणिका स्त्राी जाति का शृंगार थी, सतीत्व की मर्यादा थी और हमारी जैसी उन्मार्गगामिनी नारियों की मार्गदर्शिका थी।" वास्तव में निपुणिका का उद्धार उसके आत्मबल के जागरण द्वारा ही सम्पन्न हुआ था और उसने नारी–मात्रा को मानो किसी **पंक** से **पंकज** बना दिया था।

उसका आत्मदान दो परस्परविरोधी दिशाओं में जाने वाले प्रेम को मानो एक सूत्रा में बाँध कर रख देता है। इससे उसका अपना चरित्रा उदात्त बन जाता है। सेवा, त्यागशीलता, संयमशीलता और दृढ़ चारित्रिाकता आदि गुणों के बल पर वह उपन्यास में भट्टिनी और महामाया दोनों से ही एकदम अलग जा खड़ी होती है, मानो वह हिमगिरि के ऊँचे शिखर पर जा खड़ी हुई हो। बाण नारी की देह को किसी मन्दिर की–सी पवित्रा घोषित करता है और आचार्य द्विवेदी की लेखनी भी कहती है, कि "धर्म–कर्म, भक्ति–ज्ञान, शान्ति–सौमनस्य कुछ भी नारी का संस्पर्श पाए बिना मनोहर नहीं होते। नारी–देह वह स्पर्श–मणि है, जो प्रत्येक ईंट–पत्थर को सोना बना देती है।" (वही, पृ. 177) द्विवेदी जी का यह दृढ़ विचार है कि नारी मात्रा ही निषेधरूपा हुआ करती है। वही पुरुष की अनियन्त्रिात और उच्छृंखल महत्त्वाकांक्षाओं के नियन्त्राण में सफल हो सकती है। उसकी इसी मंगलकारिणी भूमिका से एक निरंकुश पुरुष के स्वेच्छाचारी कामों पर लगाम लगा करती है।

डॉ. यश गुलाटी इसी सन्दर्भ में यह सार्थक टिप्पणी करते हैं कि "नारी–तत्त्व की व्याख्या के द्वारा वे (आचार्य द्विवेदी) स्पष्ट कर देते हैं कि उनके मन में नारी की विशिष्ट मूर्त्ति है और उनके उद्गारों के मूल में वे गुण हैं, जिनका अस्तित्व वे नारी में पाते हैं। उनकी दृष्टि में नारी–तत्त्व आत्मसुख का नहीं, आत्मदान का, निजी तृप्ति का नहीं, दूसरों के लिए (अपने को ही) मिटा देने की भावना का ही नाम है। स्वार्थ–साधन की अपेक्षा दूसरे के सुख और मंगल के लिए **आत्मोत्सर्ग** ही वह वस्तु है, जो नारी को पुरुष से अलग करती है, अतएव इस गुण के विकास में ही सृष्टि का कल्याण निहित है।" –(ग्रन्थ 'प्रतिनिधि हिन्दी उपन्यास, पृष्ठ 63–64)

1.4.3 उपन्यास से पाठ और सन्देश

प्रत्येक सफल और सशक्त साहित्यिक रचना की ही तरह से यह उपन्यास भी एक सोद्देश्य रचना बन पड़ी है। इसमें हर्षकालीन अतीत की कथा के माध्यम से वर्तमान काल की विविध समस्याओं को भी प्रतिबिम्बित किया गया है। पिछली शताब्दी में **अतीत के वातायन** से अनेक पुराने लेखकों यथा **तुलसी, कबीर** आदि को दिखाने से सम्बन्धित ग्रन्थ लिखे गए थे। इसी जमा–बिन्दु (Plus-point)के कारण यह उपन्यास भी पूरी तरह से **प्रासंगिक और समय–संगत** बन पड़ा है। इसके साथ ही भारत के गौरवमय अतीत के प्रति भारतीयों के कम होते जा रहे आकर्षण और मोह को जगाना भी इस उपन्यास का एक मुख्य लक्ष्य कहा जा सकता है।

डॉ. मीरा मिश्रा लिखती हैं, "यह उपन्यास मध्यकालीन इतिहास पर आधारित है। इसके माध्यम से द्विवेदी जी ने बाण की चारित्रिक विशेषताओं को आलोकित करते हुए हर्षकालीन भारत के सांस्कृतिक, सामाजिक पक्ष को भी उभारा है। उपन्यास की सम्पूर्ण कथा का विवेचन करने के बाद लगता है कि हर्षकालीन समाज की स्थिति से अवगत करना तथा बाण का सुन्दर व्यक्तित्व खड़ा करना ही द्विवेदी जी का उद्देश्य रहा होगा। प्रस्तुत उपन्यास में द्विवेदी जी ने अपने को बाण की आत्मा में बैठा कर, **कलाकार बाण** और **पंडित बाण** के अन्तर्द्वन्द्व का, बाणभट्ट की मूल प्रेरणा के ोत का चित्राण करने का प्रयास किया है। यद्यपि इस उपन्यास में ऐतिहासिक तिथियों एवं घटनाओं की सत्यता का अभाव है और ऐतिहासिक पात्रा भी कम हैं, फिर भी उपन्यासकार ने **तत्कालीन वातावरण के निर्माण** द्वारा उपन्यास में ऐतिहासिकता लाने का प्रयास किया है।" –(पूर्वोक्त ग्रन्थ, पृष्ठ 1271)

पाठ या सन्देश :

इन उद्देश्यों के अतिरिक्त इस उपन्यास को पढ़ने से पाठकों को जो स्पष्ट **पाठ या सन्देश** प्राप्त होते हैं, उन्हें संक्षेप में इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है :–

1. राजतन्त्रा में भी रह कर जनतंत्रा का किस प्रकार से पोषण करना चाहिए, इस बारे में यह उपन्यास हमें कोई स्पष्ट मार्ग–दर्शन तो नहीं करता है, परन्तु हम इसके सम्बन्ध में स्वयं ही सोचने के लिए बाध्य अवश्य होते हैं। इसके साथ ही हमें यह भी पता लगता है कि प्रजा को अपने राजा पर पूरी तरह से सदैव आश्रित नहीं रहना चाहिए, अपितु उसे अत्याचारों और अन्यायों से अपनी रक्षा सदैव करते रहना चाहिए।

2. धार्मिक और सामाजिक अन्धविश्वासों में जनसाधारण को कभी अपनी निष्ठा नहीं रखनी चाहिए।

3. महामाया के चरित्रा से यह जताया गया है कि उच्चवर्गों के द्वारा निम्न वर्गों और जातियों के साथ अन्याय होता देख कर प्रजा को सदैव उनके विरुद्ध अपना सिर उठाना चाहिए।

4. राजा को सदैव प्रजा का ही पूर्ण प्रतिनिधित्व करना चाहिए। यदि वह ऐसा नहीं करता, तो प्रजा को अपनी समूची शक्ति से राजशक्ति को ललकारना चाहिए। गोस्वामी तुलसीदास ने भी यही विचार व्यक्त करते हुए कहा था–**'जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी। सो नर अवसि नरक अधिकारी।।'**

5. प्रत्येक राज्य में ब्राह्मणों और शिक्षकों का पूर्ण आदर–सत्कार किया जाना चाहिए।

6. लोगों को अपने देश और राज्य में भ्रटाचारियों का न केवल विरोध करना चाहिए, अपितु उनका अस्तित्व ही मिटा देना चाहिए।

7. लोगों को अपने जीवन में सदा एक दूसरे से प्रेमपूर्ण व्यवहार करना चाहिए और साथ ही परस्पर

सम्मान भी।

8. जीवन में बहुत–से विकल्प कभी नहीं रखने चाहियें और निस्स्वार्थ भाव से अपना जीवन जीते हुए अपने कर्म के फल या लक्ष्य की प्राप्ति को सदैव परमात्मा के लिए ही छोड़ देना चाहिए।

9. मानव अपने को युद्ध की विभीषिका से कभी भी पूरी तरह से मुक्त नहीं कर सकता है। उसे यथासम्भव अपने परिवेश और देश में शान्ति ही बनाए रखनी चाहिए।

10. समाज में नारी को सदैव यथोचित सम्मान मिलना चाहिए। पुरुष को उसे सदैव अपनी एक पथ–बाधा न समझ कर अपने लक्ष्य का साधन ही मान कर चलना चाहिए, तभी उसका जीवन सुखद और शान्तिपूर्ण हो सकता है, अन्यथा कभी नहीं।

11. धर्म के नकारात्मक पक्ष या रूप से जनसाधारण को सदैव सचेत रहना चाहिए और अपने आपको अधार्मिक हुए बिना धर्म के सभी आडम्बरों और बाहरी आचार–विचारों से दूर ही रखना चाहिए।

12. चूँकि कलाएँ मानव के जीवन की सर्वोच्च उपलब्धि हुआ करती हैं, इसलिए मानव मात्रा को कलाओं की प्रगति और विकास के लिए अधिकतम कार्य सम्पन्न करते रहना चाहिए। ऐसा करने से ही वह पशु की श्रेणी से अपने आपको ऊपर उठा पाएगा, अन्यथा कभी नहीं, यह महान् सन्देश भी हमें इसी उपन्यास से मिलता है। भर्तृहरि ने किसी स्थल पर समुचित ही कहा है कि **'साहित्यसंगीतकलाविहीनः साक्षात्पशुपुच्छविषाणहीनः'**–अर्थात् जो मानव साहित्य, संगीत और कलाओं से रहित है, वह मानो पूँछ और सींग के बिना एक पशु सरीखा ही है।'

1.4.4 स्वयं जांच अभ्यास

1. 'बाणभट्ट की आत्मकथा' के उद्देश्य पर प्रकाश डालें।

.....

.....

.....

1.4.5 सारांश

इस उपन्यास का प्रमुख उद्देश्य संस्कृत के महाकवि बाणभट्ट के चरित्रा के माध्यम से नारी मात्रा की महिमा को स्थापित करते हुए बाण के आश्रयदाता नरेश हर्षवर्धन के काल की आर्थिक, दार्शनिक, धार्मिक, नैतिक, राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों का भी उरेहन करना है। विद्वान् लेखक आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ने भारतवासियों को स्वदेश की अतीतकालीन सभ्यता और सांस्कृतिक गौरव की स्मृति दिलाने और अपने देश की वर्तमान समस्याओं को अतीत के दर्पण में प्रतिबिम्बित करने के लक्ष्य से इस महान् ऐतिहासिक और सांस्कृतिक उपन्यास की रचना की है। प्रत्येक सफल और सशक्त उपन्यास की ही भाँति आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी का उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' भी एक सोद्देश्य रचना है। इसमें प्रमुख उद्देश्यों के अतिरिक्त उससे जुड़े और अलग कुछ अन्य गौण उद्देश्यों को भी चरितार्थ कर दिया गया है। इन सभी का विवेचन इस पाठ में किया जाएगा, ताकि इस उपन्यास की उपयोगिता और महत्ता पर प्रकाश डाला जा सके।

1.4.6 शब्दावली

इस उपन्यास में अनेक कठिन शब्द आए हैं, जिनमें से कुछ के अर्थ यहाँ कोष्ठकों में दिए जा रहे हैं। छात्राों को

चाहिए कि पन्यास से इसी प्रकार के अन्य कठिन शब्दों का चुनाव करके शब्द–कोशों की सहायता से उनके अर्थ लिख कर याद करते रहें।

कुलभ्रष्टा (जिसका वंश ही पतित या गिरा हुआ हो), **दैवी** (अलौकिक, स्वर्गिक), **अननुकूल टीकाओं** (प्रतिकूल आलोचनाओं), **सद्धर्म** (सच्चा धर्म), **कुतर्क** (बुरे तर्क या दलीलें), **आयुष्मान्** (चिरंजीवी, लम्बी आयु तक जीने वाला), **संयत** (संयमपूर्ण, अपने पर नियन्त्राण रखने वाला), **अनुशीलन** (ध्यानपूर्वक अध्ययन या निरीक्षण), **सद्विचारों** (अच्छे विचारों), **दावाग्नि** (जंगल की आग, लक्ष्यार्थ है–विनाश करने वाली या उसकी सूचिका), **महासन्धिविग्रहिक** (राजप्रशासन में सेना का एक उच्च पदवीधारी, सेनापति या कोई और पद, जिसका उत्तरदायित्व **सन्धि** और **शान्ति** जैसे राष्ट्रीय हितों के सन्दर्भ में विचार–विमर्श के बाद कोई निर्णय लेना हुआ करता था), **नैरात्म्य–भावना** (वस्तुनिष्ठ भावना, जिसमें वैयक्तिकता या आत्मनिष्ठता नहीं रहती है और एक प्रकार की तटस्थता की ही वृत्ति प्रधान हुआ करती है), **चक्र** (यहाँ हर्षकाल में होने वाली धार्मिक संगोष्ठी या प्रार्थना–सभा से आशय है), **सार्थकता** (उपयोगिता, अर्थपूर्णता, महत्ता), **आजीवन** (जीवन भर , पूरे जीवन, ताउम्र), **फक्कड़** (अलमस्त, सांसारिक कामों से अलग, अपने में लीन मस्तमौला), **सैन्य संगठन** (सेना को गठित करने का कार्य या व्यवस्था), **निर्जन वास** (वन जैसे किसी एकान्त स्थान में जा कर निवास करना), **मर्यादाहीन** (किसी भी नैतिक सीमा से रहित या विहीन), **शृंखलाहीन** (क्रमहीन, बेतरतीब, बिखरी हुई, असंगठित), **फेन बुद्बुद** (पानी के झाग से बनने वाले बुलबुलों) इत्यादि।

1.4.7 प्रश्नावली (उत्तर–समेत)

इस उपन्यास से सम्बन्धित कुछ लघु प्रश्न उत्तरों के साथ आगे दिए जा रहे हैं। छात्राों को चाहिए कि वे इनसे मिलते–जुलते प्रश्न बना कर उनके उत्तर पाठ का ध्यानपूर्वक अध्ययन करके स्वयं ही तैयार करके अभ्यास करते रहें। ऐसा करने से उन्हें निश्चित ही बहुत लाभ होगा और वे समीक्षात्मक प्रश्नों के भी उपयुक्त उत्तर दे सकेंगे।

प्रश्न 1. इस उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' का संक्षेप में रचना–विषयक उद्देश्य लिखें ।

उत्तर : इस उपन्यास का प्रमुख उद्देश्य संस्कृत के महाकवि बाणभट्ट के चरित्रा के माध्यम से नारी मात्रा की महिमा को स्थापित करते हुए बाण के आश्रयदाता नरेश हर्षवर्धन के काल की आर्थिक, दार्शनिक, धार्मिक, नैतिक, राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों का भी उरेहन करना है। विद्वान् लेखक आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ने भारतवासियों को स्वदेश की अतीतकालीन सभ्यता और सांस्कृतिक गौरव की स्मृति दिलाने और अपने देश की वर्तमान समस्याओं को अतीत के दर्पण में प्रतिबिम्बित करने के लक्ष्य से इस महान् ऐतिहासिक और सांस्कृतिक उपन्यास की रचना की है। प्रत्येक सफल और सशक्त उपन्यास की ही भाँति आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी का उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' भी एक सोद्देश्य रचना है। इसमें प्रमुख उद्देश्यों के अतिरिक्त उससे जुड़े और अलग कुछ अन्य गौण उद्देश्यों को भी चरितार्थ कर दिया गया है।

प्रश्न 2. उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' के आधार पर हर्ष के शासनकाल की आर्थिक अवस्था पर संक्षेप में प्रकाश डालें।

उत्तर : साधारणतः राजा हर्षवर्द्धन के काल में आम जनता को रोटी, पानी और भोजन की कोई समस्या न थी। चूँकि उस काल में मुद्राओं या सिक्कों का बिलकुल प्रचलन न था, इसीलिए एक स्थान पर **'दीनार'** (जिसे फ़ारसी भाषा में **अश्रफ़ी** गहा जाता है) शब्द का उल्लेख एक कालगत दोष ही माना जाएगा।

उस काल में राजा और प्रजा दोनों ही दस्युओं के आक्रमणों से सन्त्रास्त रहा करते थे। देवपुत्रा तुवरमिलिन्द की कन्या चन्द्रदीधिति (नया नाम भट्टिनी) को मार्ग में से ही दस्यु बलात् अपहरण करके ले गये थे। उसका पिता साहसी था और उसका आतंक दस्यु जनों तक पर माना जाता था। फिर भी वह अपनी कन्या को अपहृत होने से न बचा पाया था। शासन के पदाधिकारी उन दस्युओं को रोकने में अपने को पूरी तरह से असमर्थ पा रहे थे। ऐसी स्थिति में महामाया ने सोते हुए सैनिकों को जगाया। उपन्यास में अपभ्रंश भाषा के गीत और उसके अभिभाषण से इसी तथ्य की पुष्टि हो जाती है।

प्रश्न 3. उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' के आधार पर हर्षकालीन धार्मिक अवस्था की दुर्दशा पर एक लघु टिप्पणी करें।

उत्तर : सभी धार्मिक सम्प्रदायों में आडम्बरों का भी बोलबाला था, जिसके कारण साधुओं को ढोंगी भी समझा जाने लगा था। **वसुभूति** एक ढोंगी बौद्ध भिक्षु था। उपन्यास में एक स्थल पर अघोरघण्ट स्वयं बाणभट्ट को बलि चढ़ाने लगा था। इससे पता चलता है कि उस काल में बलि प्रथा का भी प्रचलन आम था। ज्योतिष विद्या, सम्मोहन विधि आदि में लोगों की आस्था थी। लोग भजन–कीर्तन करने में विशेष रुचि रखते थे और टोलियाँ बना कर नाचते–गाते हुए अपने–अपने इष्ट देवी–देवताओं का नाम–स्मरण आदि किया करते थे। ग्राम देवता और तत्कालीन शासक या राजा की पूजा करने का भी विधान था। ब्राह्मण जाति के लोग न केवल यजमानों के घरों में जा कर पुरोहित का धार्मिक कार्य किया करते थे, अपितु शास्त्राादि का अध्ययन और अध्यापन भी करते थे। उनके द्वारा आए दिन शास्त्रार्थ भी किए जाते थे। उनमें वे धार्मिक नियमों आदि की शास्त्रीय व्याख्यायें, मीमांसायें और विवेचनायें करते हुए अपनी व्यवस्था दिया करते थे। जो भी पण्डित शास्त्रार्थ में विजयी हुआ करता था, सम्राट् उसी का धर्म स्वीकार कर लिया करता था। चूँकि बौद्ध वसुभूति उडुपति से शास्त्रार्थ में पराजित हो गया था, इसीलिए सम्राट् ने बौद्ध धर्म त्याग कर वैष्णव धर्म अंगीकार कर लिया था। पण्डित जन फलित ज्योतिष, होरा शास्त्रा और प्रश्नशास्त्रा की धाक लोगों पर जमाए हुए थे। वे जनसाधारण को राशिफल और कर्मफल बतलाने का काम सम्पन्न किया करते थे, जिनको 'यावनी गाथा' के आधार पर बनाया गया था और जिस काम के लिए उन्हें अच्छी राशि मिला करती थी।

प्रश्न 4. 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में राजनीतिक उद्देश्य से सम्बन्धित स्थितियाँ किस प्रकार की हैं, संक्षेप में लिखें ?

उत्तर : इस उपन्यास में निरूपित सम्राट् हर्षवर्धन के राज्य की व्यवस्था कुल मिला कर शिथिल ही बताई गई है। चरणाद्रि दुर्ग के पास भट्टिनी की नौका पर ईश्वरसेन के सैनिक आक्रमण कर देते हैं और प्रबल संघर्ष होता है। निपुणिका, भट्टिनी और बाण तीनों गंगा में कूद जाते हैं। महामाया एक स्थल पर कहती है कि "राजनैतिक शक्ति धार्मिकों द्वारा अपव्यय कीी जाती थी। विरततिवज्र तथा आयुष्मती सुचरिता को बन्दीगृह में डालना इसका ज्वलन्त प्रमाण है।

इसी प्रकार सामन्तों और राजाओं के अन्तःपुर अपहृत करके लाई और ख़रीदी गई कन्याओं से भरे पड़े थे। ये लोग नारी सम्बन्धी भोग–विलासों में अपनी सारी शक्ति का अपव्यय कर रहे थे। राजसैनिक जलदस्युओं को देश को लूटने से बचाने के लिए कुछ भी करने में पूर्णतया असमर्थ थे। इसी प्रकार केवल वेतनभोगी सेना म्लेच्छों के आक्रमणों को रोक नहीं पा रही थी। प्रजा राजसत्ता के विरुद्ध विद्रोह करने के लिए सदैव तत्पर नज़र आया करती थी। कुल मिला कर प्रदेश में कूटनीतियों और षड्यन्त्राों का जाल बिछा हुआ था। राजा राजनीतिक उथल–पुथल के उस काल में विक्षुब्ध और असन्तुष्ट जनता को केवल चारुस्मिता और विद्युतपांगा के नृत्य और

संगीत से शान्त करने की चेष्टा कर रहा था। वह म्लेच्छों के भय के कारण ही भट्टिनी का भी स्वागत–सत्कार करने के लिए अपने को पूरी तरह से विवश पाता है। इस का एक अन्य कारण उसके पिता तुवरमिलिन्द से उसे सहयोग मिलने की कुछ आशा थी। कुल मिला कर हर्षवर्द्धन के राज्य में राजनीतिक अव्यवस्था का ही वातावरण छाया हुआ था। उसी के कुशासन के कारण बाद में अनेक वर्षों तक प्रदेश में राजनीतिक प्रशासन में अराजकता ही व्याप्त रही थी।

प्रश्न 5. 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में सामाजिक उद्देश्य से सम्बन्धित स्थितियाँ किस प्रकार की हैं, संक्षेप में लिखें ?

उत्तर : हर्षवर्द्धन के काल में जातिवादी व्यवस्था पूरे यौवन पर थी और जातिवादी भेदभावों का ही ज़ोर था। लोग अपने कर्म से नहीं, केवल जन्म मात्रा से ही ब्राह्मण, क्षत्रिाय, वैश्य और शूद्र जैसे परम्परागत वर्गों में विभाजित हुआ करते थे। उपन्यास में लेखक ने निम्न से ले कर उच्च वर्गीय समाजों का निरूपण किया है। केवल निपुणिका ही अछूत जाति से उठ कर उच्च वैश्य वर्ग में पहुँच सकी थी, जिसका एक मात्रा कारण उसके किसी पूर्वज को सम्राट् के कुल में अच्छी नौकरी का मिल जाना रहा था। उससे पहले विधवा–विवाहों का पूर्ण निषेध ही था, केवल तभी विधवाओं के पुनर्विवाह होने आरम्भ हो गए थे। **निपुणिका** अपने विवाह के केवल एक वर्ष के भीतर ही विधवा हो गई थी। उसका विवाह केवल 16 वर्ष की अवस्था में सम्पन्न हुआ था। पहला विवाह किसी एक भड़भुँजे से हुआ था, जबकि दूसरा विवाह एक ऐसे सेठ से हुआ था, जोकि कान्दविक वैश्य जाति का था। वैधव्य के दिन कठिनाई से बिताने के बाद उसके अच्छे दिन आ जाते हैं। इसी प्रकार सुचरिता का विवाह बालपन में ही हो गया था। उसका पति मोक्ष पाने के चक्कर में घर से निकल कर संन्यासी का जीवन अपना चुका था। समाज में शासन–व्यवस्था के अच्छी न होने के कारण भट्टिनी और महामाया जैसी नारियों का अपहरण कर लिया गया था। राजकुल में भट्टिनी का बलात् विवाह छोटे–से राजकुल के ग्रहवर्मा से कर दिया गया था। यह और बात है कि उससे पहले उसकी सगाई (वाग्दान) किसी और के संग हो चुका था। राजकुलों में अपहृत करके या भगा कर लाई गई नारियों को भर्ती कर–कर के उन्हें करंकवाहिनियों और चामरधारिणी जैसे निम्नस्तरीय कार्य सौंप दिए जाते थे। कुल मिला कर नारियों की स्थिति उस समाज में दीनहीन और दयनीय ही कही जा सकती है।

शिक्षा की स्थिति उस काल में अवश्य सन्तोषजनक थी। समाज में ब्राह्मणों का विशेष आदर–सत्कार किया जाता था और वे शिक्षा–संस्थानों में शिक्षा देने का सम्मानजनक कार्य सम्पन्न किया करते थे। यहाँ तक कि उनके घरों में शुक–सारिकायें तक छात्राों को उनके द्वारा अशुद्ध उच्चारण सुन कर उन्हें टोकती रहती थीं।

प्रश्न 6. 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में सांस्कृतिक उद्देश्य से सम्बन्धित स्थितियाँ किस प्रकार की हैं, संक्षेप में लिखें ?

उत्तर : कुमार कृष्णवर्द्धन के सुपुत्रा के जन्मोत्सव मनाने की घटना से ऐसे उत्सवों के प्रचलन के प्रमाण मिलते हैं। इसी प्रकार होलिकोत्सव, मदनोत्सव या वसन्तोत्सव आदि के मनाने के दृश्यों से भी इस उपन्यास में रोचकता और सरसता में अभिवृद्धि होने के अवसर मिलते हैं। उपन्यास में मदनोत्सव के अवसर पर सारा समाज ही आ कर उपस्थित हो गया था। गणिका चारुस्मिता और कुछ गणिकायें मयूर नृत्य का कलाकौशलपूर्वक प्रदर्शन कर रही थीं। इसी प्रकार मनोरंजन के अन्य साधनों में पुस्तकवाचन, मानसी काव्य–क्रिया, दुर्वाचक–योग, अक्षरमष्टिक, पद्मविन्दुमती जैसी कलापूर्ण क्रीड़ाओं और विद्याओं का भी प्रयोग किया जाता था। जब सरस्वती मन्दिर में चारुस्मिता ने अपना मयूर नृत्य, जो उसने उससे पहले केवल राजपुरुषों की उपस्थिति में ही प्रदर्शित किया था, पहली बार प्रस्तुत किया, तो उस समय जनता का नृत्यकला के विषय में अनुराग छलका

पड़ता था। प्रेक्षागार शिल्पजाल का अछूता नमूना बना हुआ था। शिल्पियों ने प्रेक्षकशाला को एक मोहक रूप दे रखा था। इसी प्रकार का मनमोहक वर्णन लेखक ने होलिकोत्सव का भी प्रस्तुत किया है। कुल मिला कर यह कहा जा सकता है कि उस काल में राजधानी स्थाण्वीश्वर कलाओं और मनोरंजन के अन्यान्य साधनों का अद्‌भुत केन्द्र बनी हुई थी। नारियाँ भी इन उत्सवों में न केवल मदिरापान करती थीं, अपितु अश्लील गीत तक गाने में कोई अनैतिकता या बुराई नहीं समझा करती थीं। गणिकायें प्रसन्नता के विभिन्न अवसरों पर अपने नृत्य–गान आदि के द्वारा जनसाधारण का भरपूर मनोरंजन किया करती थीं।

प्रश्न 7. उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में लेखक ने नारी की स्वातन्त्रय चेतना और महिमागान को भी एक प्रमुख उद्देश्य के रूप में चरितार्थ किया है ? संक्षेप में टिप्पणी करें।

उत्तर : लेखक ने इस उपन्यास में नारी की दुर्दशा का मार्मिक वर्णन किया है, अपितु उसके प्रति समाज के आदर–सत्कार को बढ़ाने के लिए विशिष्ट स्थितियों और परिस्थितियों की भी योजना की है। एक प्रकार से कथानायक बाणभट्ट के माध्यम से नारी की स्वातन्त्रय चेतना और महिमा का विशेष रूप से बखान करना ही इस उपन्यास का एक महान् और प्रमुख कार्य माना जा सकता है। निपुणिका पतित समाज में रहती रही है। उसका जीवन कीचड़ में उगे हुए किसी कमल के समान ही कहा गया है। वह बाणभट्ट से अथाह प्रेम करती है। यह और बात है कि वह स्वयं को बाण के प्रेम का पात्रा या योग्य नहीं मानती है। वह उसके मार्ग में कोई बाधा केवल इसीलिए नहीं उत्पन्न करना चाहती है, क्योंकि वह उसे एक महान् लेखक और 'दुर्लभ रत्न' मानती है। एक ज्योतिषी ने यह भविष्यवाणी की थी कि जिस दिन वह उसे प्राप्त हो जायेगी, तब वह उस पर एक काव्य लिख देगा और ऐसा करने से उसकी आयु कम रह जाएगी। बस, इसी भय से वह उससे भेंट नहीं करती है। निपुणिका नाटक–मण्डली में भाग लेती है। वह एक नाटक में वासवदत्ता की भूमिका करते समय राजा बने हुए बाण के हाथ में रत्नावली का हाथ थमाते हुए इतनी अधिक भावुक हो जाती है हिक विचलित और पीडिक्त हो कर वही ढेर हो जाती है और दम तोड़ देती है। उसके प्राण–पखेरू उड़ जाने पर **सुचरिता** बाण से कहती है, "निपुणिका धन्य हो गयी, आर्य ! उसकी चिन्ता छोड़ो, परन्तु उसका बलिदान तभी सार्थक होगा, जब तुम उसके दान का सम्मान करोगे।" कौन जानता था कि निपुणिका अपने जीवन के स्त्रीत्व की मर्यादा स्थापित कर जाएगी।"

लेखक विधि–निषेधों, कठोर नियमों, सामाजिक वर्जनाओं और पाप के भय से या उसके बल पर नारी के संसर्ग को हेय और त्याज्य ठहराने वाले लोगों की हीन कोशिशों का भरपूर विरोध करता है। वह कहता है, "नारीहीन तपस्या संसार की भद्दी भूल है। वह धर्म–कर्म का विशाल आयोजन, सैन्य संगठन और राज्य–'व्यवस्थापन सब फेन–बुद्‌बुद की भाँति लुप्त हो जायेंगे, क्योंकि नारी का इसमें सहयोग नहीं है। यह सारा ठाठ–बाठ, संसार में केवल अशान्ति पैदा करेगा।" –(उपन्यास, पृष्ठ 147)।

1.4.8 सहायक पुस्तकें :

1. डॉ. सत्यपाल चुघ, 'प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों की शिल्पविधि' (दिल्ली, प्रथम संस्करण सन् 1967)
2. महेशचन्द्र भारतीय, 'बाणभट्ट और उनका हर्षचरित' (प्रथम संस्करण)
3. डॉ. शशिभूषण सिंहल, 'यात्राा–गाथा'(प्रथम संस्करण)
4. डॉ. त्रिभुवनसिंह, 'उपन्यासकार हज़ारी प्रसाद द्विवेदी' (वाराणसी, प्रथम संस्करण)

5. डॉ॰ हरमोहन लाल सूद, 'हज़ारी प्रसाद द्विवेदी का सर्जनात्मक साहित्य' (दिल्ली–94, निर्मल पब्लिकेशन, सन् 1998)

6. डॉ॰ मीरा मिश्रा, 'उपन्यासकार हज़ारी प्रसाद द्विवेदी : ऐतिहासिक सन्दर्भ और आधुनिक बोध' (वाराणसी, विजय प्रकाशन मन्दिर, बी॰ 21/76, कमच्छा, प्रथम संस्करण गंगा दशहरा सन् 1993 ई.)

7. डॉ॰ यश गुलाटी, 'प्रतिनिधि हिन्दी उपन्यास' (चण्डीगढ़, हरियाणा साहित्य अकादमी, प्रथम संस्करण सन् 1989)

8. डॉ॰ कृष्ण भावुक, 'हिन्दी साहित्य का प्रामाणिक इतिहास' (पटियाला, पेप्सु बुक डिपो, संस्करण वर्तमान वर्ष)

9. संपादक डॉ॰ शिवप्रसाद सिंह, आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी : 'शान्तिनिकेतन से शिवालिक तक'

10. आचार्य हज़ारीप्रसाद द्विवेदी, निबन्ध–संग्रह 'कल्पलता'

11. नरेन्द्र कोहली, 'हिन्दी उपन्यास : सृजन और सिद्धान्त' (दिल्ली, सौरभ प्रकाशन, प्रथम संस्करण सन् 1979)

12. हज़ारीप्रसाद द्विवेदी–ग्रन्थावली, भाग 10. (नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण)

'बाणभट्ट की आत्मकथा' का सांस्कृतिक महत्त्व

पाठ की रूपरेखा :

1.5.0 उद्देश्य

1.5.1 भूमिका

1.5.2 हर्षकालीन सभ्यता का चित्राण

1.5.2.1 पर्वोत्सव और त्यौहार :

1.5.2.2 मनोरंजन के विविध साधन :

1.5.2.3 रहन–सहन के साधन :

1.5.2.4 वेशभूषा :

1.5.3 हर्षकालीन संस्कृति का चित्राण

1.5.3.1 विभिन्न कलाएँ

1.5.3.2 विभिन्न ज्ञान–विज्ञान :

1.5.3.3 विभिन्न दार्शनिक, धार्मिक और सामाजिक आयाम

1.5.3.4 स्वयं जांच अभ्यास

1.5.4 सार

1.5.5 शब्दावली

1.5.6 प्रश्नावली

1.5.7 सहायक पुस्तकें

1.5.0 उद्देश्य

इस पाँचवें पाठ का लक्ष्य बाणभट्ट की आत्मकथा में चित्रित विभिन्न सांस्कृतिक आयामों को अधिक–से–अधिक रेखांकित करना ही है। चूँकि सभ्यता और संस्कृति में एक सूक्ष्म–सा अन्तर हुआ करता है, इसीलिए इस पाठ को दो भागों में विभाजित किया गया है। पहले मानव के **बाहरी विकास** से सम्बन्धित खानपान, वेश–भूषा,

रहन–सहन आदि से सम्बन्धित उन आयामों का उपन्यास के आधार पर सोदाहरण चित्राण किया गया है, जिनसे मानव के दैहिक आदि बाहरी विकास का पता चलता है। उसके बाद उसके मन–मस्तिष्क और ज्ञान–विज्ञान के उन साधनों का सोदाहरण विवेचन किया गया है, जिनसे मानव मात्रा के **आन्तरिक** (अर्थात् मानसिक) **विकास** के लक्षण उजागर होते हैं।

1.5.1 भूमिका

यह एक ऐतिहासिक और सांस्कृतिक श्रेणी का सशक्त उपन्यास है, जिसमें विद्वान् लेखक और मानवतावादिनी चिन्ताधारा के श्रेष्ठ विचारक आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ने हर्षकालीन सभ्यता और संस्कृति को चित्रित करते हुए नारी मात्रा की दुर्दशा और उसकी दुर्दशा के साथ ही उसकी महिमा और स्वातन्त्रय चेतना को भी इसमें वाणी प्रदान की है। इसके साथ ही उसने इस कृति में आर्थिक, दार्शनिक, धार्मिक, नैतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों और परिवेश का भी यथार्थपरक उरेहन किया है। इससे यह उपन्यास मध्यकालीन सांस्कृतिक महत्ता को वर्तमान भारत के संदर्भ में अध्ययन, चिन्तन और मनन की आधारभूत और प्रामाणिक सामग्री प्रस्तुत करने वाला एक दस्तावेज़ी उपन्यास बन गया है।

चूँकि 'बाणभट्ट की आत्मकथा' का सांस्कृतिक महत्त्व इस पाठ का विषय है, इसीलिए यहाँ कथानायक बाण के काल की सांस्कृतिक चेतना के विभिन्न आयामों को उदाहरण रूप में प्रस्तुत किया गया है। सबसे पहले यह स्पष्ट करना आवश्यक प्रतीत होता है कि **सभ्यता और संस्कृति** में एक सूक्ष्म–सा अन्तर हुआ करता है। **'सभ्यता'** में मानव के बाहरी विकास के चिह्नों को देखा जाता है। उदाहरणतः जब सड़कों, शृंगार के विभिन्न प्रसाधनों यथा कपड़ों, आभूषणों, लिप्सटिक, पाउउर आदि साधनों, सौन्दर्यवर्द्धक पदार्थों, मशीनों, कारीगरी के विभिन्न साधनों आदि का विकास होता है, तब वह **मानव की सभ्यता के विकास** का ही लक्षण हुआ करता है। इसके ठीक विपरीत जब मानव अपने मन और मस्तिष्क के विकास के लिए भावों और विचारों के धरातल पर विभिन्न कलाओं यथा काव्यकला, चित्राकला, संगीतकला, मूर्त्तिकला और स्थापत्य या भवन–निर्माण–कला के साथ–साथ नाट्यकला, पाककला, युद्धकला आदि विभिन्न कलाओं के विकास के प्रयोजन से सार्थक प्रयास करता है, तब उसकी **संस्कृति का ही विकास** होता है। उदाहरणतः महाकवि बिहारी के काल में न तो साहित्य की विविध विधाओं के लेखन के बाद उसे सुरक्षित रखने के लिए आज जैसी आलमारियों और छापेख़ाने की कला थी और न ही एक–दूसरे तक अपने भावों और विचारों के सम्प्रेषण के लिए विशेष सुखद सुविधायें थीं। कालान्तर में वैज्ञानिक प्रगति होने पर मुद्रणकला और संचार के साधनों का विकास होने पर मानव की सभ्यता की ही प्रगति मानी जाएगी। पुस्तकों को सँभाल कर रखने के लिए आलमारियों के अतिरिक्त उन्हें दीमको से होने वाली हानियों से बचाने के लिए वैज्ञानिक आविष्कारों ने भी सभ्यता का ही विकास किया है। इसके विपरीत आलमारियों आदि में जिन पुस्तकों आदि को रखा जाता है, शिक्षा से ही उनका सम्बन्ध होने के कारण उनकी गणना सदैव संस्कृति के ही अन्तर्गत की जाएगी, किन्तु आलमारियों आदि का निर्माण तो सभ्यता के विकस के ही चिह्न माना जाएगा। इसी प्रकार यदि सड़कें, इमारतें, बाग़–बाग़ीचे आदि, 'फ़्लश–सिस्टम' के स्नानघर बनाना यदि सभ्यता की निशानी है, तो भवनों के निर्माणकला–विषयक ग्रन्थों का लेखन आदि संस्कृति के ही अन्तर्गत आएगा। इस प्रकार सभ्यता यदि मानव के बाहरी विकास में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है, तो संस्कृति के साधन उसके उस आन्तरिक या बौद्धिक और मानसिक विकास में अपना योगदान करते हैं, जो संस्कृति के विकास का ही क्षेत्रा कहा जाएगा। प्रस्तुत उपन्यास के सांस्कृतिक महत्त्व को रेखांकित करने के लिए सभ्यता और संस्कृति के इन्हीं दोनों वर्गों को ध्यान में रखा गया है।

1.5.2 हर्षकालीन सभ्यता का चित्राण

यहाँ उपन्यास में बाणभट्ट और उसके आश्रयदाता सम्राट् हर्ष, जिनका यह कथानायक राजकवि या सभा–पण्डित था, के काल की सभ्यता से सम्बन्ध रखने वाले मनोरंजन के साधनों, वेशभूषा, खानपान से सम्बन्ध रखने वाले वर्णनों और विवरणों के सम्बन्ध में शोधपूर्वक विवेचन किया जा रहा है।

1.5.2.1 पर्वोत्सव और त्यौहार :

हर्ष के काल में लोग निम्न और उच्च जातियों और अपनी भिन्न–भिन्न आर्थिक स्थितियों के अनुसार देश में अनेक पर्वोत्सवों को विधिवत् मनाया करते थे। कुमार कृष्णवर्धन के शिशु का जब **जन्मदिन** मनाया जाता है, तब कथानायक बाण भी उनके राजप्रासाद में कुछ पुरस्कार पाने के लोभ में चला जाता है। इसी प्रकार जब **मदनोत्सव** मनाया जाता है, तब सभी क्षीबी तक उस अवसर पर उपस्थित थे। इसी प्रकार **होलिकोत्सव** में उच्च और निम्न सभी जातियों के लोग मिल–जुल कर आनन्दमग्न हुआ करते थे। ऐसे अवसरों पर गणिकाओं और नर्तकियों के नृत्यों से वातावरण आनन्दपूर्ण हो जाया करता था। इसी प्रकार धार्मिक आयोजनों और अन्य अवसरों पर समाज की सभी श्रेणियों के लोग हवन, यज्ञ और नाटकों के प्रदर्शन के समय धूमधाम से पहुँचा करते थे। ज्योतिष विद्या, सम्मोहन विधि आदि में लोगों की गहरी आस्था थी। फलित ज्योतिष और होरा शास्त्रा में भी जनसाधारण का गहरा विश्वास था। इससे लोगों की अशिक्षा आदि का ही प्रमाण मिलता है। लोग भजन–कीर्तन करने में विशेष रुचि रखते थे और टोलियाँ बना कर नाचते–गाते हुए अपने–अपने इष्ट देवी–देवताओं का नाम–स्मरण आदि किया करते थे। ग्राम–देवता और तत्कालीन शासक या राजा की पूजा करने का भी विधान था। इसी सन्दर्भ में डॉ. मीरा मिश्र का वक्तव्य है, "**मदनोत्सव** को बड़े धूमधाम से मनाया जाता था। यह फाल्गुन की पूर्णिमा को मनाया जाता था। यह आज की होली की ही भाँति रहा होगा। इसमें कुमारियाँ भाग लेती थीं। उपन्यास के ही शब्द हैं–"इस दिन नगर की समस्त कुमारियाँ मदन की पूजा कर वरदान में अपने अभिलषित वरों को तथा लाक्षा–रस से भूर्जपत्रा पर वांछित वरों की प्रतिमा बना कर चुपके से भगवान् कुसुमसायक को भेंट करती थीं।–('बाणभट्ट की आत्मकथा', पृष्ठ 13)।

आगे डॉ. मीरा जी ही लिखती हैं, "इस **सामाजिक उत्सव** का वर्णन हमें मंच पर प्रदर्शित या अभिनीत **'रत्नावली'** नाटिका के प्रथम अंक में भी देखने को मिलता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि उपन्यासकार ने रत्नावली, हर्षचरित तथा मेघदूतं आदि के आधार पर तत्कालीन सामाजिक आचार–विचार तथा उत्सवों, पर्वों आदि का विश्वसनीय वर्णन प्रस्तुत किया है।" –(ग्रन्थ पूर्वोक्त, पृष्ठ 200)

1.5.2.2 मनोरंजन के विविध साधन :

हर्ष के राज्य की ओर से साधारण जनता के लिए विविध अवसरों और समारोहों में गणिकाओं और नर्तकियों के विशेष नृत्यों के आयोजनों की व्यवस्था की जाती थी। इसके अतिरिक्त अभिजात और राजसी कुलों से सम्बन्ध रखने वाले राजकुमारों और सामन्तों के मनोरंजनों के लिए पाशों, द्यूत–क्रीड़ाओं, अन्त्याक्षरियों, मानसी प्रहेलिकाओं, अक्षर–च्युतकों, वीणाओं जैसे वाद्यों के वादन आदि की समुचित व्यवस्था की जाती थी। (उपन्यास, पृष्ठ 198)। इसके अतिरिक्त काव्य और शास्त्राों के शब्दों, पदों आदि की गूढ़ व्याख्याओं के आयोजन भी धार्मिक संगीतियों और संसदों में किए जाते थे। इसके अतिरिक्त अन्यान्य मनोरंजन–विषयक साधनों से भी जनसाधारण का मनोविनोद होता रहता था। इसी प्रकार अन्य साधनों में पुस्तकवाचन, मानसी काव्य–क्रिया, दुर्वाचक–योग,

अक्षरमष्टिक, पद्मविन्दुमती जैसी कलापूर्ण क्रीड़ाओं और विद्याओं का भी प्रयोग किया जाता था।

1.5.2.3 रहन–सहन

हर्षकालीन समाज वर्ण–व्यवस्था के अनुसार चला करता था। जातियाँ कर्म की अपेक्षा जन्म से ही मानी जाती थीं। समाज में ब्राह्मणों का विशेष आदर–सत्कार किया जाता था। एक कथन इसी के प्रमाणस्वरूप प्रस्तुत है, जिसमें कथानायक बाणभट्ट स्वयं कुमार कृष्णवर्धन से साहसपूर्वक ये शब्द कहता है, "और ब्राह्मण पर तुम्हारा कोप व्यर्थ है। वह न भिखारी होता है, न महासंधिविग्रहिक। वह धर्म का व्यवस्थापक होता है।" यह और बात है कि स्वयं कुमार कृष्णवर्धन उसे **'भिक्षाजीवी'** के अपमानजनक विशेषण से पुकारता है।

समाज में **क्षत्रिाय जाति** का विशेष योगदान या भूमिका मानी जाती थी। इसमें राजन्य वर्ग से सम्बन्धित व्यक्ति अधिकतर अपनी शक्ति के मद में ही फूले रहते थे। कुमारवर्धन, हर्ष और स्वयं कथानायक बाण के परस्पर संवादों से इसी तथ्य की पुष्टि हो जाती है। कुछ राजकुमार तो अपने राजमद में अँधे ही हो रहे थे। छोटे–छोटे राजकुलों के उच्चपदाधिकारी भोग–विलास में लीन रहा करते थे और उनके अन्तःपुरों में दस्युओं के द्वारा अपहृत कन्याओं को न केवल करंकवाहिनियाँ और चामरधारिणियाँ बना कर उनसे रात–दिन काम लिया जाता था, अपितु उनसे वे अपनी कामवासना की भी तृप्ति किया करते थे। इस प्रकार राजप्रासादों में कामवासना की नदी बहा करती थी। जनसाधारण मन–ही–मन तो उनसे घोर घृणा और वितृष्णा करते थे, परन्तु प्रकट रूप में उनसे लाभान्वित होने के लिए उनकी चमचागीरी करने में आगे रहा करते थे। जिन लोगों पर राजसी व्यक्तियों की कृपा–दृष्टि हो जाती थी, उनका सामाजिक और आर्थिक स्तर स्वाभाविक रूप से उठ जाया करता था और वे उन्हीं के साथ पर्वोत्सवों आदि की रंगीनियों में मस्त होने लग जाते थे। उपन्यास में **मदनश्री** और **चारुस्मिता** नर्तकियाँ थीं और राजकुल से जुड़े होने के कारण उनकी आर्थिक स्थिति में धीरे–
धीरे अच्छी होती जा रही थी। दूसरी ओर, भट्टिनी यद्यपि कुलीन घर–परिविार से सम्बन्ध रखती थी, तथापि परिस्थितिवश उसे सरलता का ही जीवन बिताना पड़ रहा था।

जब निम्न जाति के किसी व्यक्ति को राजकीय संरक्षण प्रदान कर दिया जाता था, तब वह जा कर अभिजात कुलीन समाज में ही मिल जाया करता था। उदाहरणतः **निपुणिका** नीची जाति से सम्बन्ध रखती थी और उसके पूर्वजों को सौभाग्यवश गुप्त राजाओं के यहाँ अच्छी नौकरी मिल गई थी। उसका अपना जन्म अछूत समझे जाने वाले परिवार में ही हुआ था। वह जा कर अभिजात कुल के लोगों के ही साथ रहने लगी थी। वह अपने को वैश्य जाति का ही मानती थी। उच्च कुल की हो कर वह ब्राह्मणों और क्षत्रियों के रीति–रिवाजों का निर्वाह करने लग जाती है। इस प्रकार उच्च और निम्न जातियों में आर्थिक आधार पर अन्तर रहता आया है।

1.5.2.4 वेशभूषा :

उपन्यास में पात्राों की वेशभूषा देशकाल और वातावरण के ही अनुरूप मिलती है। इससे सभ्यता के बाहरी रूप विशेष का यथार्थ हमारे सामने उभर कर आता है। कथानायक बाणभट्ट एक अवसर पर अपनी जिस वेशभूषा के धारण करने की बात कहता है, उससे उस काल के ब्राह्मणों के वेश–विन्यास का ही यथार्थ ज्ञान होता है। वह कहता है, "उस दिन मैंने डट के स्नान किया, शुक्ल अंगराज धारण किया, शुक्ल पुष्पों की माला धारण की, आगुल्फ शुक्ल धौत उत्तरीय धारण किया।"

इसी प्रकार द्वाररक्षिणी या प्रतिहारिणी की वेशभूषा के विषय में ये वर्णन अवलोकनीय हैं :–

1. "हाथ में नंगी तलवार रहती थी और बाँईं ओर एक क्षुद्र कृपाण कोषबद्ध अवस्था में झूलती थी।"

2. "उसका शरीर आगुल्फ लंबे नील कंचुक से ढका रहता था तथा मस्तक पर उत्तरीय बँधा होता था। उसके कान में के दन्तपत्रा उसके चिक्कन कपोल–मण्डल को उद्‌भासित करते होते थे। पैरों में उसके घन अलक्तक–रक्त (महावर) लगा रहता था।"

इसी प्रकार एक ढोंगी **पुजारी की वेशभूषा** देखें, जिससे इस वर्ग के पुजारियों का प्रतिनिधित्व होता लगता है और साथ ही उनके हास्यास्पद आचरण और व्यवहार से **हास्य रस** की सृष्टि भी होती चलती है, साथ ही पठन में रोचकता और सरसता का समावेश भी होता रहता है"–कानों में (वे) "औण्ड्र पुष्प लटकाते थे। आँख यद्यपि एक थी, परन्तु वह उसमें नित्य चिक्कन शलाका द्वारा अंजन लगाया करते थे। शरीर को उत्तरीय से ढके रहते थे। महावर से रंगा वस्त्रा धारण करते थे।"

1. जब सुचरिता जा कर अपने गृहत्यागी संन्यासी पति के साथ मिल जाती है, तब उसकी वेशभूषा भी कुछ इस प्रकार की हो जाती है, "वह नीचे से ऊपर तक एक शुभ्र कौशेय वस्त्रा से समावृत थी।"

2. "कान्यकुब्ज स्त्रियों में प्रक्षेप्य तथा आवेध्य अलंकारों (अर्थात् आभूषणों) का बड़ा चलन था, परन्तु वह कानों में एक चक्राकृति कुण्डल के सिवा और कोई आवेध्य अलंकार नहीं पहने थी और आक्षेप्य अलंकार (हार जैसे ज़ेवर जो हाथ से फेंक या उछाल कर गले आदि में पहने जाते हैं) तो उसने पहने ही नहीं थे–मजीर, नूपुर या कनक मेखला आदि।"

3. "वह सुवर्णहार और मालतीमाला धारण किए थी।"

इसी प्रकार लेखक ने गणिकाओं की यथार्थपरक वेशभूषा और परिधान–विन्यास से उनके व्यावसायिक वर्ग के अनेक शब्द–चित्रा मूर्तिमन्त करके रख दिए हैं। यथा कुछ उदाहरणों से इस तथ्य की भी पुष्टि हो जाती है कि आचार्य द्विवेदी भी जयशंकर प्रसाद की तरह से अपने पात्राों के परिधानों की कालपरकता और यथार्थता के प्रति विशेष रूप से जागरूक और सावधान लेखक के दायित्व–वहन का ही प्रमाण दिया करते हैं। ये उदाहरण उनके सम्बन्ध में देशकाल के ज्ञान और उसकी चरितार्थता की साहित्यिक पुष्टि कर रहे हैं :–

1. "उसके चीनांशुक किनारों पर एक हल्की–सी लाली और लहर–सी डोल रही थी।"

2. "नूपुरों की क्वणन–ध्वनि ने उस तरंगायित अलक्ताभा को शोभामय बना दिया था।"

3. "बाण ने रत्नावली माला की ओर लक्ष्य नहीं किया; पर उसके अंशुकान्त (आंचल) के बाहर निकले हुए बाहुयुगल को देख कर मृणाल–नाल का भ्रम होता था।"

4. "उसके ललाट पर मनःशिला का लाल बिन्दु अनुराग–प्रदीप की तरह जल रहा था।

5. "कान में माणिक्य–कुण्डल पहने थी।"

इसी प्रकार समाज की अन्य **सामान्य युवतियों की वेशभूषा** पर लेखक की ये टिप्पणियाँ उपन्यास के तत्कालीन देशकाल और वातावरण को साकार करने में विशेष रूप से सहायक हुई हैं :–

1. "वे हाथों में मणिजटित चूड़ियाँ तथा पाँवों में नूपुर पहनती थीं।"

2. "अंगराग लगाती थीं।"

3. "चीनांशुक का प्रयोग करती थीं।"

4. "कानों में माणिक्य–कुण्डल पहने होती थीं।"

5. "ललाट पर कुंकुम लगाती थीं।"

इस प्रकार के अनेक निदर्शन हर्षकालीन सभ्यता को रेखांकित करने वाले मिलते रहते हैं। कुल मिला कर अपने काल की सभ्यता का चित्राण करने के कारण यह उपन्यास उस काल के इतिहास का एक प्रामाणिक दस्तावेज़ बन गया है।

1.5.3 हर्षकालीन संस्कृति का चित्राण

1.5.3.1 विभिन्न कलाएँ :

इस उपन्यास में काव्यकला के अतिरिक्त **संगीतकला** और उसके भी अन्तर्गत आने वाली **नृत्यकला** के विषय में लोगों की विशिष्ट रुचियों का ज्ञान होता है। जब सरस्वती मन्दिर में **चारुस्मिता** ने अपना मयूर नृत्य, (जो उसने उससे पहले केवल राजपुरुषों की उपस्थिति में ही प्रदर्शित किया था), पहली बार जनसाधारण के सामने प्रस्तुत किया, तो उस समय जनता का नृत्यकला के विषय में अनुराग छलका पड़ता था। प्रेक्षागार शिल्पजाल का अछूता नमूना बना हुआ था। शिल्पियों ने प्रेक्षकशाला को एक मोहक रूप दे रखा था। इसी प्रकार का मनमोहक वर्णन लेखक ने **होलिकोत्सव** का भी प्रस्तुत किया है। कुल मिला कर यह कहा जा सकता है कि उस काल में राजध ाानी स्थाण्वीश्वर कलाओं और मनोरंजन के अन्यान्य साधनों का अद्‌भुत केन्द्र बनी हुई थी। नारियाँ भी इन उत्सवों में न केवल मदिरापान करती थीं, अपितु अश्लील गीत तक गाने में कोई अनैतिकता या बुराई नहीं समझा करती थीं। गणिकायें प्रसन्नता के विभिन्न अवसरों पर अपने नृत्य–गान आदि के द्वारा जनसाधारण का भरपूर मनोरंजन किया करती थीं।

संस्कृति का सम्बन्ध किसी देश की कलाओं, काव्य–कला, चित्राकला, मूर्त्तिकला, संगीतकला और स्थापत्य या भवन–निर्माण–कला के अतिरिक्त **नाट्यकला** आदि विभिन्न कलाओं से भी हुआ करता है। इस दृष्टि से हर्षवर्द्धन का काल बहुत समृद्ध था। आचार्य द्विवेदी ने इसे प्रदर्शित करने के लिए हर्षवर्द्धन द्वारा रचित 'रत्नावली' जैसी नाटिका के मंचन आदि का विस्तार से वर्णन किया है और प्रसंगवश सुप्रसिद्ध नर्तकियों की नृत्यकला की ऐसी–ऐसी बातें लिखी हैं, जोकि महाकवि कालिदास–कृत नाटक 'मालविकाग्निमित्रां' तक में मिल जाती हैं। नाटक के मंचन के समय समाज के धनी–मानी व्यक्ति और महापुरुष ही नहीं, स्वयं राजा तक सम्मिलित हो कर जनसाधारण का उत्साहवर्धन किया करते थे। राजा हर्षवर्धन के बारे में कहा गया है कि वे अपने द्वारा किए जाने वाले अत्याचारों और अन्यायों से जनता का ध्यान बँटाने के लिए ही नाटकों आदि का मंचन किया करते थे। सांस्कृतिक धरातल पर ही कलाओं के बाद विभिन्न प्रकार के ज्ञान–विज्ञानों और दर्शनशास्त्रा, नीतिशास्त्रा और धर्मशास्त्रा से सम्बद्ध प्रगति और विकास के विभिन्न आयामों का नाम आया करता है। इस दृष्टि से अवश्य सम्राट् हर्षवर्द्धन के काल को एक स्वर्णिम काल कहा जा सकता है।

1.5.3.2 विभिन्न ज्ञान–विज्ञान :

हर्ष के विवेच्य काल में लोग **ज्योतिषशास्त्रा, तन्त्राविज्ञान, अन्त्याक्षरी, अक्षरमुष्टिक** आदि विद्याओं के ज्ञान और उनसे जुड़े कार्य–व्यापारों में बढ़–चढ़ कर या तो स्वयं भाग लेते थे या फिर भाग लेने वालों के प्रदर्शनों आदि को बड़े चाव और उत्साह से देखा करते थे।

1.5.3.3 विभिन्न दार्शनिक, धार्मिक और सामाजिक आयाम :

इस काल में दार्शनिक स्थितियों का ख़लासा करते हुए **डॉ॰ मीरा मिश्रा** लिखती हैं कि "उपन्यास में आये नागरिकों

की आस्था या तो बौद्ध धर्म में या फिा शैव धर्म में है। वे लोग बड़े तल्लीन हो कर अघोर भैरव की वार्ता सुनते हैं या वेंकटेश भट्ट के साथ आयोजन में एकत्रित हो कर गाते–बजाते हैं। इसी आयोजन में वे प्रवचन करते और लोगों को दीक्षित भी करते हैं। वैष्णव धर्म सामाजिकों का धर्म है, जिसके कारण वे आचरण, पवित्राता और अवतार आदि में आस्था रखते हैं। इसी तरह लेखक कथा में दो जगह बौद्ध धर्म का भी संकेत आता है। एक स्थान पर बौद्ध विहार का चित्रा है, जहाँ आचार्यपाद सुगतभद्र नाम के भिक्षु धर्म की शिक्षा देते हैं। इस प्रकार "हर्ष के समय ही बौद्ध धर्म महायान से मन्त्रायान और मन्त्रायान से वज्रयान का जो विकास हुआ, उसमें औपतित रूप के साथ शाक्त और शैव मतों के तन्त्राविज्ञान का किस प्रकार समन्वय हुआ, वह एक दीर्घ परम्परा की कहानी है। 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में इन समस्त दार्शनिक सूत्राों की योजना की गई है।" –(ग्रन्था 'उपन्यासकार हजारी प्रसाद द्विवेदी : ऐतिहासिक सन्दर्भ और आधुनिक बोध', पृष्ठ 199)।

जहाँ तक **'विवाह'**–संस्था की बात है, उससे जुड़े विधवा–विवाहों के करने के सम्बन्ध में स्प्ष्ट वर्जना मिलती है। उससे पहले **विधवा–विवाहों का पूर्ण निषेध** ही था, केवल तभी विधवाओं के पुनर्विवाह होने आरम्भ हो गए थे। निपुणिका अपने विवाह के केवल एक वर्ष के भीतर ही विधवा हो गई थी। उसका विवाह केवल 16 वर्ष की अवस्था में सम्पन्न हुआ था। उसका वह पहला विवाह किसी एक भड़भुँजे से हुआ था, जबकि दूसरा विवाह एक ऐसे सेठ से हुआ था, जोकि कान्दविक वैश्य जाति का था। वैधव्य के दिन कठिनाई से बिताने के बाद उसके अच्छे दिन आ जाते हैं। इसी प्रकार सुचरिता का विवाह बालपन में ही हो गया था। उसका पति मोक्ष पाने के चक्कर में घर से निकल कर संन्यासी का जीवन अपना चुका था। समाज में शासन–व्यवस्था के अच्छी न होने के कारण भट्टिनी और महामाया जैसी नारियों का अपहरण कर लिया गया था। राजकुल में भट्टिनी का बलात् विवाह छोटे–से राजकुल के ग्रहवर्मा से कर दिया गया था। यह और बात है कि उससे पहले उसकी सगाई (वाग्दान) किसी और के संग हो चुकी थी। राजकुलों में अपहृत करके या भगा कर लाई गई नारियों को भर्ती कर–कर के उन्हें करंकवाहिनियों और चामरधारिणी जैसे निम्नस्तरीय कार्य सौंप दिए जाते थे। कुल मिला कर नारियों की स्थिति उस समाज में दीनहीन और दयनीय ही कही जा सकती है।

शिक्षा की स्थिति उस काल में अवश्य सन्तोषजनक थी। समाज में ब्राह्मणों का विशेष आदर–सत्कार किया जाता था और वे शिक्षा–संस्थानों में शिक्षा देने का सम्मानजनक कार्य सम्पन्न किया करते थे। यहाँ तक कि उनके घरों में शुक–सारिकायें तक छात्राों के द्वारा अशुद्ध उच्चारण सुन कर उन्हें टोकती रहती थीं। **ब्राह्मण जाति** के लोग न केवल यजमानों के घरों में जा कर पुरोहित का धार्मिक कार्य किया करते थे, अपितु शास्त्राादि का अध्ययन और अध्यापन भी करते थे। उनके द्वारा आए दिन शास्त्रार्थ भी किए जाते थे। उनमें वे धार्मिक नियमों आदि की शास्त्रीय व्याख्यायें, मीमांसायें और विवेचनायें करते हुए अपनी व्यवस्था अर्थात् उनके सम्बन्ध में अपना अन्तिम निर्णय दिया करते थे। जो भी पण्डित शास्त्रार्थ में विजयी हुआ करता था, सम्राट् उसी का धर्म स्वीकार कर लिया करता था। चूँकि बौद्ध वसुभूति उडुपति से शास्त्रार्थ में पराजित हो गया था, इसीलिए सम्राट् ने बौद्ध धर्म त्याग कर वैष्णव धर्म अंगीकार कर लिया था। पण्डित जन फलित ज्योतिष, होरा शास्त्रा और प्रश्नशास्त्रा की धाक लोगों पर जमाए हुए थे। वे जनसाधारण को राशिफल और कर्मफल बतलाने का काम सम्पन्न किया करते थे, जिनको यावनी गाथा के आधार पर बनाया गया था और जिस काम के लिए उन्हें एक अच्छी राशि मिला करती थी। कुल मिला कर समाज में विभिन्न जातियों के लोग रहते थे और उनमें छोटी–बड़ी बातों पर जब–तब कलहें भी होती रहती थीं।

1.5.3.4 स्वयं जांच अभ्यास

1.	'बाणभट्ट की आत्मकथा' उपन्यास के सांस्कृतिक महत्व पर प्रकाश डालें।
	.....
	.....
	.....

1.5.4 सारांश

इस उपन्यास का प्रमुख उद्देश्य संस्कृत के महाकवि बाणभट्ट के चरित्रा के माध्यम से नारी मात्रा की महिमा को स्थापित करते हुए उनके आश्रयदाता नरेश हर्षवर्धन के काल की आर्थिक, दार्शनिक, धार्मिक, नैतिक, राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों का भी उरेहन करना है। विद्वान् लेखक आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ने भारतवासियों को स्वदेश के अतीतकालीन सभ्यता और सांस्कृतिक गौरव की स्मृति दिलाने और अपने देश की वर्तमान समस्याओं को अतीत के दर्पण में प्रतिबिम्बित करने के लक्ष्य से इस महान् ऐतिहासिक और सांस्कृतिक उपन्यास की रचना की है। इसके कथा–शिल्प में जीवनी और आत्मकथा दोनों ही विधाओं का ऐसा सुन्दर समन्वय हुआ है कि समीक्षक इसके कथाशिल्प के लिए **एक नई परिभाषा** की ही आवश्यकता अनुभव करते हैं। प्रस्तुत पाठ में इस उपन्यास से मिलने वाले प्रमुख सन्देशों का रेखांकन करने का भी प्रयास किया गया है।

1.5.5 शब्दावली

उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में संस्कृत के कुछ तत्सम शब्द और उनके आगे कोष्ठकों में सरल शब्दों में उनके अर्थ लिखे जा रहे हैं :– यथा अप्रचलित और प्रचलित दोनों ही प्रकार के शब्द हैं। यथा **स्मयमान** (अर्थ मुस्कराते हुए), **आलक्तक–रस** (महावर), **वराटक** (कौड़ी), **तिष्करिणियाँ** (पर्दे), **सौगन्धिक पुटिका** (इत्रादान), **कुट्टिम** (संगमर्मर), **प्रच्छदपट** (चादर), **अंशुकांत** (आंचल), **धारायन्त्रा** (फव्वारा), **न्यग्रोध** (बरगद का पेड़), **कम्मलेक** (ऊँट), **पतद्ग्रह** (पीकदान) इत्यादि।

तद्भव और देशज शब्दों का भी यत्रातत्रा प्रयोग हुआ है, जो संस्कृत के तत्सम शब्दों की सभा के बीच नगीनों से चमक रहे होते हैं यथा **कनाबड़ा, किवाड़, जबड़े, पगहा, भरती, उलीचना, खली, निउनिया, हथियाना, भटकान, दुतल्ला** इत्यादि।

हिन्दी से इतर भाषाओं के शब्दों की भी बहार देखी जा सकती है यथा अंग्रेज़ी शब्द **फुटनोट,** अरबी शब्द यथा **फुरसत, शामिल, लायक, मुश्किल, सिवा, गरीब, सिर्फ़, साफ़, इशारे, बेतरह** फ़ारसी शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं यथा **होश, बेकार, शर्म, बेहोश, कोशिश, परवा, दरवाज़े, देर, ज़िंदगी**इत्यादि। कन्नौजी बोली के शब्दों में क्षीबा शब्द है और अपभ्रंश भाषा के शब्दों में **अज्ज** जैसे एकाध शब्द का ही प्रयोग हुआ है। ऐसे शब्द विरल ही हैं।

1.5.6 प्रश्नावली

प्रश्न 1. 'सभ्यता' और 'संस्कृति' का अन्तर उदाहरण–सहित स्पष्ट करें।

उत्तर : सभ्यता और संस्कृति में एक सूक्ष्म–सा अन्तर किया गया है। मानव के बाहरी विकास से सम्बन्धित खानपान, वेशभूषा, रहन–सहन आदि से सम्बन्धित उन आयामों का उपन्यास के आधार पर सोदाहरण चित्राण किया

जाता है, जिससे मानव के विकास का पता चलता है। उसके बाद उसके मन–मस्तिष्क और ज्ञान–विज्ञान के उन साधनों का सोदाहरण विवेचन करना अपेक्षित रहता है, जिससे से मानव मात्रा के आन्तरिक विकास के लक्षण उजागर होते हैं। **'सभ्यता'** में मानव के बाहरी विकास के चिह्नों को देखा जाता है। उदाहरणतः जब सड़कों, श्रृंगार के विभिन्न साधनों यथा कपड़ों, आभूषणों और प्रसाधन के लिप्सटिक, पाउउर आदि साधनों, सौन्दर्यवर्द्धक पदार्थों, मशीनों, कारीगरी के विभिन्न साधनों आदि का विकास होता है, तब वह मानव की सभ्यता के विकास का ही लक्षण हुआ करता है। इसके ठीक विपरीत जब मानव अपने मन और मस्तिष्क के विकास के लिए भावों और विचारों के धरातल पर विभिन्न कलाओं यथा काव्यकला, चित्राकला, संगीतकला, मूर्त्तिकला और स्थापत्य या भवन–निर्माणकला के साथ–साथ नाट्यकला, पाककला, युद्धकला आदि विभिन्न कलाओं के विकास के प्रयास करता है, तब उसकी संस्कृति का ही विकास होता है। उदाहरणतः महाकवि बिहारी के काल में न तो साहित्य की विविध विधाओं के लेखन के बाद उसे सुरक्षित रखने के लिए आज जैसी आलमारियों और छापेख़ाने की कला न थी और न ही एक दूसरे तक अपने भावों और विचारों के सम्प्रेषण के लिए विशेष सुखद सुविधायें थीं। कालान्तर में वैज्ञानिक प्रगति होने पर मुद्रणकला और संचार के साधनों का विकास होने पर मान व की सभ्यता की ही प्रगति मानी जाएगी। पुस्तकों को सँभाल कर रखने के लिए आलमारियों के अतिरिक्त उन्हें दीमको से होने वाली हानियों से बचाने के लिए वैज्ञानिक आविष्कारों ने भी सभ्यता का ही विकास किया है। इसके विपरीत आलमारियों आदि में जिन पुस्तकों आदि के रखा जाता है, शिक्षा से ही उनका सम्बन्ध होने के कारण उनकी गणना सदैव संस्कृति के ही अन्तर्गत की जाएगी। इसी प्रकार यदि फ़्लशसिस्टम के स्नानघर बनाना यदि सभ्यता की निशानी है, तो भवनों के निर्माणकला–विषयक ग्रन्थों का लेखन आदि संस्कृति के ही अन्तर्गत आएगा। इस प्रकार सभ्यता यदि मानव के बाहरी विकास में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है, तो संस्कृति के साधन उसके उस आन्तरिक विकास में अपना योगदान करते हैं, जो संस्कृति के विकास का ही क्षेत्रा कहा जाएगा।

प्रश्न 2. उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में सम्राट् हर्षवर्द्धन के काल के रहन-सहन पर सारगर्भित टिप्पणी करें।

उत्तर : हर्षकालीन समाज वर्ण–व्यवस्था के अनुसार चला करता था। जातियाँ कर्म की अपेक्षा जन्म से ही मानी जाती थीं। समाज में ब्राह्मणों का विशेष आदर–सत्कार किया जाता था। इसी के प्रमाणस्वरूप कुमारकृष्णवर्धन के प्रति कथानायक बाणभट्ट का यह साहसपूर्ण कथन प्रस्तुत है, "और ब्राह्मण पर तुम्हारा कोप व्यर्थ है। वह न भिखारी होता है, न महासंधिविग्रहिक। वह धर्म का व्यवस्थापक होता है।" यह और बात है कि स्वयं कुमार कृष्णवर्धन उसे **'भिक्षाजीवी'** के अपमानजनक विशेषण से पुकारता है।

समाज में **क्षत्रिाय जाति** का विशेष योगदान या भूमिका मानी जाती थी। इसमें राजन्य वर्ग से सम्बन्धित व्यक्ति अधिकतर अपनी शक्ति के मद में ही फूले रहते थे। कुमारवर्धन, हर्ष और स्वयं कथानायक बाण के परस्पर संवादों से इसी तथ्य की पुष्टि हो जाती है। कुछ राजकुमार तो अपने राजमद में अँधे ही हो रहे थे। छोटे–छोटे राजकुलों के उच्चपदाधिकारी भोग–विलास में लीन रहा करते थे और उनके अन्तःपुरों में दस्युओं के द्वारा अपहृत कन्याओं को न केवल करंकवाहिनियाँ और चामरधारिणियाँ बना कर उनसे रात–दिन काम लिया जाता था, अपितु उनसे वे अपनी कामवासना की भी तृप्ति किया करते थे। इस प्रकार राजप्रासादों में कामवासना की नदी बहा करती थी। जनसाधारणमन–ही–मन तो उनसे घोर घृणा और वितृष्णा करते थे, परन्तु प्रकट रूप में उनसे लाभान्वित होने के लिए उनकी चमचागीरी करने में आगे रहा करते थे। जिन लोगों पर राजसिक व्यक्तियों की कृपा–दृष्टि हो जाती थी, उनका सामाजिक और आर्थिक स्तर स्वाभाविक रूप से उठ जाया करता था और

वे उन्हीं के साथ पर्वोत्सवों आदि की रंगीनियों में मस्त होने लग जाते थे। उपन्यास में मदनश्री और चारुस्मिता नर्तकियाँ थीं और राजकुल से जुड़े होने के कारण उनकी आर्थिक स्थिति में धीरे–धीरे अच्छी होती जा रही थी। दूसरी ओर, भट्टिनी यद्यपि कुलीन घर–परिविार से सम्बन्ध रखती थी, तथापि परिस्थितिवश उसे सरलता का ही जीवन बिताना पड़ रहा था।

प्रश्न 3. उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में हर्ष और बाण के काल में लोगों की वेशभूषा के बारे में हमें क्या ज्ञान होता है ? स्पष्ट करें।

उत्तर : इस उपन्यास में पात्रों की वेशभूषा देशकाल और वातावरण के ही अनुरूप मिलती है। इससे सभ्यता के बाहरी रूप विशेष का यथार्थ हमारे सामने उभर कर आता है। कथानायक बाणभट्ट एक अवसर पर अपनी जिस वेशभूषा के धारण करने की बात कहता है, उससे उस काल के **ब्राह्मणों के वेश–विन्यास** का ही यथार्थ ज्ञान होता है। द्वाररक्षिणी या प्रतिहारिणी की वेशभूषा के विषय में ये वर्णन अवलोकनीय हैं :– 1. "हाथ में नंगी तलवार रहती थी और बाँईं ओर एक क्षुद्र कृपाण कोषबद्ध अवस्था में झूलती थी।

इसी प्रकार लेखक ने **गणिकाओं की यथार्थपरक वेशभूषा** और परिधान–विन्यास से उनके व्यावसायिक वर्ग के अनेक शब्दचित्रा मूर्तिमन्त करके रख दिए हैं। यथा कुछ उदाहरणों से इस तथ्य की भी पुष्टि हो जाती है कि आचार्य द्विवेदी भी जयशंकर प्रसाद की तरह से अपने पात्रों के परिधानों की कालपरकता और यथार्थता के प्रति विशेष रूप से जागरूक और सावधान लेखक के दायित्व–वहन का ही प्रमाण दिया करते हैं। ये उदाहरण उनके सम्बन्ध में देशकाल के ज्ञान और उसकी चरितार्थ की साहित्यिक पुष्टि कर रहे हैं :–1. "उसके चीनांशुक किनारों पर एक हल्की–सी लाली और लहर–सी डोल रही थी। इसी प्रकार समाज की अन्य **सामान्य युवतियों की वेशभूषा** पर लेखक की ये टिप्पणियाँ उपन्यास को तत्कालीन देश–काल और वातावरण को साकार करने में विशेष रूप से सहायक हुई हैं :–1."वे हाथों में मणिजटित चूड़ियाँ तथा पाँवों में नूपुर पहनती थीं।"

प्रश्न 4. उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' के आधार पर हर्ष के काल में उपलब्ध मनोरंजन के विविध साधनों के बारे में संक्षेप में जानकारी दें।

उत्तर : हर्ष के राजप्रशासन में राज्य की ओर से साधारण जनता के लिए विविध अवसरों और समारोहों में गणिकाओं और नर्तकियों के विशेष नृत्यों के आयोजनों की व्यवस्था की जाती थी। इसके अतिरिक्त अभिजात और राजसिक कुलों से सम्बन्ध रखने वाले राजकुमारों और सामन्तों के मनोरंजनों के लिए पाशों, द्यूत–क्रीड़ाओं, अन्त्याक्षरियों, मानसी प्रहेलिकाओं, अक्षर–च्युतकों, वीणाओं जैसे वाद्यों के वादन आदि की समुचित व्यवस्था की जाती थी। (उपन्यास, पृष्ठ 198)। इसके अतिरिक्त काव्य और शास्त्रों के शब्दों, पदों आदि की गूढ़ व्याख्याओं का आयोजन भी धार्मिक संगीतियों और संसदों में किया जाता था। इसके अतिरिक्त अन्यान्य मनोरंजन–विषयक साधनों से भी जनसाधारण का मनोविनोद होता रहता था। इसी प्रकार अन्य मनोरंजक साधनों में पुस्तकवाचन, मानसी काव्य–क्रिया, दुर्वाचक–योग, अक्षरमष्टिक, पद्मविन्दुमती जैसी कलापूर्ण क्रीड़ाओं और विद्याओं का भी प्रयोग किया जाता था।

प्रश्न 5. उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में हर्षवर्धन के काल में विभिन्न कलाओं में से किनके प्रचलन का उल्लेख मिलता है ? टिप्पणी करें।

उत्तर : इस उपन्यास में **काव्यकला** के अतिरिक्त **संगीतकला** और उसके भी अन्तर्गत आने वाली **नृत्यकला** के

विषय में लोगों की विशिष्ट रुचियों का ज्ञान होता है। जब सरस्वती मन्दिर में चारुस्मिता ने अपना मयूर नृत्य, जो उसने उससे पहले केवल राजपुरुषों की उपस्थिति में ही प्रदर्शित किया था, पहली बार प्रस्तुत किया, तो उस समय जनता का **नृत्यकला** के विषय में अनुराग छलका पड़ता था। प्रेक्षागार शिल्पजाल का अछूता नमूना बना हुआ था। शिल्पियों ने प्रेक्षकशाला को एक मोहक रूप दे रखा था। इसी प्रकार का मनमोहक वर्णन लेखक ने **होलिकोत्सव** का भी प्रस्तुत किया है। कुल मिला कर यह कहा जा सकता है कि उस काल में राजधानी स्थाण्वीश्वर कलाओं और मनोरंजन के अन्यान्य साधनों का अद्‌भुत केन्द्र बनी हुई थी। नारियाँ भी इन उत्सवों में न केवल मदिरापान करती थीं, अपितु अश्लील गीत तक गाने में कोई अनैतिकता या बुराई नहीं समझा करती थीं। गणिकायें प्रसन्नता के विभिन्न अवसरों पर अपने नृत्य–गान आदि के द्वारा जनसाधारण का भरपूर मनोरंजन किया करती थीं।

संस्कृति का सम्बन्ध किसी देश की कलाओं, काव्य–कला, चित्राकला, मूर्त्तिकला, संगीतकला और स्थापत्य या भवननिर्माण–कला के अतिरिक्त **नाट्यकला** आदि विभिन्न कलाओं से भी हुआ करता है। इस दृष्टि से हर्षवर्द्धन का काल बहुत समृद्ध था। आचार्य द्विवेदी ने इसे प्रदर्शित करने के लिए हर्षवर्द्धन द्वारा रचित **'रत्नावली' जैसी नाटिका** के मंचन आदि का विस्तार से वर्णन किया है और प्रसंगवश सुप्रसिद्ध नर्तकियों की नृत्यकला की ऐसी–ऐसी बातें लिखी हैं, जोकि महाकवि कालिदास–कृत नाटक **'मालविकाग्निमित्रां'** तक में मिल जाती हैं। नाटक के मंचन के समय समाज के धनी–मानी व्यक्ति और महापुरुष ही नहीं, स्वयं राजा तक सम्मिलित हो कर जनसाधारण का उत्साहवर्धन किया करते थे। राजा हर्षवर्धन के बारे में कहा गया है कि वह अपने द्वारा किए जाने वाले अन्यायों से जनता का ध्यान बँटाने के लिए ही नाटकों आदि का मंचन किया करते थे। सांस्कृतिक धरातल पर ही कलाओं के बाद विभिन्न प्रकार के ज्ञान–विज्ञानों और दर्शनशास्त्रा, नीतिशास्त्रा और धर्मशास्त्रा से सम्बद्ध प्रगति और विकास के विभिन्न आयामों का आया करता है। इस दृष्टि से अवश्य सम्राट् हर्षवर्द्धन के काल को एक स्वर्णिम काल कहा जा सकता है।

प्रश्न 6. उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में हर्षवर्धन के काल में विभिन्न ज्ञान-विज्ञानों और विद्याओं में से किनके प्रचलन का उल्लेख मिलता है ? टिप्पणी करें।

उत्तर : हर्ष के विवेच्य काल में लोग ज्योतिषशास्त्रा, तन्त्राविज्ञान, अन्त्याक्षरी, अक्षरमुष्टिक आदि विद्याओं के ज्ञान और उनसे जुड़े कार्य–व्यापारों में बढ़–चढ़ कर या तो स्वयं भाग लेते थे या फिर भाग लेने वालों के प्रदर्शनों आदि को बड़े चाव और उत्साह से देखा करते थे।

प्रश्न 7. उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में किन दार्शनिक स्थितियों के भी उल्लेख मिल जाते हैं, टिप्पणी करें ?

उत्तर : उपन्यास में आये नागरिकों की आस्था या तो बौद्ध धर्म में या फिा शैव धर्म में है। वे लोग बड़े तल्लीन हो कर अघोर भैरव की वार्ता सुनते हैं या वेंकटेश भट्ट के साथ आयोजन में एकत्रिात हो कर गाते–बजाते हैं। इसी आयोजन में वे प्रवचन करते और लोगों को दीक्षित भी करते हैं। वैष्णव धर्म सामाजिकों का धर्म है, जिसके कारण वे आचरण, पवित्राता और अवतार आदि में आस्था रखते हैं। इसी तरह लेखक कथा में दो जगह बौद्ध धर्म का भी संकेत आता है। एक स्थान पर बौद्ध विहार का चित्रा है, जहाँ आचार्यपाद सुगतभद्र नाम के भिक्षु धर्म की शिक्षा देते हैं। इस प्रकार "हर्ष के समय ही बौद्ध धर्म महायान से मन्त्रायान और मन्त्रायान से वज्रयान का जो विकास हुआ, उसमें औपतित रूप के साथ शाक्त और शैव मतों के तन्त्राविज्ञान का किस प्रकार समन्वय हुआ, वह एक दीर्घ परम्परा की कहानी है। 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में इन समस्त दार्शनिक सूत्रों की योजना की गई है।

प्रश्न 8. उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में निरूपित समाज में ब्राह्मण जाति की स्थिति पर सोदाहरण प्रकाश डालें।

उत्तर : ब्राह्मण जाति के लोग न केवल यजमानों के घरों में जा कर पुरोहित का धार्मिक कार्य किया करते थे, अपितु शास्त्राादि का अध्ययन और अध्यापन भी करते थे। उनके द्वारा आए दिन शास्त्रार्थ भी किए जाते थे। उनमें वे धार्मिक नियमों आदि की शास्त्रीय व्याख्यायें, मीमांसायें और विवेचनायें करते हुए अपनी व्यवस्था अर्थात् अपना अन्तिम निर्णय दिया करते थे। जो भी पण्डित शास्त्रार्थ में विजयी हुआ करता था, सम्राट् उसी का धर्म स्वीकार कर लिया करता था। चूँकि बौद्ध वसुभूति उडुपति से शास्त्रार्थ में पराजित हो गया था, इसीलिए सम्राट् ने बौद्ध धर्म त्याग कर वैष्णव धर्म अंगीकार कर लिया था। पण्डित जन फलित ज्योतिष, होरा शास्त्रा और प्रश्नशास्त्रा की धाक लोगों पर जमाए हुए थे। वे जनसाधारण को राशिफल और कर्मफल बतलाने का काम सम्पन्न किया करते थे, जिनको यावनी गाथा के आधार पर बनाया गया था और जिस काम के लिए उन्हें एक अच्छी राशि मिला करती थी। कुल मिला कर समाज में विभिन्न जातियों के लोग रहते थे और उनमें छोटी–बड़ी बातों पर कलहें भी होती रहती थीं।

1.5.7 सहायक पुस्तकें

1. डॉ॰ सत्यपाल चुघ, 'प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों की शिल्पविधि' (दिल्ली, प्रथम संस्करण सन् 1967)
2. महेशचन्द्र भारतीय, 'बाणभट्ट और उनका हर्षचरित' (प्रथम संस्करण)
3. डॉ॰ शशिभूषण सिंहल, 'यात्राा–गाथा'(प्रथम संस्करण)
4. डॉ॰ त्रिभुवनसिंह, 'उपन्यासकार हज़ारी प्रसाद द्विवेदी' (वाराणसी, प्रथम संस्करण)
5. डॉ॰ हरमोहन लाल सूद, 'हज़ारी प्रसाद द्विवेदी का सर्जनात्मक साहित्य' (दिल्ली–94, निर्मल पब्लिकेशन, सन् 1998)
6. डॉ॰ मीरा मिश्रा, 'उपन्यासकार हज़ारी प्रसाद द्विवेदी : ऐतिहासिक सन्दर्भ और आधुनिक बोध' (वाराणसी, विजय प्रकाशन मन्दिर, बी॰ 21/76, कमच्छा, प्रथम संस्करण गंगा दशहरा सन् 1993 ई.)
7. डॉ॰ यश गुलाटी, 'प्रतिनिधि हिन्दी उपन्यास' (चण्डीगढ़, हरियाणा साहित्य अकादमी, प्रथम संस्करण सन् 1989)
8. डॉ॰ कृष्ण भावुक, 'हिन्दी साहित्य का प्रामाणिक इतिहास' (पटियाला, पेप्सु बुक डिपो, संस्करण वर्तमान वर्ष)
9. संपादक डॉ॰ शिवप्रसाद सिंह, आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी : 'शान्तिनिकेतन से शिवालिक तक'
10. आचार्य हज़ारीप्रसाद द्विवेदी, निबन्ध–संग्रह 'कल्पलता'
11. नरेन्द्र कोहली, 'हिन्दी उपन्यास : सृजन और सिद्धान्त' (दिल्ली, सौरभ प्रकाशन, प्रथम संस्करण सन् 1979)
12. हज़ारीप्रसाद द्विवेदी–ग्रन्थावली, भाग 10. (नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण)

'बाणभट्ट की आत्मकथा' में नारी–मुक्ति का सन्देश

पाठ की रूपरेखा :

1.6.0 उद्देश्य

1.6.1 भूमिका

1.6.2 नारी–मुक्ति का सन्देश

1.6.2.1 भारतीय संस्कृति में बन्धन का महत्त्व

1.6.2.2 भारतीय संस्कृति में नारी का महिमागान

1.6.2.3 वर्तमान युग में नारी की मुक्ति का महत्त्व

1.6.2.4 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में नारी–मुक्ति के प्रसंग और लेखकीय विचार

1.6.2.5 पृथ्वी शोषित नारी की और बाणभट्ट उसके उद्धारक 'महावराह' का प्रतीक

1.6.2.6 स्वयं जांच अभ्यास

1.6.3 सारांश

1.6.4 शब्दावली

1.6.5 प्रश्नावली

1.6.6 सहायक पुस्तकें :

1.6.0 उद्देश्य

इस छठे पाठ का उद्देश्य आचार्य हज़ारीप्रसाद द्विवेदी के समीक्ष्य उपन्यास **'बाणभट्ट की आत्मकथा'** में उनके द्वारा कथानायक बाण और उसके आश्रयदाता राजा हर्षवर्द्धन के काल में नारी जाति की दुर्दशा, दयनीयता और दीनहीन स्थिति का चित्राण करते हुए भारतीय संस्कृति के अनुसार नारी की महिमा और स्वातन्त्रय चेतना को देशवासियों को पुनः स्मरण कराना ही है। चूँकि वर्तमान भारत और शेष देशों में भी वे सभी अधिकार प्राप्त नहीं हो पाए हैं, जिनकी एक नारी अधिकारी रही है, इसीलिए यह उपन्यास नारी–जागरण वाले अपने इस सन्देश और उद्देश्य के प्रतिपादन की दृष्टि से अपने प्रकाशन–काल अर्थात् सन् 1946 के लगभग 64 वर्ष बाद भी एक प्रासंगिक और समय–संगत कृति ठहरती है। इसमें कथानायक बाण और अन्य नारी पात्राों यथा **निपुणिका** और **महामाया** के द्वारा नारी मात्रा के सम्मान की रक्षा के लिए प्रयास किए गए लक्षित होते हैं। अतः उद्देश्य के प्रतिपादन की कसौटी

पर यह उपन्यास शत–प्रतिशत खरा और पूरा उतरता है। इसके अतिरिक्त राजा आदि शासक वर्ग द्वारा किए गए अत्याचारों और अन्यायों के विरुद्ध जनसाधारण द्वारा विद्रोह करना, अपने अधिकारों की प्राप्ति के लिए प्रयास करना, भोगविलास वाले जीवन की अस्थिरता, जातिवादी बन्धनों का उन्मूलन आदि इस उपन्यास के गौण उद्देश्य ठहराए जा सकते हैं। समग्रतः प्रत्येक सशक्त और सफल रचना की ही तरह से यह उपन्यास भी एक सोद्देश्य उपन्यास कहा जा सकता है। इसमें 'इतिहास–रस' उत्पन्न करने के साथ–साथ सम्राट् हर्षवर्धन के काल की आर्थिक, दार्शनिक, धार्मिक, सामाजिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों को चित्रित करने के वर्तमान काल की समस्याओं को अतीत के पट पर दिखाने से यह उपन्यास आज भी प्रासंगिक और समय–संगत हो गया है।

1.6.1 भूमिका

इससे पिछले पाठों में आचार्य द्विवेदी की कृति 'बाणभट्ट की आत्मकथा' के 'आत्मकथा' या 'उपन्यास' होने, न होने के सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों के विचारों पर प्रकाश डाला जा चुका है। इसके साथ ही इस उपन्यास को सोद्देश्य ठहारने के लिए इसमें निरूपित विविध प्रमुख और गौण उद्देश्यों के चरितार्थ होने का भी विस्तार से विवेचन किया जा चुका है। उसी विवेचन में आचार्य द्विवेदी द्वारा उपन्यास में कथानायक बाण और कुछेक अन्य नारी–पात्राों द्वारा हमारे देश में उस काल में आज ही की तरह से नारी–जाति का दमन, शोषण आदि करने के प्रति सहानुभूति जगाने की आवश्यकता को भी रेखांकित किया गया है। यहाँ उपन्यास के सन्दर्भ में विशेष रूप से नारी की उसी मुक्ति का विवेचन और विश्लेषण करते हुए उपन्यास के सन्दर्भ में विभिन्न घटनाओं, स्थितियों, क्रिया–कलापों, पात्राों के निजी कथन और लेखक के निजी विचारों के प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से प्रकाशन के सम्बन्ध में समीक्षात्मक अध्ययन प्रस्तुत करना ही अभीष्ट है।

1.6.2 नारी–मुक्ति का सन्देश

जैसा कि स्पष्ट किया जा चुका है, यहाँ इस पाठ के अन्तर्गत नारी मात्रा के उस सर्वजागरण या मुक्ति पर विस्तार से विचार किया जाएगा, जिस पर आधुनिक काल में बहुत अधिक मौखिक और लिखित रूप से प्रयास किए जा चुके हैं, किए जा रहे हैं और आगे भविष्य में भी इसी प्रकार से होते रहने की पूरी सम्भावना है। यहाँ पहले अपने देश की महती और भव्य मानी जाने वाली संस्कृति के अन्तर्गत जीवन में उच्छृंखलता और निरंकुशता से बचने–बचाने के लिए मानव मात्रा के लिए कुछ नियमों और बन्धनों के पालन की आवश्यकता का प्रतिपादन किया जाएगा। उसके बाद अन्य सन्दर्भों, विशेषतः नारी–जाति पर लगे और लगाए गए बन्धनों से नये सन्दर्भों और आवश्यकताओं के दृष्टिगत मुक्ति या स्वतन्त्राता की सामयिक आवश्यकता पर विचार किया जाएगा। कहना न होगा, कि **दलित–विमर्श** की ही तरह से इसीलिए आजकल **नारी–विमर्श** का मुद्दा हिन्दी साहित्य में प्रधान हो गया है। यह अत्यन्त विस्मय और लेखकीय कौशल की ही बात है कि आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ने अपने उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' के माध्यम से आज के इसी ज्वलन्त मुद्दे को उठाया है और वैश्विक स्तर पर नारी मात्रा के साथ किए गए अन्यायों आदि की भरपाई करने का एक सफल और सार्थक प्रयास किया है।

1.6.2.1 भारतीय संस्कृति में बन्धन का महत्त्व :

जब हम भारतीय संस्कृति को विश्व के मानचित्रा पर रख कर इसकी मानवीय मूल्यों से जुड़ी हुई उपलब्धियों के सन्दर्भ में अन्य देशों से तुलना करते हैं, तो प्राचीन काल से ले कर आज तक अन्य अनेक उपलब्धियों की सूची में एक यह बात भी उभर कर आती है, कि हमारे ऋषियों–मुनियों ने मानव मात्रा के लिए पूर्ण स्वतन्त्राता और

उच्छृंखलता का समर्थन नहीं किया है, अपितु इसके ठीक विपरीत व्यक्ति के लिए शास्त्रीय नियमों, बन्धनों आदि के पूरी तरह से निर्वाह करने–कराने की नीति पर ही बल दिया है। इस दृष्टि से देखें, तो हमारी विश्वजनीन भारतीय संस्कृति जहाँ नियमों–बन्धनों की पुरज़ोर वकालत करती है, वहाँ पश्चिमी सभ्यता और संस्कृति अपेक्षाकृत स्वतन्त्राता या मुक्ति की नीति को ही सदैव अपनाने की बात करती नज़र आती है। अब इन दोनों नीतियों में कौन–सी नीति अपेक्षाकृत उत्तम ठहरती है, यह निर्णय तो विवाद का ही विषय हो सकता है। फिर भी महात्मा बुद्ध द्वारा जो मध्यम मार्ग (मज्झिम निकाय) अपनाया गया था, उसी के अनुसार हमें भी यही कहना चाहिए कि इस सन्दर्भ में हमें भी बीच ही का समझौतावादी मार्ग अपना कर यही कहना ठीक लगता है कि **बन्धन और स्वतन्त्राता** दोनों का ही अपने–अपने क्षेत्रा या प्रसंग में महत्त्व हो सकता है। आवश्यकता केवल समय, स्थान, अवसर और स्थिति–परिस्थिति के सन्दर्भ में बन्धन या स्वतन्त्राता का चुनाव करने की ही हुआ करती है। सार्त्रा के अस्तित्ववादी दर्शन में भी मानव के द्वारा चुनाव की स्वतन्त्राता पर बल दिया गया है।

डॉ॰ रामकुमार वर्मा का मत है कि **"नृत्य करता हुआ मनुष्य सुंदर, सुखी और आज़ाद मालूम होता है, किन्तु उसका सम्पूर्ण सौन्दर्य, सुख और आज़ादी इसी में है कि वह ताल और लय से बँधा रहे।"**

आत्मकथात्मक उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में लेखक ने भी कहीं यह मत व्यक्त किया है–"**बन्धन ही सौन्दर्य है, आत्मदमन ही सुरुचि है, बाधायें ही माधुर्य** ैह्न नहीं तो यह जीवन व्यर्थ का बोझ हो जाता। वास्तविकतायें नग्न रूप में प्रकट हो कर कुत्सित बन जाती हैं।...(उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा', पृष्ठ 280–281)। म्लेच्छ जाति में इसी संयम का अभाव है, आत्मनियन्त्राण की कमी है, उन्हें यही चाहिए। भारतीय समाज ने **बन्धन को सत्य मान कर** संसार को बहुत बड़ी चीज़ दी है।"(पृष्ठ 290)

वास्तव में यहाँ विद्वान् लेखक ने जीवन और जगत् में बन्धनों को 'आत्मसंयम' का ही पर्याय या समानार्थक मान कर इस सन्तुलित विचार की स्थापना की है, जिससे सभी बुद्धिजीवी सहमत होंगे। इस प्रकार हम यह भी कह सकते हैं कि जीवन में मुक्ति या स्वतन्त्राता की बात तो तभी आती है, जब कहीं किसी स्थल या प्रसंग में पहले ही अनिच्छित बन्धन चल रहे होते हैं और उनकी आड़ ले कर लोग किसी दूसरे एक या अनेक व्यक्तियों या किसी भी जाति या समूह के विरुद्ध अन्याय और अत्याचार या शोषण की अनचाही प्रक्रिया जारी रखे हुए हों। अतः बन्धनों के अनावश्यक अनुभव करने के बाद ही स्वतन्त्राता की प्राप्ति की कामना अस्तित्व में आया करती है। भारत देश भी लगभग 300 वर्षों की ब्रिटिश शासन की पराधीनता और एक सुदीर्घ संघर्ष भोगने के बाद 15 अगस्त सन् 1947 के शुभ दिवस पर स्वतन्त्रा हो गया था। उस पराधीनता को हम अनचाहे बन्धनों के रूप में समझते आए हैं। अतः बन्धनों के बाद ही उनसे मुक्ति का कार्य हमारे सामने आया करता है। अतः बन्धनों के स्वरूप, आवश्यकता–अनावश्यकता, सारता–असारता आदि बातों पर भी खुल कर विचार–विमर्श होना या किया जाना आज के समय की एक ज्वलन्त माँग ठहराई जा सकती है।

1.6.2.2 भारतीय संस्कृति में नारी का महिमा–गान :

हमारे देश की महती संस्कृति की विजय–पताका पूरे विश्व भर में फहरती रही है और ऐसी आशा है कि यह आगे भी फहरती रहेगी। 'मनुस्मृति' हमारे देश में अर्थशास्त्रा, धर्मशास्त्रा, नीतिशास्त्रा और राजनीतिशास्त्रा का एक महान् ग्रन्थ स्वीकार किया जाता रहा है। उसी में महर्षि मनु ने यह घोषित किया है कि **'यत्रा नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्रा देवताः'**–अर्थात् जहाँ नारियाँ पूजी जाती हैं, वहाँ देवता रहा करते हैं। वैश्वीकरण के वर्तमान युग में भी यह घोषणा सत्य और सनातन महत्त्व की ही कही जाएगी। यदि ऐसा न होता, तो पश्चिमी देशों में ही सबसे पहले वैज्ञानिकता, वैज्ञानिक सोच और चिन्तन तथा शैक्षिक प्रगति आदि के आलोक में **'नारी–स्वतन्त्राता'** (विम्मैन

लिब Women Lib) का महान् आन्दोलन पिछली शताब्दी में इतने ज़ोर–शोर से न चलाया गया होता। कहने का आशय यही है कि परिवार में पति के सन्दर्भ में उत्तमार्द्ध माने जाने पर भी पत्नी के प्रति जो दुर्व्यवहार, पक्षपात, दुराग्रह आदि के भाव पुरुषों, पतियों, पिताओं, पुत्रों, भाइयों, स्वामियों आदि के द्वारा प्रकट किए जाते रहे हैं, वे एकदम अनुचित हैं, क्योंकि संविधान भी नर और नारी को कामकाज आदि में एक–सी समानता के अधिकार देता आया है और ये अधिकार यदि किसी भी क्षेत्रा में कार्य कर रही नारी को किसी ज्ञात–अज्ञात कारण से नहीं दिए जाते हैं, तो उसे उनको पाने और उनकी माँग करके की पूरी छूट आज के स्वतन्त्रा और आधुनिक सोच वाले संसार में सदैव वैध (जायज) ठहराई जाएगी।

डॉ॰ मीरा मिश्रा लिखती हैं, "सामाजिक संरचना में द्विवेदी जी पुरुष से अधिक नारी पर विशेष रूप से दायित्व डालना चाहते हैं। द्विवेदी जी का मत था कि स्वस्थ एवं शान्त सामाजिक व्यवस्था की सृष्टि के लिए पुरुष की स्वच्छन्द कृतियों पर अंकुश लगाने का कार्य नारी का है। नारी की जिस पहचान को द्विवेदी जी उभारना चाहते हैं, उसमें जागरूकता उसमें प्रथम सीढ़ी है, जिसके द्वारा वहाँ वह पुरुष को नियन्त्रित करती है, वहीं समय पड़ने पर उसे अपने वैयक्तिक सुखों को त्याग कर पुरुष को मोह–बन्धन से मुक्त कर कर्त्तव्य–पथ की ओर बढ़ने की प्रेरणा देती है। इस बात की सिद्धि उपन्यास के इन वाक्यों से होती है, "उसकी सफलता पुरुष को बाँधने में है, किन्तु **सार्थकता पुरुष की मुक्ति में है।** –(उपन्यास, पृष्ठ 88)

डॉ॰ रामदरश मिश्र इसी सन्दर्भ में कथानायक बाणभट्ट की भूमिका को रेखांकित करते हुए कहते हैं, "भट्टिनी जैसी महीयसी और अपूर्व सुन्दरी का उद्धारक और अभिभावक होने का उसे गौरव प्राप्त होता है और भट्टिनी के राग का आभास भी उसे मिलता रहता है, किन्तु वहाँ भी वह अपूर्व आत्मसंयम से काम लेता है। वह भट्टिनी के सौन्दर्य और व्यक्तित्व के बारे में जब सोचता है, तो लगता है उसके मन में **प्रेम नहीं, उपासना का भाव** पैदा हो गया है। वह भट्टिनी के जीवन और मान–मर्यादा की रक्षा के लिए मर मिट सकता है, क्यों ? क्या इसलिए कि वह प्रेम के चालू मुहावरे में उस पर जान देता है ? नहीं, वह जान तो देता है, किन्तु भट्टिनी को अपनाने के लिए नहीं, उसे **मुक्त रखने के लिए।** भट्टिनी सामन्ती व्यवस्था की कुरूपता की शिकार है, उसमें क़ैद है। बाण इस महीयसी को उससे मुक्त करना चाहता है और इस मुक्ति के प्रयास के पीछे बाण का सामाजिक मूल्य–बोध तो है ही, उसके व्यक्तित्व का प्रभाव भी है।"(ग्रन्थ 'हिन्दी उपन्यास : एक अन्तर्यात्राा' (नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, तीसरा संस्करण सन् 2001), पृष्ठ 211.

इस उपन्यास में नारी को विश्व के लिए **एक शक्ति और देवी के रूप** में देखने–दिखाने और प्रस्तुत करके उसका सही मूल्यांकन करने की आवश्यकता को बार–बार दोहराया गया है। श्री राजेन्द्र मोहन भटनागर के अनुसार इस उपन्यास के लेखक ने "नारी–शक्ति को सँवारा व सजाया है। प्रेमिका के रूप में निपुणिका तथा भट्टिनी, पत्नी के रूप में सुचरिता, संन्यासी के रूप में महामाया और गणिका के रूप में मदनश्री को स्वस्थ तथा उच्च धरातल पर प्रस्तुत किया गया है। नारी–शक्ति के लिए प्रस्तुत उपन्यास संघर्ष–रत रहा है। प्रेमिका–रूप में द्विवेदी जी ने यह बतला दिया है कि वह कितना विशुद्ध, उच्च तथा सम्भव हो सकता है। उसमें आज की वासना–दुर्गन्ध की कीचड़ है। उसका अभुक्त प्रेम है, वासना–विचार की दुर्गन्ध से परे। पत्नी–रूप में सुचरिता को पेश कर यह दिखलाया है कि यदि पति संन्यासी हो जाए, तो पुनः किस प्रकार नारी–धर्म की रक्षा करते हुए **गृहस्थाश्रम में संन्यास–धर्म का पालन** किया जा सकता है। इसके साथ ही यह बात भी है कि शादीशुदा आदमी को घर छोड़ कर नहीं जाना चाहिए। उसे गृहस्थ में रह कर भी पत्नी के सहयोग से वह स्थिति प्राप्त हो सकती है, जो संन्यासी होने पर भी उसे प्राप्त नहीं हो सकती है। संन्यासिनी–रूप में महामाया को दरसा कर यह साबित किया है कि स्त्रियाँ परकोटों की चारदीवारी से बाहर रह सकती हैं, वे कमज़ोर नहीं हैं। वे अपनी महत् सत्ता व

शक्ति का प्रकाशन प्रासाद से बाहर निकल कर बड़े सुंदर ढंग से प्रदर्शित कर सकती हैं। **नारी वज्र से भी कठोर है और फूल से भी अधिक कोमल** यह बात उसे चरित्रा से स्पष्ट हो जाती है।((ग्रन्थ ''बाणभट्ट की आत्मकथा' : एक अध्ययन', पृष्ठ 260)।

पौराणिक रामकथा में श्री जनक जैसे नरेश भी गृहस्थाश्रम में रहते और उस आश्रम धर्म का पूर्ण रूप से पालन करते हुए भी संन्यासाश्रम के नियमों का निर्वाह किया करते थे, जोकि प्राचीन धार्मिक और सामाजिक इतिहास में अपने ढंग का एक विरल और भव्य उदाहरण है। इससे हमारे ऋषियों–मुनियों की उदारतावादी सोच का ही प्रमाण मिलता है। ठीक यही सन्देश प्रस्तुत उपन्यास में आचार्य द्विवेदी सुचरिता के चरित्रा के निरूपण के माध्यम से देना चाहते हैं और इस प्रकार वे वैश्विक धरातल पर नारी की महती भूमिका को भी रेखांकित करते हैं।

आचार्य द्विवेदी के विषय में डॉ॰ यश गुलाटी का भी यह वक्तव्य द्रष्टव्य है, "विधि–निषेधमूलक कठोर नियमों, सामाजिक वर्जनाओं और पाप के भय के बल पर नारी के संसर्ग को हेय और त्याज्य ठहराने की कोशिशों का वे घोर विरोध करते हैं। उनकी दृष्टि में नारीहीन तपस्या संसार की एक हेय बात है। वे कहते हैं, "नारीहीन तपस्या संसार की भद्दी भूल है। वह धर्म–कर्म का विशाल आयोजन, सैन्य संगठन और राज्य–व्यवस्थापन सब फेन बुद्बुद की भाँति विलुप्त हो जाएँगे, क्योंकि नारी का इसमें **सहयोग** नहीं है। यह सारा ठाट–बाट संसार में केवल अशान्ति पैदा करेगा"।

–(उपन्यास, पृष्ठ 147)।

डॉ॰ यश गुलाटी का मत है कि "प्रत्येक मानवीय प्रयास में **नारी–सहयोग की अनिवार्यता** पर दिए जाने वाले इस बल के पीछे उनका तर्क यह है कि पुरुष में निर्मर्याद महत्त्वाकांक्षा होती है, जो उसे राज्य–गठन, सैन्य–संचालन, मठ–स्थापन के योग्य तो बनाती है, किन्तु साथ ही उसकी उपलब्धियों को स्थायी बनाने और उनको लोक–कल्याणकारी रूप देने की क्षमता से वंचित भी कर देती है।" (ग्रन्थ 'प्रतिनिधि हिन्दी उपन्यास', पृष्ठ 65)।

स्वयं आचार्य द्विवेदी ने अपने इस उपन्यास में कहा है, "राज्य–गठन, सैन्य–संचालन, मठ–स्थापन और निर्जन–वास पुरुष की समताहीन, मर्यादाहीन, शृंखलाहीन महत्त्वाकांक्षा के परिणाम हैं। इनको नियन्त्रित कर सकने की एक मात्रा शक्ति नारी है।.....इतिहास साक्षी है कि इस महिमामयी शक्ति की उपेक्षा करने वाले साम्राज्य नष्ट हो गए हैं। ज्ञान और वैराग्य के जंजाल फेन–बुद्बुद की भाँति क्षण भर में विलुप्त हो गये हैं।"

–(उपन्यास, पृष्ठ 112)।

इसी प्रकार आचार्य जीने इस विश्व में पुरुष के सन्दर्भ में नारी की भूमिका को **निषेध–रूप वाली** ही ठहराया है। वे कहते हैं, "न सरले, यह जड़ मांस–पिंड न नारी है, न पुरुष। वह **निषेध–रूप तत्त्व** नारी है। निषेधरूप तत्त्व याद रख ! जहाँ कहीं अपने आप को उत्सर्ग करने की, अपने आप को खपा देने की भावना प्रधान है, वहीं नारी है। जहाँ कहीं दुःख–सुख की लाख–लाख धाराओं में अपने आपको दलित द्राक्षा के समान निचोड़ कर दूसरे को तृप्त करने की भावना प्रबल है, वहीं नारी–तत्त्व है। वह आनन्द–भोग के लिए नहीं आती, आनन्द लुटाने के लिए आती है। आज के धर्म–कर्म के आयोजन, सैन्य संगठन और राज्य–विस्तार विधि–रूप हैं...वे फेन–बुद्बुद की भाँति अनित्य हैं...उनमें अपने आपको दूसरों पर मिटा देने की भावना जब तक नहीं आती, तब तक वे ऐसे ही रहेंगे।"

–(उपन्यास, पृष्ठ 148)।

इस प्रकार नारी अपने द्वारा पग–पग पर किए जाने वाले आत्मोत्सर्ग के कारण ही पुरुष से अलग जा खड़ी होती है। पुरुष मात्रा उसी की दैहिक दुर्बलताओं, सीमाओं और समर्पणशीलता आदि के स्वभाव के कारण उसका शोषण करता चला आया है। अब समय आ गया है, कि पुरुष और अपनी ही जाति की नारियों द्वारा नारी मात्रा के उद्धार की चेष्टायें करनी चाहियें, तभी जा कर अतीत में उस पर किए गए निरन्तर अन्यायों आदि की भरपाई या क्षतिपूर्त्ति

सम्भव हो पायेगी, अन्यथा आज ही की तरह से उसका शोषण आगे भविष्य में भी चलता रहेगा।

1.6.2.4 नारी की दुर्दशा, दीनहीन अवस्था के प्रति करुणा और आक्रोश :

प्रस्तुत उपन्यास में सम्राट् हर्षवर्द्धन के काल में **दास–प्रथा** के प्रचलन का प्रमाण इस बात से मिलता है कि कुछ दस्यु जन राजकुल से सम्बन्ध रखने वाली चन्ददीधीति नाम की भट्टिनी का अपहरण कर लेते हैं और जा कर राजकुल में उसे बेच देते हैं, जहाँ वह एक विवश बन्दिनी का–सा जीवन जीने के लिए अभिशप्त हो जाती है। बाण आ कर उसी का उद्धार करता है। उस जैसी असहाय नारियों के क्रय–विक्रय की ओर संकेत करते हुए महामाया विद्रोह का प्रबल स्वर उठाती हुई कहती है कि "आर्य सभासदो ! क्या इन अभागिनियों के पिता नहीं थे ? क्या वे अपनी माताओं की नयन–तारा नहीं थीं ? क्या उनके माँ–बाप के हृदय में अपनी सन्तति के प्रति जो स्नेह–भावना थी, वह किसी सम्राट् की स्नेह–भावना से कम थी ? धिक्कार है सभासदो, जो उत्तरापथ के विद्वान् और शीलवान् नागरिक इन राजाओं का मुँह जोह रहे हैं ?"

उपन्यास में प्रायः **नारी मात्रा का भोग्या–रूप** ही उजागर हुआ है। लेखक के अनुसार उसका जन्म अपनी किसी सार्थकता के लिए नहीं हुआ है (पृष्ठ 109), वह केवल पुरुष की भोगेच्छा की तृप्ति के लिए ही होता है। वह रानी के रूप में रहे या फिर किसी दासी करंकवाहिनी या चामरधारिणी के रूप में जीए, उसकी अपनी इच्छा–अनिच्छा का कोई भी मूल्य पुरुष की दृष्टि में कभी होता ही नहीं है। राजाओं और सामन्तों के अन्तःपुर एक ओर निर्यातित वधुओं के करुण–क्रन्दनों से भरे पड़े हैं, तो दूसरी ओर, दासियों के रूप में भगाई हुई नारियों और निरीह बहुओं और बेटियों के झुँड वहाँ पर मिल जाते हैं। (वही, पृष्ठ 193)

उपन्यास में एक अन्य स्थल पर यही **महामाया** राजमहलों में दमित, शोषित नारियों के पक्ष में स्वर बुलन्द करती हुई सभा में यह हुँकार करती दीखती है, "इस उत्तरापथ में लाख–लाख निरीह बहुओं और बेटियों के अपहरण और विक्रय का व्यवसाय क्या नहीं चल रहा है ? अगर देवपुत्रा तुवरमिलिन्द का हृदय थोड़ा भी संवेदनशील होता, तो आज से बहुत पहले उन्हें मूर्च्छित हो कर गिर पड़ना था। क्या निरीह प्रजा की बेटियाँ उनकी नयन–तारा नहीं हुआ करती हैं ? क्या राजा और सेनापति की बेटियों का खो जाना ही संसार की दुर्घटनाएँ हैं ? आप में से किसी को नहीं मालूम कि महाराजाधिराज की चामरधारिणियाँ और करंकवाहिनियाँ इसी प्रकार भगाई हुई और ख़रीदी हुई कन्याएँ हैं"?"

यहाँ राजमहलों में शोषण के चक्र में पिसने वाली दीनहीन नारियों के प्रति उसका निजी आक्रोश मानो लेखक के अपने ही विचारों का प्रतिनिधित्व करता प्रतीत होता है।

इसी सन्दर्भ में डॉ. यश गुलाटी की इस टिप्पणी से भी सहमत हुआ जा सकता है कि, "महामाया और उनकी भैरवियों के ऐसे प्रश्न **सामन्ती आचार–व्यवहार की वीभत्सता** पर पड़े हुए आवरण को छिन्न–भिन्न कर देते हैं। वे अन्याय, अत्याचार और अनाचार की पोषक व्यवस्था के अभिकर्त्ताओं या उनके वेतनभोगी सैनिकों से अपनी सुरक्षा की अपेक्षा करने अथवा इसके लिए किसी विशेष जाति का मुँह ताकने पर भी प्रश्न–चिह्न लगाती हैं।"–(उपन्यास, पृष्ठ 254–56) वास्तव में महामाया के मतानुसार तो प्रजा ने ही राजाओं की सृष्टि की है। आचार्य द्विवेदी ने अपने अन्य उपन्यासों की ही तरह से इसमें भी प्रजा को ही राजा की शक्ति के रूप में स्थापित करने की चेष्टा की है।

डॉ. रामदरश मिश्र के इस विचार में भी पर्याप्त बल है कि "उधर रूढ़िगत सोचबद्ध समाज और राजतन्त्रा सुचरिता और विरतिवज्र को लांछित और दंडित करना चाहता है। लेखक ने समाज द्वारा लांछित–शोषित स्त्रियों को एक **'शक्ति'** के रूप में उपस्थित कर एक ओर उनका सम्मान किया है, दूसरी ओर, पुरुषों की वैराग्यमूलक और स्त्री

के प्रति हीनतामूलक प्रवृत्ति का निषेध कर उनमें मानवधर्मी सोच का नियोजन किया है। **महामाया, सुचरिता, निउनिया (निपुणिका)** और **भट्टिनी** ये सभी सताई हुई स्त्रियाँ हैं और सभी अपने–अपने ढंग से पुरुष की 'शक्ति' बनती हैं। विदेशियों से आक्रमण की आशंका के समय महामाया प्रजा को जगाती है, भट्टिनी अपने मान–अपमान को भूल कर राष्ट्र की एकता के लिए हर्षवर्धन के नगर में फिर लौटना स्वीकार करती है।

डॉ. मीरा मिश्रा ने यह सार्थक टिप्पणी की है, "द्विवेदी जी की दृष्टि में **पुरुष शिव–प्रधान तथा नारी अग्नि–प्रधान** है। वे पुरुष–स्त्री को दो तत्त्व मानते हैं, जिनकी सहजता से शिव सृष्टि की रचना करता है। दोनों में बाह्य अन्तर के आधार पर नारी को कमज़ोर समझने के पक्ष में नहीं हैं।"(उपन्यास, पृष्ठ 148) नारी को शक्ति के रूप में प्रतिष्ठित करना ही इस उपन्यास की रचना के प्रमुख उद्देश्यों में से एक माना जा सकता है।

1.6.2.5 पृथ्वी शोषित नारी की और बाणभट्ट उसके उद्धारक 'महावराह' का प्रतीक :

वास्तव में हमें ऐसा लगता है कि विद्वान् लेखक आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ने अपने इस उपन्यास के नायक बाणभट्ट को ही भगवान् महावराह के प्रतीक के रूप में संकेतित किया है। कहते हैं राजस्थान में उदयपुर के पास एक गुहा में भगवान् महावराह की वह मूर्त्ति खड़ी है, जिसके खण्डित रूप में भगवान् शूकर के अवतार में अपनी भुजाओं पर पृथ्वी को उठाये हुए हैं, मानो वे उसका उद्धार कर रहे हों। डॉ. मीरा मिश्रा ने उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' के सन्दर्भ में अपनी यह बहुमूल्य सम्मति दी है कि, "उपन्यास में महावराह स्पन्दन–चेतना का प्रतीक है। एक ओर, वह अटूट श्रद्धा का प्रतीक है, जो सचराचर जल में मग्न है, उनका उद्धार करने में समर्थ है; दूसरी ओर, वह मनुष्य की निमित्तता और अकिंचनता का बोध कराता है। उपन्यास में सर्वत्रा धरतीस्वरूपा **नारी** है और जो अपनी नाटकीय परिस्थितियों में **महावराह की प्रतीक्षा** करती नज़र आती है। नरक में पड़ी पृथ्वी का उद्धार महावराह ने जिस प्रकार किया, उसी प्रकार पृथ्वी रूपी नारी का उद्धार महावराह रूपी पुरुष (बाणभट्ट) को करना होगा। इस तरह आत्मकथा का नायक भट्ट 'महावराह' का प्रतीक है, जिसने नरक रूपी छोटे–छोटे राजकुल में पड़ी पृथ्वी रूपी भट्टिनी का उद्धार किया है।"
–(उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा')

उपन्यास में भट्टिनी वैसे भी महावराह की पूजा किया करती है, जिससे जनता में भगवान् विष्णु के इस अवतार के प्रति विशेष श्रद्धा और सम्मान की ही भावनायें संकेतित होती हैं। उपन्यास में एक स्थल पर स्वयं कथानायक बाणभट्ट यह घोषित करता मिलता है, "मैंने एक भट्टिनी का उद्धार किया है सही, पर मुझे क्या मालूम कि इस अन्तःपुर में और कितनी भट्टिनियाँ हैं और ऐसे अन्तःपुरों की संख्या यहीं तो समाप्त नहीं हो जाती ?"
–(उपन्यास, पृष्ठ 94)

उपन्यास में निपुणिका एक साधारण वर्ग की ही नारी है। उसने भी समाज की दास–प्रथा जैसी कुप्रथाओं और रीतियों का अपने को शिकार बनते हुए स्वयं देखा और उसकी अथाह यातना और यन्त्राणा को पल–पल भोगा और अपने रोम–रोम से अनुभव भी किया है। वह भी कहती है, कि "मुझे इस योग्य बना दो कि मैं आप अपनी अग्नि में धधक कर समूचे जंजाल को भस्म कर दूँ.....नारी का जन्म पा कर केवल लाँघना, पाना ही सार नहीं है। तुम (भट्ट) ने ही मुझे आनन्द की ज्योतिष्कणिका दी थी, तुम्हीं ने मुझे तेज की चिनगारी दी।"
–(वही, पृष्ठ 208)

इस प्रकार इस उपन्यास में लेखक ने भगवान् महावराह के द्वारा पृथ्वी के जिस उद्धार करने के मिथकीय प्रतीक को उभारा गया है, वह प्रकारान्तर से मानो कथानायक भट्ट के द्वारा केवल नमूने के लिए अपने से प्रेम

करने वाली और राजकुल के छोटे–से घराने में बरसों से एक बन्दिनी का जीवन जीने वाली भट्टिनी को वहाँ से निकालने का उद्धार करके ऐसी ही अभिशप्त अन्य लाखों नारियों के उद्धार का महान् पथ प्रशस्त कर देता है।

1.6.2.6 स्वयं जांच अभ्यास

1. बाणभट्ट की आत्मकथा में नारी मुक्ति का सन्देश दिया गया है। वकतव्य को स्पष्ट करने हेतु अपने विचार व्यक्त करें।

.....

.....

.....

1.6.3 सारांश :

इस समीक्षा में नारी की मुक्ति का सन्देश देना भी इस विवेच्य ऐतिहासिक और सांस्कृतिक उपन्यास के रचनाकार आचार्य हज़ारी प्रसाद का एक मुख्य अभीष्ट या प्रतिपाद्य प्रतीत होता है। उपन्यासकार को अपने इस रचनात्मक उद्देश्य को चरितार्थ करने में पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है। पिछले विवेचन से यह तथ्य पूरी तरह से स्पष्ट रूप से उभर कर सामने आ गया है।

1.6.4 शब्दावली

इस उपन्यास में इसकी ऐतिहासिकता, ऐतिहासिक यथार्थ और सांस्कृतिक गरिमा को सुरक्षित करने के प्रयोजन से आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ने यत्रा–तत्रा अपनी भाषा को संस्कृत के तत्सम शब्दों से युक्त करने की ही युक्ति से काम लिया है। ये शब्द आगे दिए जा रहे हैं, साथ ही कोष्ठकों में उनके सरल अर्थ भी छात्राों की सुविधा के लिए दे दिए गए हैं। आशा है, छात्रा इन शब्दों को याद कर लेंगे और शब्द–कोशों को देख–देख कर ऐसे अन्य क्लिष्ट शब्दों के अर्थों का निश्चय करते हुए अपने ज्ञान को बढ़ाते रहेंगे। इससे उन्हें अवश्य लाभ होगा।

पांडुर, पृष्ठ 145 (पीला), **कृकल** 146 (गिरगिट, तीतर), **बुद्बुद,** 47 (बुलबुला), **तालपत्रा,** 46 (ताड़ के पत्ते), **वीचियों,** 94 (लहरियों), **निमज्जित**(डूबा हुआ), **अतुलनीय**, 147 (अनुपम, बेजोड़), **अन्तर्यामी** (हृदय के भीतर की बात जानने वाला), **शोण** (एक नदी का नाम), **सह** (हज़ार), **अन्तःस्फुरण** (हृदय के भीतर किसी बात का सूझना, सूझ), **प्रतिपादन**, 259 (स्थापन), **अनुग्रह**, 259 (कृपा), **कलाविद्**, 259 (कलाओं का ज्ञान, कलाकार), **उद्दीप्त**, 275, (उत्तेजित), **निरापद,** पृष्ठ 83 (किसी संकट या विपत्ति के बिना उससे रहित), **अर्द्धस्फुट,** 161 (आधा प्रकट या स्पष्ट होना), **साष्टांग प्रणिपात,** 275 (आठों अंगों से प्रणाम), **अविचलित** (बिना कोई कम्पन, डगमगाहट, हिल–डुल किए)।

1.6.5 प्रश्नावली

यहाँ इस पाठ से सम्बन्धित कुछ लघु प्रश्न और उनके उत्तर आगे दिए जा रहे हैं। छात्राों को चाहिए कि वे इनसे मिलते–जुलते प्रश्न बना कर उनके उत्तर पाठ का ध्यानपूर्वक अध्ययन करके स्वयं ही तैयार करके अभ्यास करते रहें। ऐसा करने से उन्हें निश्चित ही बहुत लाभ होगा और वे समीक्षात्मक प्रश्नों के भी उपयुक्त उत्तर दे सकेंगे।

प्रश्न 1. उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' **में नारी की मुक्ति के सम्बन्ध में लेखक ने कौन–सा सन्देश दिया है ?**

उत्तर : उपन्यास में पहले अपने देश की महती और भव्य मानी जाने वाली संस्कृति के अन्तर्गत जीवन में उच्छृंखलता और निरंकुशता से बचने–बचाने के लिए मानव मात्रा के लिए कुछ नियमों और बन्धनों के पालन की आवश्यकता का प्रतिपादन किया गया है। उसके बाद अन्य सन्दर्भों, विशेषतः नारी जाति पर लगे और लगाए गए बन्धनों से नये सन्दर्भों और आवश्यकताओं के दृष्टिगत मुक्ति या स्वतन्त्राता की सामयिक आवश्यकता पर विचार हुआ है। कहना न होगा, कि **दलित–विमर्श** की ही तरह से इसीलिए आजकल **नारी–विमर्श** का मुद्दा हिन्दी साहित्य में प्रधान हो गया है। यह अत्यन्त विस्मय और लेखकीय कौशल की ही बात है कि आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ने अपने उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' के माध्यम से आज के इसी ज्वलन्त मुद्दे को उठाया है और वैश्विक स्तर पर नारी मात्रा के साथ किए गए अन्यायों आदि की भरपाई करने का एक सफल और सार्थक प्रयास किया है।

प्रश्न 2. उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में भारतीय संस्कृति में पूर्ण स्वतन्त्राता की अपेक्षा बन्धनों का महत्त्व किस प्रकार बताया गया है, स्पष्ट करें ?

उत्तर : हमारे ऋषियों–मुनियों ने मानव मात्रा के लिए पूर्ण स्वतन्त्राता और उच्छृंखला का समर्थन नहीं किया है, अपितु इसके ठीक विपरीत व्यक्ति के लिए शास्त्राीय नियमों, बन्धनों आदि के पूरी तरह से निर्वाह करने–कराने की नीति पर ही बल दिया है। इस दृष्टि से देखें, तो हमारी विश्वजनीन भारतीय संस्कृति जहाँ नियमों–बन्धनों की पुरज़ोर वकालत करती है, वहाँ पश्चिमी सभ्यता और संस्कृति अपेक्षाकृत स्वतन्त्राता या मुक्ति की नीति को ही सदैव अपनाने की बात करती नज़र आती है। अब इन दोनों नीतियों में कौन–सी नीति अपेक्षाकृत उत्तम ठहरती है, यह निर्णय तो विवाद का ही विषय हो सकता है। फिर भी महात्मा बुद्ध द्वारा जो मध्यम मार्ग (मज्झिम निकाय) अपनाया गया था, उसी के अनुसार हमें भी यही कहना चाहिए कि इस सन्दर्भ में हमें भी समझौतावादी बीच ही का मार्ग अपना कर यही कहना ठीक लगता है कि बन्धन और स्वतन्त्राता दोनों का ही अपने–अपने खक्षेत्रा या प्रसंग में महत्त्व हो सकता है। आवश्यकता केवल समय, स्थान, अवसर और स्थिति–परिस्थिति के सन्दर्भ में बन्धन या स्वतन्त्राता का चुनाव करने की ही हुआ करती है।

प्रश्न 3. आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ने उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में किस प्रकार बन्धनों के महत्त्व का भी प्रतिपादन करने की चेष्टा की है, उन्हीं के शब्दों में व्यक्त करें ?

उत्तर : आत्मकथात्मक उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में लेखक ने भी कहीं यह मत व्यक्त किया है, 'बाणभट्ट की आत्मकथा' "बन्धन ही सौन्दर्य है, आत्मदमन ही सौन्दर्य है म्लेच्छ जाति में इसी संयम का अभाव है, आत्मनियन्त्राण की कमी है, उन्हें यही चाहिए। भारतीय समाज ने बन्धन को सत्य मान कर संसार को बहुत बड़ी चीज़ दी है।"–("उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा', पृष्ठ 290)। वास्तव में यहाँ विद्वान् लेखक ने जीवन और जगत् में बन्धनों को आत्मसंयम का ही पर्याय या समानार्थक मान कर इस सन्तुलित विचार की स्थापना की है, जिससे सभी बुद्धिजीवी सहमत होंगे। इस प्रकार हम यह भी कह सकते हैं कि जीवन में मुक्ति या स्वतन्त्राता की बात तो तभी आती है, जब कहीं किसी स्थल या प्रसंग में पहले ही अनिच्छित बन्धन चल रहे होते हैं और उनकी आड़ ले कर लोग किसी दूसरे एक या अनेक व्यक्तियों या किसी भी जाति या समूह के विरुद्ध अन्याय और अत्याचार या शोषण की अनचाही प्रक्रिया जारी रखे हुए हों। अतः बन्धनों के अनावश्यक अनुभव करने के बाद ही स्वतन्त्राता की प्राप्ति की कामना अस्तित्व में आया करती है। भारत देश भी लगभग 300 वर्षों की ब्रिटिश शासन की पराधीनता भोगने के बाद एक सुदीर्घ संघर्ष के बाद 15 अगस्त सन् 1947 के शुभ दिवस पर स्वतन्त्रा हो गया था। उस पराधीनता को हम अनचाहे बन्धनों के रूप में समझते आए हैं। अतःबन्धनों के बाद ही उनसे मुक्ति का कार्य

हमारे सामने आया करता है। अतः बन्धनों के स्वरूप, आवश्यकता–अनावश्यकता, सारता–सारहीनता आदि बातों पर भी खुल कर विचार–विमर्श होना या किया जाना आज के समय की एक ज्वलन्त माँग ठहराई जा सकती है।

प्रश्न 4 लेखक ने अपने उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में नारी को एक 'शक्ति' के रूप में कैसे प्रस्तुत किया है, इस बात की संक्षिप्त रूप में विवेचना करें ?

उत्तर : इस उपन्यास में नारी को विश्व के लिए **एक शक्ति और देवी** के रूप में देखने–दिखाने और प्रस्तुत करके उसका सही मूल्यांकन करने की आवश्यकता को बार–बार दोहराया गया है।` के अनुसार इस उपन्यास के लेखक ने "नारी–शक्ति को सँवारा व सजाया है। प्रेमिका के रूप में निपुणिका तथा भट्टिनी, पत्नी के रूप में सुचरिता, संन्यासी के रूपमें महामाया और गणिका के रूप में मदनश्री को स्वस्थ तथा उच्च धरातल पर प्रस्तुत किया गया है। नारी–शक्ति के लिए प्रस्तुत उपन्यास संघर्ष–रत रहा है। प्रेमिका–रूप में द्विवेदी जी ने यह बतला दिया है कि वह कितना विशुद्ध, उच्च तथा सम्भव हो सकता है। उसमें आज की वासना–दुर्गन्ध की कीचड़ है। उना अभुक्त प्रेम है, वासना–विचार की दुर्गन्ध से परे। पत्नी–रूप में सुचरिता को पेश कर यह दिखलाया है कि यदि पति संन्यासी हो जाए, तो पुनः किस प्रकार नारी–धर्म की रक्षा करते हुए गृहस्थाश्रम में संन्यास–धर्म का पालन किया जा सकता है। इसके साथ ही यह बात भी है कि शादीशुदा आदमी को घर छोड़ कर नहीं जाना चाहिए। उसे गृहस्थ में रह कर भी पत्नी के सहयोग से वह स्थिति प्राप्त हो सकती है, जो संन्यासी होने पर भी उसे प्राप्त नहीं हो सकती है। संन्यासिनी रूप में महामाया को दरसा कर यह साबित किया है कि स्त्रियाँ परकोटों की चारदीवारी से बाहर रह सकती हैं, वे कमज़ोर नहीं हैं। वे अपनी महत् सत्ता व शक्ति का प्रकाशन प्रासाद से बाहर निकल कर बड़े सुंदर ढंग से प्रदर्शित कर सकती हैं। नारी वज्र से भी कठोर है और फूल से भी अधिक कोमल, यह बात उसे चरित्रा से स्पष्ट हो जाती है।

प्रश्न 5. उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में लेखक ने नारी की जिस निषेध रूप वाली होने पर भी पुरुष को सहयोग देने वाली भूमिका निभाने की बात की है, उसका भावार्थ उदाहरण देते हुए समझाइये ?

उत्तर : विधि–निषेधमूलक कठोर नियमों, सामाजिक वर्जनाओं और पाप के भय के बल पर नारी के संसर्ग को हेय और त्याज्य ठहराने की कोशिशों का वे घोर विरोध करते हैं। उनकी दृष्टि में नारीहीन तपस्या संसार की एक व्यर्थ बात है। वे कहते हैं, "नारीहीन तपस्या संसार की भद्दी भूल है। वह धर्म–कर्म का विशाल आयोजन, सैन्य संगठन और राज्य–व्यवस्थापन सब फेन बुद्बुद की भाँति विलुप्त हो जाएँगे, क्योंकि नारी का इसमें **सहयोग** नहीं है। यह सारा ठाठ–बाठ संसार में केवल अशान्ति पैदा करेगा"–(उपन्यास, पृष्ठ 147)। प्रत्येक मानवीय प्रयास में नारी–सहयोग की अनिवार्यता पर दिए जाने वाले इस बल के पीछे उनका तर्क यह है कि पुरुष में निर्मर्याद महत्त्वाकांक्षा होती है, जो उसे राज्य–गठन, सैन्य–संचालन, मठ–स्थापन के योग्य तो बनाती है, किन्तु साथ ही उसकी उपलब्धियों को स्थायी बनाने और उनको लोक–कल्याणकारी रूप देने की क्षमता से वंचित भी कर देती है।" स्वयं आचार्य द्विवेदी ने अपने इस उपन्यास में कहा है, "राज्य–गठन, सैन्य–संचालन, मठ–स्थापन और निर्जन–वास पुरुष की समताहीन, मर्यादाहीन, शृंखलाहीन महत्त्वाकांक्षा के परिणाम हैं। इनको नियन्त्रित कर सकने की एक मात्रा शक्ति नारी है।.....इतिहास साक्षी है कि इस महिमामयी शक्ति की उपेक्षा करने वाले साम्राज्य नष्ट हो गए हैं। ज्ञान और वैराग्य के जंजाल फेन–बुद्बुद की भाँति क्षण भर में विलुप्त हो गये हैं।"

इसी प्रकार आचार्य ने इस विश्व में पुरुष के सन्दर्भ में नारी की भूमिका को निषेध–रूप वाली ही ठहराया है। वे

कहते हैं, "न सरले, यह जड़ मांस–पिंड न नारी है, न पुरुष। वह निषेध–रूप तत्त्व नारी है। निषेधरूप तत्त्व याद रख ! जहाँ कहीं अपने आप को उत्सर्ग करने की, अपने आप को खपा देने की भावना प्रधान है, वहीं नारी है। जहाँ कहीं दुःख–सुख की लाख–लाख धाराओं में अपने आपको दलित द्राक्षा के समान निचोड़ कर दूसरे को तृप्त करने की भावना प्रबल है, वहीं नारी–तत्त्व है। वह आनन्द–भोग के लिए नहीं आती, आनन्द लुटाने के लिए आती है। आज के धर्म–कर्म के आयोजन, सैन्य संगठन और राज्य–विस्तार विधि रूप हैं...वे फेन–बुद्‌बुद की भाँति अनित्य हैं...उनमें अपने आपको दूसों पर मिटा देने की भावना जब तक नहीं आती, तब तक वे ऐसे ही रहेंगे।"(उपन्यास, पृष्ठ 148)।

इस प्रकार नारी अपने द्वारा पग–पग पर किए जाने वाले **आत्मोत्सर्ग** के कारण ही पुरुष से अलग जा खड़ी होती है। पुरुष मात्रा उैसी की दैहिक दुर्बलताओं, सीमाओं और समर्पणशीलता आदि के स्वभाव के कारण उसका शोषण करता चला आया है। अब समय आ गया है, कि पुरुष और अपनी ही जाति की नारियों द्वारा नारी मात्रा के उद्धार की चेष्टायें करनी चाहियें, तभी जा कर अतीत में उस पर किए गए निरन्तर अन्यायों आदि की भरपाई या क्षतिपूर्त्ति सम्भव हो पायेगी, अन्यथा आज ही की तरह से उसका शोषण आगे भविष्य में भी चलता रहेगा।

प्रश्न 6. आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यास में राजसी वर्गों के द्वारा नारी को भोग्या मात्रा बनाने से क्या आशय है ? उदाहरण से स्पष्ट करें।

उत्तर : प्रस्तुत उपन्यास में सम्राट् हर्षवर्द्धन के काल में **दास–प्रथा** के प्रचलन का प्रमाण इस बात से मिलता है कि कुछ दस्यु राजकुल से सम्बन्ध रखने वाली चन्ददीधीति नाम की भट्टिनी (नया नाम) का अपहरण कर लेते हैं और जा कर राजकुल में उसे बेच देते हैं, जहाँ वह एक विवश बन्दिनी का–सा जीवन जीने के लिए अभिशप्त हो जाती है। बाण आ कर उसी का उद्धार करता है। उस जैसी असहाय नारियों के क्रय–विक्रय की ओर संकेत करते हुए महामाया विद्रोह का प्रबल स्वर उठाती हुई कहती है कि "आर्य सभासदो ! क्या इन अभागिनियों के पिता नहीं थे ? क्या वे अपनी माताओं की नयन–तारा नहीं थीं ? क्या उनके माँ–बाप के हृदय में अपनी सन्तति के प्रति जो स्नेह–भावना थी, वह किसी सम्राट् की स्नेह–भावना से कम थी ? धिक्कार है सभासदो ! जो उत्तरापथ के विद्वान् और शीलवान् नागरिक इन राजाओं का मुँह जोह रहे हैं ?"उपन्यास में प्रायः नारी मात्रा का भोग्या–रूप ही उजागर हुआ है। लेखक के अनुसार उसका जन्म अपनी किसी सार्थकता के लिए नहीं हुआ है (पृष्ठ 109), वह केवल पुरुष की भोगेच्छा की तृप्ति के लिए ही होता है। वह रानी के रूप में रहे या फिर किसी दासी करंकवाहिनी या चामरधारिणी के रूप में जीए, उसकी अपनी इच्छा–अनिच्छा का कोई भी मूल्य पुरुष की दृष्टि में कभी होता ही नहीं है। राजाओं और सामन्तों के अन्तःपुर एक ओर निर्यातित वधुओं के करुण–क्रन्दनों से भरे पड़े हैं, तो दूसरी ओर, दासियों के रूप में भगाई हुई नारियों और निरीह बहुओं और बेटियों के झुँड वहाँ पर मिल जाते हैं। (वही, पृष्ठ 193)

प्रश्न 7. उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में नारी के शोषण का विरोध किन पात्राों ने किस ढंग से किया है, संक्षेप में स्पष्ट करें।

उत्तर : उपन्यास में महामाया राजमहलों में दमित, शोषित नारियों के पक्ष में स्वर बुलन्द करती हुई सभा में इस प्रकार से यह ओजपूर्ण हुँकार करती दीखती है, "इस उत्तरापथ में लाख–लाख निरीह बहुओं और बेटियां के अपहरण और विक्रय का व्यवसाय क्या नहीं चल रहा है ? अगर देवपुत्रा तुवरमिलिन्द का हृदय थोड़ा भी संवेदनशील होता, तो आज से बहुत पहले उन्हें मूर्च्छित हो कर गिर पड़ना था। क्या निरीह प्रजा की बेटियाँ

उनकी नयन–तारा नहीं हुआ करतीं हैं ? क्या राजा और सेनापति की बेटियों का खो जाना ही संसार की दुर्घटनाएँ हैं ? आप में से किसी को नहीं मालूम कि महाराजाधिरज की चामरधारिणियाँ और करंकवाहिनियाँ इसी प्रकार भगाई हुई और ख़रीदी हुई कन्याएँ हैं"?"। यहाँ राजमहलों में शोषण के चक्र में पिसने वाली दीनहीन नारियों के प्रति उसका निजी आक्रोश मानो लेखक के अपने ही विचारों का प्रतिनिधित्व करता प्रतीत होता है। महामाया के अतिरिक्त उपन्यास में कथानायक बाणभट्ट और निपुणिका भी विशेष रूप से राजमहलों में नारियों के किए जा रहे शोषण का भरसक विरोध अपने–अपने ढंग से करते रहते हैं।

1.6.6 सहायक पुस्तकें :

1. डॉ॰ सत्यपाल चुघ, 'प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों की शिल्पविधि' (दिल्ली, प्रथम संस्करण सन् 1967)
2. महेशचन्द्र भारतीय, 'बाणभट्ट और उनका हर्षचरित' (प्रथम संस्करण)
3. डॉ॰ शशिभूषण सिंहल, 'यात्राा–गाथा'(प्रथम संस्करण)
4. डॉ॰ त्रिाभुवनसिंह, 'उपन्यासकार हज़ारी प्रसाद द्विवेदी' (वाराणसी, प्रथम संस्करण)
5. डॉ॰ हरमोहन लाल सूद, 'हज़ारी प्रसाद द्विवेदी का सर्जनात्मक साहित्य' (दिल्ली–94, निर्मल पब्लिकेशन, सन् 1998)
6. डॉ॰ मीरा मिश्रा, 'उपन्यासकार हज़ारी प्रसाद द्विवेदी : ऐतिहासिक सन्दर्भ और आधुनिक बोध' (वाराणसी, विजय प्रकाशन मन्दिर, बी॰ 21/76, कमच्छा, प्रथम संस्करण गंगा दशहरा सन् 1993 ई.)
7. डॉ॰ यश गुलाटी, 'प्रतिनिधि हिन्दी उपन्यास' (चण्डीगढ़, हरियाणा साहित्य अकादमी, प्रथम संस्करण सन् 1989)
8. डॉ॰ कृष्ण भावुक, 'हिन्दी साहित्य का प्रामाणिक इतिहास' (पटियाला, पेप्सु बुक डिपो, संस्करण वर्तमान वर्ष)
9. संपादक डॉ॰ शिवप्रसाद सिंह, आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी : 'शान्तिनिकेतन से शिवालिक तक'
10. आचार्य हज़ारीप्रसाद द्विवेदी, निबन्ध–संग्रह 'कल्पलता'
11. नरेन्द्र कोहली, 'हिन्दी उपन्यास : सृजन और सिद्धान्त' (दिल्ली, सौरभ प्रकाशन, प्रथम संस्करण सन् 1979)
12. हज़ारीप्रसाद द्विवेदी–ग्रन्थावली, भाग 10. (नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण)
13. डॉ॰ रामदरश मिश्र, 'हिन्दी उपन्यास : एक अन्तर्यात्राा' (नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, तीसरा संस्करण सन 2001)।

आधुनिकता की दृष्टि से उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा'

पाठ की रूपरेखा :

1.7.0 उद्देश्य

1.7.1 भूमिका

1.7.2 आधुनिकता की दृष्टि और उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा'

1.7.2.1 'परम्परा' का अर्थ और स्वरूप

1.7.2.2 'आधुनिकता' का अर्थ और स्वरूप

1.7.2.3 'आधुनिकता' की दृष्टि और उपन्यस 'बाणभट्ट की आत्मकथा'

1.7.2.3.1 कुशासन और अव्यवस्था का चित्राण

1.7.2.3.2 राजप्रशासनिक अत्याचार और शोषण

1.7.2.3.3 भोगविलासों और कामवासना की क्रीड़ाओं का यथार्थ

1.7.2.3.4 वैष्णव और बौद्धों का परस्पर संघर्ष और तान्त्रिकों-सिद्धों की आलोचना

1.7.2.3.5 नारी का निषेध–रूप और मुक्ति–संघर्ष

1.7.2.3.6 उपन्यास में प्रासंगिकता और समय–संगति

1.7.2.3.7 स्वयं जांच अभ्यास

1.7.3 सारांश

1.7.4 शब्दावली

1.7.5 प्रश्नावली

1.7.6 सहायक पुस्तकें

1.7.0 उद्देश्य

इस पाठ में समीक्ष्य उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' का आधुनिकता की दृष्टि से विवेचन किया जाएगा। जहाँ आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी मध्यकालीन काव्य और अन्य विधाओं के साहित्य के मर्मज्ञ और अधिकारी विद्वान् माने जाते हैं, वहाँ उन्होंने भारत के स्वर्णिम अतीत के वातायन से वर्तमान काल और उसकी अन्यान्य समस्याओं को देखा

ही नहीं है, वरन् यथासम्भव उनके समाधान भी सुझाए हैं। जिस प्रकार एक ऊँची कूद या छलाँग लगाने के लिए सदैव पीछ से दौड़ना आवश्यक हो जाया करता है, ठीक उसी प्रकार अपने वर्तमान काल में कोई भी प्रगति या विकास करने के लिए सभी प्रगतिशील जनों या लेखकों को 'परम्परा' में जो कुछ ग्रहणीय और स्वीकार्य श्रेष्ठ तत्त्व हैं, उन्हें सदैव स्वीकार करके उनकी सहायता से ही अपने कार्यों को संचालित करना चाहिए। इस उपन्यास से हमें यही लाभप्रद पाठ और सन्देश रेखांकित करना अभीष्ट है। उपन्यास में नारी की स्वतन्त्राता और गरिमा की पुनः प्रतिष्ठा की चेष्टा, उससे सहयोग ले कर पुरुषों की महत्त्वाकांक्षी प्रवृत्तियों पर अंकुश लगाना, प्रजा द्वारा राजा के अन्यायों का विरोध ा करने और जातिवादी समानता स्थापित करना, समाज के प्रत्येक क्षेत्रा में व्याप्त भ्रष्टाचार का निवारण करना और विश्व–शान्ति की स्थापना के लिए परस्पर मिल–जुल कर प्रेम–भाव का आदान–प्रदान करते हुए विभिन्न कलाओं और ज्ञान–विज्ञानों से भी सहायता लेने की मूल्यवती शिक्षायें इसी उपन्यास में दी गई हैं। ये सभी कार्य इस उपन्यास में घटनाओं, पात्राों, स्थितियों आदि के माध्यम से अच्छी प्रकार से चरितार्थ कर दिए गए हैं।

1.7.1 भूमिका

इस उपन्यास से पहले भी सर्वश्री किशोरीलाल गोस्वामी, वृन्दालाल वर्मा, आचार्य चतुरसेन शास्त्राी, शिवप्रसाद मिश्र 'रुद्र' इत्यादि उपन्यासकारों ने ऐतिहासिक उपन्यासों की रचना की थी, परन्तु उनमें विवेचित काल की सभ्यता और संस्कृति का निरूपण केवल गौण हो कर ही रह जाया करता था। इस समीक्ष्य उपन्यास में देशकाल और वातावरण का प्रामाणिक यथार्थ उलीकते हुए मानवतावादी लेखक आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ने सम्राट् हर्षकालीन आर्थिक, दार्शनिक, धार्मिक, राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों का इतना प्रामाणिक विवरण भी प्रस्तुत कर दिया है कि पाठक अपने को इस कृति के पठन के समय उसी काल में विचरण करते हुए अनुभव करता रहता है। इस उपन्यास के रचनाकाल में भी कुछेक उपन्यास इस कृति से प्रभावित हो कर लिखे गए थे। इसी साहित्यिक पृष्ठभूमि के साथ भारत में राजनीतिक स्वतन्त्राता पाने के प्रयोजन से जो संघर्ष हो रहा था, उसकी भी प्रतिध्वनियाँ नारी मात्रा की स्वतन्त्राता और पुरुषों के अन्याय, अत्याचार और शोषण के विरुद्ध संघर्ष–चेतना के प्रवक्ता के रूप में महाकवि बाणभट्ट को आगे करके सुनी जा सकती हैं।

1.7.2 आधुनिकता की दृष्टि और उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा'

अब हम विवेच्य उपन्यास में परम्परावादी विद्वान् साहित्यकार आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी के द्वारा आधुनिकता –बोध की नई दृष्टि के प्रक्षेपण के विविध आयामों का अध्ययन करेंगे। उससे पहले परम्परा का स्वरूप विश्लेषित करना समुचित प्रतीत होता है।

1.7.2.1 'परम्परा' का अर्थ और स्वरूप :

'हिन्दी शब्द–सागर' में **'परम्परा'** शब्द को कालवाचक बताया गया है। इसका अर्थ है एक के पीछे दूसरा, ऐसा क्रम, विशेषतया काल–क्रम, अनुक्रम, पूर्वापर क्रम, चला आता हुआ सिलसिला। (पृष्ठ 28)। लगभग सभी शब्दकोशों में कालक्रम के साथ एक निरन्तरता को भी परम्परा की मूलभूत विशेषता ठहराया जाता रहा है। अंग्रेज़ी भाषा के प्रसिद्ध शब्दकोश 'शार्टर ऑक्सफ़ोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी' में 'परम्परा' के अंग्रेज़ी समानक या समानार्थी शब्द **'ट्रैडिशन'** (Trtadition) के ये अर्थ दिए गए हैं – : स्थानान्तरण की क्रिया, तथ्यों को एक दूसरे को सौंपना, पीढ़ी–दर–पीढ़ी कथनों, विश्वासों, नियमों, रीतियों को अभ्यास के द्वारा अलिखित, मौखिक सौंपना।"

आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में, "परम्परा का शब्दार्थ है एक का दूसरे को, दूसरे का तीसरे को दिया जाने वाला क्रम, वह अतीत का समानार्थक नहीं है। परम्परा जीवित प्रक्रिया है, जो अपने परिवेश के

संग्रह–त्याग की आवश्यकताओं के अनुरूप निरन्तर क्रियाशील रहती है।...कभी–कभी इसे ग़लत ढंग से अतीत के सभी आचारों–विचारों का बोधक मान लिया जाता है। परम्परा से हमें समूचा अतीत नहीं प्राप्त होता, उसके आधार पर हम आगे की जीवन–पद्धति को रूप देते हैं।"(ग्रन्थ 'साहित्यिक निबन्ध', आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, निबन्ध 'परम्परा और आधुनिकता', पृष्ठ 123.) प्रो. मैनेजर पाण्डेय के मतानुसार, परम्परा वह है, "किसी काल विशेष में जिसकी अर्थवत्ता है तथा भविष्य में जिसकी प्रासंगिकता सम्भावित हो सकती है। इस प्रकार परम्परा जीवन्त मूल्यों के नैरन्तर्य का बोध है।" –(ग्रन्थ 'सूर–साहित्य : प्रतिभा और परम्परा', पृष्ठ 47)

इस प्रकार 'परम्परा' में ऐतिहासिक चेतना और निरन्तरता की भावनायें भी सदैव विद्यमान रहती हैं।

1.7.2.2 'आधुनिकता' का अर्थ और स्वरूप :

आज साहित्य और समाज आदि के सन्दर्भ में 'आधुनिक' और 'आधुनिकता' की अवधारणायें प्रायः विवाद का विषय भी होती हैं। साहित्य आदि में 'आधुनिक' शब्द का प्रयोग विभिन्न क्षेत्राों में विभिन्न अर्थों में प्रचलित है। डॉ. मीरा मिश्रा के मतानुसार "...'आधुनिकता' को दो रूपों में समझा जा सकता है। एक तो समय–सापेक्ष प्रक्रिया के रूप में तथा दूसरे विभिन्न प्रभावों से उत्पन्न चेतना के रूप में। प्रथम रूप में 'आधुनिकता' इतिहास–चक्र की अन्तिम परिणति है, जो परिवर्तन और विकास की विभिन्न अवस्थाओं को पार कर प्राप्त हुई है। इस स्थिति में हम देखते हैं हर अगला काल व समय अपने पूर्ववर्त्ती काल की अपेक्षा आधुनिक होगा। इसी प्रक्रिया में 'परम्परा' आधुनिकता से जुड़ी रहेगी, उससे कट कर अलग बिलकुल नहीं रह सकती। सामान्यतः 'आधुनिकता' का अर्थ आर्थिक क्षेत्राों में **औद्योगिक कारण, राजनीतिक क्षेत्रा में जनतन्त्रा और समाजशास्त्रा में मानव-न्याय** से लिया गया है। साहित्यिक आन्दोलन के रूप में भारतेन्दु–युग से आधुनिकता का समारम्भ माना जाता है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि जिस प्रकार इतिहास में 'मध्यखण्ड' एक विशेष काल–खण्ड का सूचक है, उसी प्रकार 'आधुनिकता' भी एक विशेष समय–सीमा की परिचायिका है।"

–(ग्रन्थ 'उपन्यासकार आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी : ऐतिहासिक सन्दर्भ और आधुनिक बोध', पृष्ठ 49–50)

'आधुनिकता' के दूसरे पक्ष का सम्बन्ध पश्चिमी आदि देशों के विभिन्न प्रभावों से सम्बन्ध रखता है। संक्षेप में, इन प्रभावों की चेतना या बोध को ही हम 'आधुनिकता' कह सकते हैं। अंग्रेज़ी भाषा में 'आधुनिक' विशेषण शब्द का 'समानक' शब्द 'मॉडर्न' है और वहाँ 'आधुनिकता' के समानार्थी शब्द 'मॉडर्निज़्म' (Modernism) या 'मॉडर्निटी' (Modernity) माने जाते रहे हैं। 'इन्साइक्लोपीडिया ऑफ़ ब्रिटैनिका' में Modernism शब्द को एक नवीन ईश्वरपरक–अर्थात् 'धर्मवैज्ञानिक संश्लेषण की प्राप्ति की इच्छा और प्रयास का श्रेष्ठ विवरण' कहा गया है। इसी प्रकार **पर्सी गार्डनर** ने 'मॉडर्निज़्म' (Modernism) को "ईसाइयत के इतिहास के विकास और प्रेरणादायक दो ढंगों से देखने की एक उच्चतर एकता" माना है। आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में "आधुनिकता नवीनता काव्य के प्रतीयमान रूप को स्पर्श करती है, माँजती है, खरोंचती है, उसके अन्तर्निहित स्थिर और विकासमान अर्थ को नहीं।"

–(ग्रन्थ 'आधुनिक साहित्य–बोध' : एक परिसंवाद, पृष्ठ 5)।

डॉ. नगेन्द्र आधुनिकता का लक्षण देने का प्रयास करते हुए लिखते हैं, "इस प्रकार आध्यात्मिक, नैतिक और सामयिक मूल्यों के विघटन के फलस्वरूप आधुनिक युग के प्रतिनिधि जिस जीवन–दर्शन का विकास हुआ है, उसको अन्तर्मुख चिन्तकों ने 'अस्तित्ववाद' और बहिर्मुख विचारकों ने 'वैज्ञानिक मानववाद' कहा है। सामान्य रूप से इस जीवन–दर्शन को ही 'आधुनिकता' के सूत्राबद्ध लक्षण के रूप में स्वीकार किया जा रहा है।"

–(हिन्दी पत्रिका 'आलोचना', विशेषांक, भाग 2, जुलाई सन् 1965, पृष्ठ 12)।

आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ने अपने निबन्ध **'परम्परा और आधुनिकता'** में 'आधुनिकता' की यह परिभाषा प्रस्तुत की है,"आधुनिकता अपने आप में कोई मूल्य नहीं है। मनुष्य ने अनुभवों द्वारा जिन महनीय मूल्यों को उपलब्ध किया है, उन्हें नये सन्दर्भों में देखने की दृष्टि आधुनिकता है। यह एक गतिशील प्रक्रिया है।"

इस प्रकार 'आधुनिकता' के अन्तर्गत नवीन जीवन–मूल्यों का ही स्वीकार किया जाता है। विभिन्न विद्वानों की परिभाषाओं को परस्पर मिलाने पर हम इसकी यह एक समन्वित परिभाषा दे सकते हैं कि "आधुनिकता से तात्पर्य किसी काल विशेष में अपनाए गए नवीन जीवन–मूल्यों के साथ प्राचीनता में परिष्कार, समसामयिक परिवेश का यथार्थ प्रतिबिम्ब एवं मौलिक चिरन्तन तत्त्वों के हृदयग्राही परिवर्तनों की स्थापना करना है।"–(मीरा मिश्रा, पूर्वोक्त ग्रन्थ, पृष्ठ 54)

1.7.2.3 'आधुनिकता' की दृष्टि और उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' :

भारत के इतिहास में सम्राट् हर्षवर्द्धन अन्तिम राजा के रूप में हमारे सामने आते हैं। उन्होंने पूरे देश को एक सुदृढ़ सूत्रा में बाँधे रखने में भरपूर प्रयास किए थे। यह और बात है कि वे अपने उन प्रयासों में आंशिक रूप से सफल भी हुए थे। फिर भी पिछले गुप्तयुग में गुप्त नरेशों का–सा सुशासन वे अपनी जनता को उपलब्ध नहीं करा सके थे।

1.7.2.3.1 कुशासन और अव्यवस्था का चित्राण :

इसी सन्दर्भ में डॉ॰ मीरा मिश्रा लिखती हैं, "दक्षिण के बहुत–से हिस्से हर्ष के साम्राज्य में नहीं थे तथा पश्चिम में भी काफी निकल गये थे तथा लगातार पश्चिम–उत्तर से आक्रमण हो रहा था। हर्ष उनका उस प्रकार से सामना नहीं कर पा रहे थे, जिस प्रकार गुप्तों ने उन्हें देश के बाहर खदेड़ कर किया था, बल्कि हर्ष ने एकाध लड़ाई में हार का भी सामना किया था।" –(वही, वही, पृष्ठ 83)

वास्तव में सम्राट् हर्ष के कुशासन के कारण ही उनके बाद भारत राजनीतिक दृष्टि से बरसों तक सँभल न पाया था। कुछ इतिहासकार तो भारत की पराधीनता का मूल कारण हर्ष के शासन की अव्यवस्था को ही ठहराते हैं। जहाँ पिछले गुप्तकाल में वैदिक धर्म को राजकीय प्रश्रय प्राप्त था, वहाँ सम्राट् हर्ष स्वयं बौद्ध धर्म में दीक्षा पाने के कारण बौद्ध धर्म को जर्जर अवस्था में भी अपनाए और पनपाए जा रहे थे। फिर भी वे अपने लाख प्रयासों से भी इस धर्म की दोनों मुख्य शाखाओं महायान और हीनयान को एक करने में समर्थ नहीं हो पाए थे। इसके विपरीत इन दोनों शाखाओं के समर्थकों में परस्पर कटुता बढ़ती ही जा रही थी। इस मतभेद वाली स्थिति का बखान चीनी यात्राी फ़ाहियान ने विस्तार से किया है। कुल मिला कर हर्षवर्द्धन का काल दार्शनिक और धार्मिक दृष्टियों से भारी उथल–पुथल का ही काल माना जा सकता है।

1.7.2.3.2 राजप्रशासनिक अत्याचार और शोषण :

आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में हर्ष के राजदरबार से पूर्वोक्त तथ्यों की पुष्टि हो जाती है। यह राजा कवियों और कलाकारों का पूर्ण सम्मान किया करता था। उसके काल में जनसाधारण पर्वोत्सवों और मेले–त्यौहारों में बढ़–चढ़ कर भाग लिया करते थे और नाटकों तक में आ कर दर्शकों के रूप में अपनी भागीदारी प्रदर्शित करते थे। कुछ समीक्षकों के अनुसार राजा उनके मनोगत विद्रोह के भावों को दबाने के लिए मनोरंजन के ऐसे विभिन्न साधन उनके लिए परोसा करता था। वास्तव में उपन्यास में महामाया राजा और उसके विभिन्न प्रतिनिधियों के द्वारा जनता पर ढाए जा रहे अत्याचारों की पोल खोलती हुई अपने ओजपूर्ण भाषणों से उनके भीतर क्रान्ति की आग धधकाती रहती है। बाणभट्ट भी अपने ढंग से राजमहलों में नारियों

के उत्पीड़न और शोषण का विरोध करते हुए मिलता है। विशेष रूप से मौखरी वंश के राजकुल में नारियों को दस्युओं से ख़रीद कर उन्हें राजमहलों में करंकवाहिनियों और चामरधारिणियों की नौकरियाँ दे कर अपने अधीन रखा जाता था, जोकि एक प्रकार से दास–प्रथा के पोषण का ही प्रमाण है। अतः देश के शासक और उसके प्रतिनिधियों के विरुद्ध बुद्धिजीवियों और विशिष्ट नारियों के द्वारा जो विरोध किया जा रहा था, वह उनमें उग रही 'नयी चेतना' के ही फलस्वरूप सम्भव हो पा रहा था, इसी दृष्टि को हम आज 'आधुनिक' क़रार दे सकते हैं।

1.7.2.3.3 भोगविलासों और कामवासना की क्रीड़ाओं का यथार्थ :

लेखक ने इस उपन्यास का अन्त घोर निराशा के वातावरण में युद्धभूमि से राजा हर्ष की वापसी के रूप में दिखा कर मानो राजनीतिक दृष्टि से वर्द्धन वंश के साम्राज्य की आगे होने वाली दुर्गति और पतन की ही भविष्यवाणी करने की चेष्टा की है। इस प्रकार लेखक भोग–विलास की प्रवृत्तियों के ख़तरों की ओर जो जागरूकता और सचेतता प्रदर्शित करता है, वह एक आधुनिक सोच–विचार वाले लेखक की लेखनी का ही सुफल हो सकता है। जिस प्रकार श्री जयशंकर प्रसाद की महाकाव्यात्मक कृति 'कामायनी' में हिमालय पर्वत के शिखर पर बैठे हुए मनु देवताओं के साम्राज्य के पतन का मूलभूत कारण उनका अतिशय भोग–विलासों में निमग्न हो जाने को ही ठहराता है और कहता है –'गया सभी कुछ गया, मधुरतम सुरबालाओं का शृंगार, उषा ज्योत्स्ना–सा यौवन–स्मित, मधुप सदृश निश्चिन्त विहार !"। ठीक उसी प्रकार सम्राट् हर्षवर्द्धन और उसके प्रतिनिधि राजसी राजकुमारों और सामन्तों के भोग–विलासों ने उनके राजकुलों को पतन के कगारों पर ले जा कर खड़ा कर दिया था। इस प्रकार आचार्य द्विवेदी ने एक कुशासन और भोगविलासी प्रवृत्ति के दुष्परिणाम दिखाने में अपनी परम्परावादिनी दृष्टि की अपेक्षा आधुनिकता–बोध से ओतप्रोत जीवन–दृष्टि का ही अच्छा परिचय दिया है।

श्री महेशचन्द्र भारतीय लिखते हैं, "सामन्ती समाज–व्यवस्था, स्वभावतः भोग–विलास–प्रधान होती है। हर्षचरित से मालूम पड़ता है कि स्थाण्वीश्वर को वेश्याएँ कामायतन समझती थीं, लासक (नर्तक) संगीतशाला, गायक गन्धर्व नगर और नन्दी द्यूत–स्थान।" –(ग्रन्थ 'बाणभट्ट और उनका हर्षचरित', पृष्ठ 182)।

श्री यदुनाथ चौबे के मतानुसार, "सामन्ती व्यवस्था की इस रुग्न मनोवृत्ति का प्रभाव जनसामान्य भी ग्रहण कर रहा था। साधारण लोग हमेशा नहीं, तो ख़ास–ख़ास अवसरों पर सामन्तीय भोग–विलाास का अनुसरण करते थे। अश्लील रासकपदानि कथन इस बात का प्रमाण है कि मर्यादा छोड़ कर अभद्र गीत गाने की प्रवृत्तियाँ चल पड़ी थीं। (ग्रन्थ 'आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी का समग्र साहित्य : एक अनुशीलन', पृष्ठ 39)।

डॉ. यश गुलाटी के इस निष्कर्ष से सहमत हुआ जा सकता है कि "इसी स्थिति में छोटे राजकुल के वर्णन और महामाया, धावक आदि के वक्तव्यों द्वारा प्रस्तुत सामन्ती समाज की पतनशीलता और चारुस्मिता, मदनश्री जैसी वेश्याओं और शार्विलिक के अड्डे–सम्बन्धी उल्लेखों से जनता पर सामन्ती विलास–लीला के व्यापक प्रभाव के प्रति किसी सन्देह की गुंजाइश नहीं रह जाती है।"

–(ग्रन्थ 'प्रतिनिधि हिन्दी उपन्यास, भाग एक, पृष्ठ 78)

इस समीक्ष्य उपन्यास में अनुचित काम–भाव के अनेक उदाहरण मिलते हैं। स्थाण्वीश्वर के छोटे राजकुल में हर्षवर्धन के जीजा ग्रहवर्मा के सम्बन्धी छोटे राजकुमार अपनी अदम्य काम–वासना की तृप्ति के लिए तुवरमिलिन्द की सुपुत्री भट्टिनी को उसकी इच्छा के विरुद्ध अपनी पत्नी बनाने पर ही तुले रहते हैं। उसी अबला नारी का उद्धार करने के प्रयोजन से उपन्यास में निपुणिका और बाणभट्ट मानो अपने सिर धड़ की बाज़ी लगा

देते हैं। एक ओर तो निपुणिका भट्टिनी के निवास का एक अस्थायी–सा प्रबन्ध कर देती है; दूसरी ओर, वहीं चण्डी मन्दिर का एक पुजारी कोई द्रविड और बूढ़ा साधु होता है, जोकि निपुणिका के सौन्दर्य पर लट्टू हो कर उसे अपनी जीर्ण कुटिया या प्रकोष्ठ में उसे ठहरा लेता है और उसके प्रति कामुक दृष्टि रखे रहता है। एक वृद्ध ब्राह्मण उसके सम्बन्ध में यह कह कर ढोंगी धार्मिक साधु–सन्तों पर ही मानो यों एक करारा कटाक्ष करता नज़र आता है, "पुजारी कोई द्रविड़ साधु है.....वे काफ़ी शौकीन भी हैं। यद्यपि वृद्ध हैं, तो भी कानों में औड्र–पुष्प को लटकाना नहीं भूलते. ...वे तान्त्रिाक भी हैं। प्रायः वृद्ध तीर्थयात्रियों पर वशीकरण चूर्ण फेंका करते हैं। माया–वशीकरण के ऊपर भी उनका विश्वास है।....."

1.7.2.3.4 वैष्णव और बौद्धों का परस्पर संघर्ष और तान्त्रिाकों–सिद्धों की आलोचना :

इस समीक्ष्य उपन्यास में 7वीं शताब्दी में हर्षवर्द्धन के शासनकाल में धार्मिक धरातल पर वैष्णवों, बौद्धों और तान्त्रिाकों के धर्माचारों का ही बोलबाला था और उनमें भी परस्पर मतभेद थे। वैष्णव सम्प्रदाय की ही तरह से शाक्त सम्प्रदाय भी आगे कई शाखाओं–उपशाखाओं में विभाजित होने लग गए थे। छठी शताब्दी में जिस तन्त्रा–सम्प्रदाय और उसकी साधना–पद्धति का उदय हुआ, वह जैन और बौद्ध सम्प्रदायों को भी बुरी तरह से प्रभावित करने लग गई थी। आचार्य द्विवेदी ने स्वयं इसे स्वीकार किया है।"

–(ग्रन्थ निबन्ध–संग्रह 'मध्यकालीन धर्म–साधना', पृष्ठ 17)

डॉ॰ भगवतशरण उपाध्याय भी अपने एक आलेख में यह टिप्पणी करते हैं कि, "बौद्धों के वज्रयान और आगम तन्त्रा के शाक्त–पथ के मेल से ही कापालिक औघड़ पंथ की परम्परा विकसित हुई है। आत्मकथा में अंकित वैष्णव–बौद्ध संघर्ष और सिद्ध–तन्त्रा की गहरी छाया में समाज के आचरण का बहुमुखी निदर्शन सर्वथा इतिहास–सम्मत है।" –(ग्रन्थ, 'शान्तिनिकेतन से शिवालिक', सम्पादक डॉ॰ शिवप्रसादसिंह, आलेख 'नीरन्ध्र इतिहास–कथा', पृष्ठ 266)

1.7.2.3.5 नारी का निषेध–रूप और मुक्ति–संघर्ष :

विधि–निषेधमूलक कठोर नियमों, सामाजिक वर्जनाओं और पाप के भय के बल पर नारी के संसर्ग को हेय और त्याज्य ठहराने की कोशिशों का वे घोर विरोध करते हैं। उनकी दृष्टि में नारीहीन तपस्या संसार की एक व्यर्थ बात ही है।" वे कहते हैं, "नारीहीन तपस्या संसार की भद्दी भूल है। वह धर्म–कर्म का विशाल आयोजन, सैन्य संगठन और राज्य–व्यवस्थापन सब फेन बुद्बुद की भाँति विलुप्त हो जाएँगे, क्योंकि नारी का इसमें **सहयोग** नहीं है। यह सारा ठाठ–बाठ संसार में केवल अशान्ति पैदा करेगा"–(उपन्यास, पृष्ठ 147)। डॉ॰ यश गुंलाटी का मत है कि "प्रत्येक मानवीय प्रयास में नारी–सहयोग की अनिवार्यता पर दिए जाने वाले इस बल के पीछे उनका तर्क यह है कि पुरुष में निर्मर्याद महत्त्वाकांक्षा होती है, जो उसे **राज्य–गठन, सैन्य–संचालन, मठ–स्थाापन** के योग्य तो बनाती है, किन्तु साथ ही उसकी उपलब्धियों को स्थायी बनाने और उनको लोक–कल्याणकारी रूप देने की क्षमता से वंचित भी कर देती है।" –(ग्रन्थ 'प्रतिनिधि हिन्दी उपन्यास', पृष्ठ 65)।

स्वयं आचार्य द्विवेदी ने अपने इस उपन्यास में कहा है, "राज्य–गठन, सैन्य–संचालन, मठ–स्थाापन और निर्जन–वास पुरुष की समताहीन, मर्यादाहीन, शृंखलाहीन महत्त्वाकांक्षा के परिणाम हैं। इनको नियन्त्रिात कर सकने की एक मात्रा शक्ति नारी है। ....इतिहास साक्षी है कि इस महिमामयी शक्ति की उपेक्षा करने वाले साम्राज्य नष्ट हो गए हैं। ज्ञान और वैराग्य के जंजाल फेन–बुद्बुद की भाँति क्षण भर में विलुप्त हो गये हैं।"

–(उपन्यास, पृष्ठ 112)

वर्तमान काल में मानव तभी प्रगति कर सकता है, जब पुरुष अपने उत्तम अर्द्धांश अर्थात् **स्त्री से परस्पर सहयोग** करने–कराने का सृदृढ़ निश्चय कर ले। आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ने भी इस बात से अपनी पूर्ण सहमति प्रकट की है। वे कहते हैं कि **"**"न सरले, यह जड़ मांस–पिंड न नारी है, न पुरुष। वह **निषेध–रूप तत्त्व** नारी है। निषेध–रूप तत्त्व याद रख ! जहाँ कहीं अपने आप को उत्सर्ग करने की, अपने आप को खपा देने की भावना प्रधान है, वहीं नारी है। जहाँ कहीं दुःख–सुख की लाख–लाख धाराओं में अपने आपको दलित द्राक्षा के समान निचोड़ कर दूसरे को तृप्त करने की भावना प्रबल है, वहीं नारी–तत्त्व है। वह आनन्द–भोग के लिए नहीं आती, आनन्द लुटाने के लिए आती है। आज के धर्म–कर्म के आयोजन, सैन्य संगठन और राज्य–विस्तार विधि–रूप हैं...वे फेन–बुद्बुद की भाँति अनित्य हैं...उनमें अपने आपको दूसरों पर मिटा देने की भावना जब तक नहीं आती, तब तक वे ऐसे ही रहेंगे।"

–(उपन्यास, पृष्ठ 148)

महादेवी वर्मा ने भी कहीं लिखा था कि पुरुष लूटना चाहता है और नारी लुट जाना, नारी समर्पण करना चाहती है और पुरुष उसका शोषण करना इत्यादि विचार भी अवलोकनीय हैं। इस प्रकार नारी अपने द्वारा पग–पग पर किए जाने वाले **आत्मोत्सर्ग** के कारण ही पुरुष से अलग जा खड़ी होती है। पुरुष मात्रा उसी की दैहिक दुर्बलताओं, सीमाओं और समर्पणशीलता आदि के जन्मजात स्वभाव के कारण उसका शोषण करता चला आया है। अब समय आ गया है, कि पुरुष और अपनी ही जाति की नारियों द्वारा नारी मात्रा के उद्धार की चेष्टायें करनी चाहियें, तभी जा कर अतीत में उस पर किए गए निरन्तर अन्यायों आदि की भरपाई या क्षतिपूर्त्ति सम्भव हो पायेगी, अन्यथा आज ही की तरह से उसका शोषण आगे भविष्य में भी होता रहेगा।

1.7.2.3.6 उपन्यास में प्रासंगिकता और समय–संगति :

प्रत्येक सफल और सशक्त साहित्यिक रचना की ही तरह से यह उपन्यास भी एक सोद्देश्य रचना बन पड़ी है। इसमें हर्षकालीन अतीतकाल की कथा के माध्यम से वर्तमान काल की विविध समस्याओं को भी प्रतिबिम्बित किया गया है। इसी जमाबिन्दु के कारण यह उपन्यास पूरी तरह से प्रासंगिक और समय– संगत बन पड़ा है। इसके साथ ही भारत के गौरवमय अतीत के प्रति भारतीयों के कम होते जा रहे आकर्षण और मोह को जगाना भी इस उपन्यास का एक मुख्य लक्ष्य कहा जा सकता है।

डॉ. मीरा मिश्रा लिखती हैं, "यह उपन्यास मध्यकालीन इतिहास पर आधारित है। इसके माध्यम से द्विवेदी जी ने बाण की चारित्रिक विशेषताओं को आलोकित करते हुए हर्षकालीन भारत के सांस्कृतिक, सामाजिक पक्ष को भी उभारा है। उपन्यास की सम्पूर्ण कथा का विवेचन करने के बाद लगता है कि हर्षकालीन समाज की स्थिति से अवगत करना, तथा बाण का सुन्दर व्यक्तित्व खड़ा करना ही द्विवेदी जी का उद्देश्य रहा होगा। प्रस्तुत उपन्यास में द्विवेदी जी ने अपने को बाण की आत्मा में बैठा कर, **कलाकार बाण और पंडित बाण** के अन्तर्द्वन्द्व का, बाणभट्ट की मूल प्रेरणा के ोत का चित्राण करने का प्रयास किया है। यद्यपि इस उपन्यास में ऐतिहासिक तिथियों एवं घटनाओं की सत्यता का अभाव है और ऐतिहासिक पात्रा भी कम हैं, फिर भी उपन्यासकार ने तत्कालीन वातावरण के निर्माण द्वारा उपन्यास में ऐतिहासिकता लाने का प्रयास किया है।"

–(पूर्वोक्त ग्रन्थ, पृष्ठ 271)

इन उद्देश्यों के अतिरिक्त यह उपन्यास पढ़ने से पाठकों को जो स्पष्ट पाठ या सन्देश प्राप्त होते हैं, उन्हें संक्षेप में इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है :–

1. राजतन्त्रा में जनतंत्रा का किस प्रकार से पोषण करना चाहिए, इस बारे में यह उपन्यास हमें कोई स्पष्ट मार्ग–दर्शन तो नहीं करता है, परन्तु हम इसके सम्बन्ध में सोचने के लिए बाध्य अवश्य होते हैं। इसके साथ हमें यह पता लगता है कि प्रजा को अपने राजा पर पूरी तरह से सदैव आश्रित नहीं

रहना चाहिए, अपितु उसे अपनी रक्षा सदैव करते रहना चाहिए।

2. जनसाधारण को धार्मिक और सामाजिक अन्धविश्वासों में अपनी निष्ठा कभी नहीं रखनी चाहिए।

3. अन्याय होता देख कर प्रजा को सदैव उसके विरुद्ध अपना सिर उठाना चाहिए।

4. राजा को सदैव प्रजा का ही पूर्ण प्रतिनिधित्व करना चाहिए। यदि वह ऐसा नहीं करता, तो प्रजा को अपनी समूची शक्ति से राजशक्ति को ललकारना चाहिए।

5. प्रत्येक राज्य में ब्राह्मणों और शिक्षकों का पूर्ण आदर–सत्कार किया जाना चाहिए।

6. लोगों को अपने देश और राज्य में भ्रष्टाचारियों का न केवल विरोध करना चाहिए, अपितु उनका अस्तित्व ही मिटा देना चाहिए।

7. लोगों को अपने जीवन में सदा एक दूसरे से प्रेमपूर्ण व्यवहार करना चाहिए और साथ ही परस्पर सम्मान भी।

8. जीवन में बहुत–से विकल्प कभी नहीं रखने चाहियें और निस्स्वार्थ भाव से अपना जीवन जीते हुए अपने लक्ष्य की प्राप्ति को सदैव परमात्मा के लिए ही छोड़ देना चाहिए। **'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन'।**

9. मानव अपने को युद्ध की विभीषिका से कभी भी पूरी तरह से मुक्त नहीं कर सकता है। उसे यथासम्भव अपने परिवेश और देश में शान्ति ही बनाए रखनी चाहिए।

10. समाज में नारी को सदैव यथोचित सम्मान मिलना चाहिए। पुरुष को उसे सदैव अपनी एक पथबाधा न समझ कर अपने लक्ष्य का साधक ही मान कर चलना चाहिए, तभी उसका जीवन सुखद और शान्तिपूर्ण हो सकता है, अन्यथा कभी नहीं।

11. धर्म के नकारात्मक पक्ष या रूप से जनसाधारण को सदैव सचेत रहना चाहिए और अपने आपको अधार्मिक हुए बिना धर्म के सभी आडम्बरों और बाहरी आचार–विचारों से दूर ही रखना चाहिए।

12. चूँकि कलाएँ मानव के जीवन की सर्वोच्च उपलब्धि हुआ करती हैं, इसलिए मानव मात्रा को कलाओं की प्रगति और विकास के लिए अधिकतम कार्य सम्पन्न करते रहना चाहिए।

इस प्रकार यह उपन्यास कथ्य के धरातल पर हर्षकालीन सभ्यता और संस्कृति का चित्रााांकन करते हुए आधुनिक काल की अपेक्षाओं और समस्याओं का भी रेखांकन करता है और इसी कारण इसमें आधुनिक भाव–बोध और वैचारिकता की जीवन–दृष्टि अनेक स्थलों पर गहराती प्रतीत होती है। इसी को कदाचित् अपने समय और उनके सवालों से साक्षात्कार करते रहना कहा जाता है। इसी अर्थ में यह उपन्यास ऐतिहासिक और सांस्कृतिक चेतना से लैस होने पर भी 'आधुनिक' विचारधारा के अनुकूल भी बन पड़ा है और लेखक की आधुनिक सोच और विचारधारा या चिन्तना के सुनिश्चित साक्ष्य प्रस्तुत करने वाला उपन्यास घोषित किया जा सकता है।

1.7.2.3.7 स्वयं जांच अभ्यास

1. आधुनिकता की दृष्टि से उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' पर चर्चा करें।

.....

.....

1.7.3 सारांश

इस पाठ में विवेच्य ऐतिहासिक और सांस्कृतिक उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में आधुनिकता की जीवन–दृष्टि पर विस्तार से विचार किया गया है। आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी यद्यपि प्राचीन भारतीय सभ्यता और संस्कृति के परम्परावादी गायक या प्रतिनिधि लेखक के रूप में समादृत रहे हैं, तथापि उनके प्रत्येक परम्परावादी उपन्यास या निबन्ध में भी कहीं–न–कहीं अपने वर्तमान या आधुनिक समय के सवालों का सामना करने की ललक और उत्कण्ठा ने ही उन्हें प्रासंगिक और समय–संगत रचनायें करने वाला एक रचनाकार बना कर रखा हुआ है। इस समीक्ष्य उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में भी हम उन्हें अपने काल के पाठकों, लेखकों और विद्वानों के लिए नये सवाल और उनके सही उत्तर प्रस्तुत करते हुए देखते हैं। यही कारण है कि जब हम इस उपन्यास को वर्तमान के वातायन से देखते और इसका मूल्यांकन करते हैं, तब हमें इस कृति की वर्तमान काल में भी सामयिक उपयोगिता का ज्ञान हो जाता है।

1.7.4 शब्दावली

इस उपन्यास में इसकी मूल ऐतिहासिक और सांस्कृतिक संवेदना के अनुरूप संस्कृत की तत्सम शब्दावली तो गूँथी ही गई है, इसके साथ ही तद्भव और देशज शब्दों की भरमार से इसमें कहीं–कहीं बोलचाल की भाषा का निखार और सँवार भी आता रहा है, जिससे इसकी पठनीयता में विशेष अभिवृद्धि ही हुई है। इस उपन्यास में इसकी ऐतिहासिकता, ऐतिहासिक यथार्थ और सांस्कृतिक गरिमा को सुरक्षित करने के प्रयोजन से आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ने यत्रातत्रा अपनी भाषा को **संस्कृत के तत्सम शब्दों** से युक्त करने की ही युक्ति से काम लिया है। ये शब्द आगे दिए जा रहे हैं, साथ ही कोष्ठकों में उनके सरल अर्थ भी छात्राों की सुविधा के लिए दे दिए गए हैं। आशा है, छात्रा इन शब्दों को याद कर लेंगे और स्तरीय शब्दकोशों को देख–देख कर ऐसे अन्य क्लिष्ट शब्दों के अर्थों का निश्चय करते हुए अपने ज्ञान को बढ़ाते रहेंगे।

पांडुर, पृष्ठ 145 (पीला), कृकल 146 (गिरगिट, तीतर), बुद्बुद, 47 (बुलबुला), तालपत्रा, 46 (ताड़ के पत्ते), वीचियों, 94 (लहरियों), निमज्जित(डूबा हुआ), अतुलनीय, 147 (अनुपम, बेजोड़), अन्तर्यामी (हृदय के भीतर की बात जानने वाला), शोण (एक नदी का नाम), सह (हज़ार), अन्तःस्फुरण (हृदय के भीतर किसी बात का सूझना, सूझ), प्रतिपादन, 259 (स्थापन), अनुग्रह, 259 (कृपा), कलाविद्, 259 (कलाओं का ज्ञान, कलाकार), उद्दीप्त, 275, सिक्थकरण्डक (मोमबत्ती), उद्दीप्त (उत्तेजित), निरापद, 83 (किसी संकट या विपत्ति के बिना उससे रहित), अर्द्धस्फुट, 161 (आधा प्रकट या स्पष्ट होना), साष्टांग प्रणिपात, 275 (आठों अंगों से प्रणाम), अविचलित (बिना कोई कम्पन, डगमगाहट या हिल–डुल किए)।

1.7.5 प्रश्नावली

यहाँ इस पाठ से सम्बन्धित कुछ लघु प्रश्न और उनके सम्भावित उत्तर भी दिए जा रहे हैं। इनकी शैली देख कर छात्राों को चाहिए कि अपनी ओर से नये लघु प्रश्न बना कर उनकी उत्तर तैयार करें। इस प्रकार के अभ्यास से उन्हें निश्चित ही लाभ होगा।

प्रश्न 1. उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' के आधार पर 'परम्परा' के अर्थ और स्वरूप पर एक संक्षिप्त–सी टिप्पणी करें ?

उत्तर : आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में, "परम्परा का शब्दार्थ है एक का दूसरे को, दूसरे का तीसरे को दिया जाने वाला क्रमख् वह अतीत का समानार्थक नहीं है। परम्परास जीवित प्रक्रिया है, जो अपने परिवेश के संग्रह–त्याग की आवश्यकताओं के अनुरूप निरन्तर क्रियाशील रहती है।...परम्परा जीवन्त प्रक्रिया है, जो

अपने परिवेश के संग्रह–त्याग की आवश्यकताओं के अनुरूप निरन्तर क्रियाशील रहती है। कभी–कभी इसे ग़लत ढंग से अतीत के सभी आचारों–विचारों का बोधक मान लिया जाता है। परम्परा से हमें समूचा अतीत नहीं प्राप्त होता, उसके आधार पर हम आगे की जीवन–पद्धति को रूप देते हैं।"(ग्रन्थ 'साहित्यिक निबन्ध', आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, निबन्ध 'परम्परा और आधुनिकता', पृष्ठ 123)। प्रो॰ मैनेजर पाण्डेय के मतानुसार, परम्परा वह है, "किसी काल विशेष में जिसकी अर्थवत्ता है तथा भविष्य में जिसकी प्रासंगिकता सम्भावित हो सकती है। इस प्रकार परम्परा जीवन्त मूल्यों के नैरन्तर्य का बोध है।"(ग्रन्थ 'सूर–साहित्य : प्रतिभा और परम्परा', पृष्ठ 47)

प्रश्न 2. उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' के आधार पर'आधुनिकता' के अर्थ और स्वरूप पर एक संक्षिप्त–सी टिप्पणी करें ?

उत्तर : 'आधुनिकता' को दो रूपों में समझा जा सकता है। एक तो समय–सापेक्ष प्रक्रिया के रूप में तथा दूसरे विभिन्न प्रभावों से उत्पन्न चेतना के रूप में। प्रथम रूप में 'आधुनिकता' इतिहास–चक्र की अन्तिम परिणति है, जो परिवर्तन और विकास की विभिन्न अवस्थाओं को पार कर प्राप्त हुई है। इस स्थिति में हम देखते हैं हर अगला काल व समय अपने पूर्ववर्त्ती काल की अपेक्षा आधुनिक होगा। इसी प्रक्रिया में परम्परा आधुनिकता से जुड़ी रहेगी, उससे कट कर अलग बिलकुल नहीं रह सकती। सामान्यतः आधुनिकता का अर्थ आर्थिक क्षेत्राों में औद्योगिक कारण, राजनीतिक क्षेत्रा में जनतन्त्रा और समाजशास्त्रा में मानव–न्याय से लिया गया है। साहित्यिक आन्दोलन के रूप में भारतेन्दु–युग से आधुनिकता का समारम्भ माना जाता है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि जिस प्रकार इतिहास में 'मध्यखण्ड' एक विशेष काल–खण्ड का सूचक है, उसी प्रकार 'आधुनिकता' भी एक विशेष समय–सीमा की परिचायिका है।"(ग्रन्थ 'उपन्यासकार आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी : ऐतिहासिक सन्दर्भ और आधुनिक बोध', पृष्ठ 49–50)।

प्रश्न 3. उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' **में सम्राट् हर्षवर्द्धन के शासन-काल के चित्राण पर एक संक्षिप्त टिप्पणी करें ?**

उत्तर : वास्तव में सम्राट् हर्ष के कुशासन के कारण ही उनके बाद भारत राजनीतिक दृष्टि से बरसों तक सँभल न पाया था। कुछ इतिहासकार तो भारत की पराधीनता का मूल कारण तो हर्ष के शासन की अव्यवस्था को ही ठहराते हैं। जहाँ पिछले गुप्तकाल में वैदिक धर्म को राजकीय प्रश्रय प्राप्त था, वहाँ सम्राट् हर्ष स्वयं बौद्ध धर्म में दीक्षा पाने के कारण बौद्ध धर्म को जर्जर अवस्था में भी पनपाए जा रहे थे। फिर भी वह अपने लाख प्रयासों से भी इस धर्म की दोनों मुख्य शाखाओं महायान और हीनयान को एक करने में समर्थ नहीं हो पाया था। इसके विपरीत इन दोनों शाखाओं के समर्थकों में परस्पर कटुता बढ़ती ही जा रही थी। इस मतभेद वाली स्थिति का बखान चीनी यात्राी फ़ाहियान ने विस्तार से किया है। कुल मिला कर हर्षवर्द्धन का काल दार्शनिक और धार्मिक दृष्टियों से भारी उथल–पुथल का ही काल माना जा सकता है।

प्रश्न 4. उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' के आधार पर सम्राट् के प्रतिनिधि सामन्तों और राजकुमारों के द्वारा भोग–विलास के नशे में अपने कर्त्तव्यों से च्युत होने के ऐतिहासिक तथ्य पर प्रकाश डालें ?

उत्तर : लेखक ने इस उपन्यास का अन्त घोर निराशा के वातावरण में युद्धभूमि से वापसी के रूप में दिखा कर मानो राजनीतिक दृष्टि से वर्द्धन वंश के साम्राज्य की आगे होने वाली दुर्गति और पतन की ही भविष्यवाणी करने की चेष्टा की है। इस प्रकार लेखक भोग–विलास की प्रवृत्तियों के ख़तरों की ओर जो जागरूकता और सचेतता प्रदर्शित करता है, वह एक आधुनिक सोच–विचार वाले लेखक की लेखनी का ही सुफल हो सकता है। जिस प्रकार श्री जयशंकर

प्रसाद की महाकाव्यात्मक कृति 'कामायनी' में मनु हिमगिरि के शिखर पर बैठे हुए देवताओं के साम्राज्य के पतन का मूलभूत कारण उनका अतिशय भोग–विलासों में निमग्नता को ही ठहराता है और लिखता है, **'गया सभी कुछ गया, मधुरतम सुर–बालाओं का शृंगार, उषा ज्योत्स्ना–सा यौवन–स्मित, मधुप सदृश निश्चिन्त विहार !"** ठीक उसी प्रकार सम्राट् हर्षवर्द्धन और उसके प्रतिनिधि राजसी राजकुमारों और सामन्तों के भोग–विलासों ने उनके राजकुलों को पतन के कगारों पर ले जा कर खड़ा कर दिया था। इस प्रकार आचार्य द्विवेदी ने एक कुशासन और भोगविलासी प्रवृत्ति के दुष्परिणाम दिखाने में अपनी परम्परावादिनी दृष्टि की अपेक्षा आधुनिकता–बोध से ओतप्रोत जीवन–दृष्टि का ही अच्छा परिचय दिया है। **श्री महेशचन्द्र भारतीय** लिखते हैं, "सामन्ती समाज–व्यवस्था, स्वभावतः भोग–विलास–प्रधाान होती है। 'हर्षचरित' (बाणभट्ट द्वारा लिखित ग्रन्थ का नाम) से मालूम पड़ता है कि स्थाण्वीश्वर को वेश्याएँ कामायतन समझती थीं, लासक (नर्तक) संगीतशाला, गायक गन्धर्व नगर और नन्दी द्यूत–स्थान।" श्री **यदुनाथ चौबे** के मतानुसार, "सामन्ती व्यवस्था की इस रुग्ण मनोवृत्ति का प्रभाव जनसामान्य भी ग्रहण कर रहा था। साधारण लोग हमेशा नहीं, तो ख़ास–ख़ास अवसरों पर सामन्तीय भोग–विलाास का अनुसरण करते थे। अश्लील रासकपदानि कथन इस बात का प्रमाण है कि मर्यादा छोड़ कर अभद्र गीत गाने की प्रवृत्तियाँ चल पड़ी थीं।

प्रश्न 5. नारी के निषेधात्मक रूप के बारे में आचार्य द्विवेदी ने अपने उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में क्या कहा है ?

उत्तर : विधि–निषेधमूलक कठोर नियमों, सामाजिक वर्जनाओं और पाप के भय के बल पर नारी के संसर्ग को हेय और त्याज्य ठहराने की कोशिशों का वे घोर विरोध करते हैं। उनकी दृष्टि नारीहीन तपस्या संसार की एक भद्दी भूल है।" वे कहते हैं, "नारीहीन तपस्या संसार की भद्दी भूल है। वह धर्म–कर्म का विशाल आयोजन, सैन्य संगठन और राज्य–व्यवस्थापन सब फेन बुद्बुद की भाँति विलुप्त हो जाएँगे, क्योंकि नारी का इसमें **सहयोग** नहीं है। यह सारा ठाट–बाट संसार में केवल अशान्ति पैदा करेगा"(उपन्यास, पृष्ठ 147)। डॉ॰ यश गुलाटी के मतानुसार "प्रत्येक मानवीय प्रयास में **नारी–सहयोग की अनिवार्यता** पर दिए जाने वाले इस बल के पीछे उनका तर्क यह है कि पुरुष में निर्मर्याद महत्त्वाकांक्षा होती है, जो उसे राज्य–गठन, सैन्य–संचालन, मठ–स्थाापन के योग्य तो बनाती है, किन्तु साथ ही उसकी उपलब्धियों कोस्थायी बनाने और उनको लोक–कल्याणकारी रूप देने की क्षमता से वंचित भी कर देती है।" स्वयं आचार्य द्विवेदी ने अपने इस उपन्यास में कहा है, "**राज्य–गठन, सैन्य–संचालन, मठ–स्थाापन** और निर्जन–वास पुरुष की समताहीन, मर्यादाहीन, शृंखलाहीन महत्त्वाकांक्षा के परिणाम हैं। इनको नियन्त्रित कर सकने की एक मात्रा शक्ति नारी है।.....इतिहास साक्षी है कि इस महिमामयी शक्ति की उपेक्षा करने वाले साम्राज्य नष्ट हो गए हैं। ज्ञान और वैराग्य के जंजाल फेन–बुद्बुद की भाँति क्षण भर में विलुप्त हो गये हैं।"

प्रश्न 6 नारी की मुक्ति के लिए उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में लेखक ने कौन-से पात्राों को उसके लिए प्रवक्ता और संघर्षकर्त्ता के रूप में कैसे प्रस्तुत किया है ?

उत्तर : वर्तमान काल में मानव तभी प्रगति कर सकता है, जब पुरुष अपने उत्तम अर्द्धांश अर्थात् स्त्राी से परस्पर सहयोग करने–कराने का सुदृढ़ निश्चय कर ले। आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ने भी इस बात से अपनी पूर्ण सहमति प्रकट की है। वे कहते हैं कि **""**न सरले, यह जड़ मांस–पिंड न नारी है, न पुरुष। वह **निषेध–रूप तत्त्व** नारी है। निषेध–रूप तत्त्व याद रख ! जहाँ कहीं अपने आप को उत्सर्ग करने की, अपने आप को खपा देने की भावना प्रधान है, वहीं नारी है। जहाँ कहीं दुःख–सुख की लाख–लाख धाराओं में अपने आपको दलित द्राक्षा के समान निचोड़ कर दूसरे को तृप्त करने की भावना प्रबल है, वहीं नारी–तत्त्व है। वह आनन्द–भोग के लिए नहीं आती, आनन्द लुटाने के लिए आती है। आज के धर्म–कर्म के आयोजन, सैन्य संगठन और राज्य–विस्तार विधि रूप हैं. ..वे फेन–बुद्बुद की भाँति अनित्य हैं...उनमें अपने आपको दूसों पर मिटा देने की भावना जब तक नहीं आती, तब

तक वे ऐसे ही रहेंगे।"

इस प्रकार नारी अपने द्वारा पग–पग पर किए जाने वाले **आत्मोत्सर्ग** की भावना के कारण ही पुरुष से अलग जा खड़ी होती है। पुरुष मात्रा उसी की दैहिक दुर्बलताओं, सीमाओं और समर्पणशीलता आदि के स्वभाव के कारण उसका शोषण करता चला आया है। अब समय आ गया है, कि पुरुष और अपनी ही जाति की नारियों द्वारा नारी मात्रा के शोषण और उत्पीड़न से उद्धार की चेष्टायें करनी चाहियें, तभी जा कर अतीत में उस पर किए गए निरन्तर अन्यायों आदि की भरपाई या क्षतिपूर्त्ति सम्भव हो पायेगी, अन्यथा आज ही की तरह से उसका शोषण आगे भविष्य में भी होता रहेगा।

1.7.6 सहायक पुस्तकें

1. डॉ॰ सत्यपाल चुघ, 'प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों की शिल्पविधि' (दिल्ली, प्रथम संस्करण सन् 1967)
2. महेशचन्द्र भारतीय, 'बाणभट्ट और उनका हर्षचरित' (प्रथम संस्करण)
3. डॉ॰ शशिभूषण सिंहल, 'यात्राा–गाथा'(प्रथम संस्करण)
4. डॉ॰ त्रिाभुवनसिंह, 'उपन्यासकार हज़ारी प्रसाद द्विवेदी' (वाराणसी, प्रथम संस्करण)
5. डॉ॰ हरमोहन लाल सूद, 'हज़ारी प्रसाद द्विवेदी का सर्जनात्मक साहित्य' (दिल्ली–94, निर्मल पब्लिकेशन, सन् 1998)
6. डॉ॰ मीरा मिश्रा, 'उपन्यासकार हज़ारी प्रसाद द्विवेदी : ऐतिहासिक सन्दर्भ और आधुनिक बोध' (वाराणसी, विजय प्रकाशन मन्दिर, बी॰ 21/76, कमच्छा, प्रथम संस्करण गंगा दशहरा सन् 1993 ई.)
7. डॉ॰ यश गुलाटी, 'प्रतिनिधि हिन्दी उपन्यास' (चण्डीगढ़, हरियाणा साहित्य अकादमी, प्रथम संस्करण सन् 1989)
8. डॉ॰ कृष्ण भावुक, 'हिन्दी साहित्य का प्रामाणिक इतिहास' (पटियाला, पेप्सु बुक डिपो, संस्करण वर्तमान वर्ष)
9. संपादक डॉ॰ शिवप्रसाद सिंह, आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी :'शान्तिनिकेतन से शिवालिक तक'
10. आचार्य हज़ारीप्रसाद द्विवेदी, निबन्ध–संग्रह 'कल्पलता'
11. नरेन्द्र कोहली, 'हिन्दी उपन्यास : सृजन और सिद्धान्त' (दिल्ली, सौरभ प्रकाशन, प्रथम संस्करण सन् 1979)
12. हज़ारीप्रसाद द्विवेदी–ग्रन्थावली, भाग 10. (नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण)
13. डॉ॰ रामदरश मिश्र, –हिन्दी उपन्यास– एक अन्तर्यात्राा' (नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, तीसरा संस्करण सन् 2001)
14. डॉ॰ शशिभूषण सिहल, 'हिन्दी उपन्यास : यात्राा–गाथा'
15. वेदप्रकाश अमिताभ, 'उपन्यासकार हज़ारी प्रसाद द्विवेदी'
16. यदुनाथ चौबे, 'आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी का समग्र साहित्य : एक अनुशीलन'

उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' के प्रमुख गद्यांशों की सप्रसंग व्याख्यायें

पाठ की रूपरेखा :

1.8.0 उद्देश्य

1.8.1 प्रमुख गद्यांशों की सप्रसंग व्याख्यायें

1.8.2 शब्दावली

1.8.0 उद्देश्य

इस पाठ का मुख्य उद्देश्य आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी के ऐतिहासिक और सांस्कृतिक उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में आए कुछेक महत्त्वपूर्ण गद्यांशों की सप्रसंग व्याख्यायें प्रस्तुत करना ही है। यह उपन्यास पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला के एम॰ए॰ हिन्दी भाग प्रथम की कक्षा के प्रथम भाग में चतुर्थ पत्रा 'आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवदी : एक विशेष अध्ययन' के अन्तर्गत निर्धारित एक पाट्य पुस्तक है।

1.8.1 प्रमुख गद्यांशग्रें की सप्रसंग व्याख्याये

गद्यांश 1. "मैंने निपुणिका को मंडली में आ जाने की अनुमति दे दी। मेरी मंडली की स्त्रियाँ पुरुषों की अपेक्षा अधिक सुखी थीं। बहुत छुटपन से ही मैं स्त्री का सम्मान करना जानता हूँ। साधारणतः जिन स्त्रियों को चंचल और कुलभ्रष्टा माना जाता हे, उनमें एक दैवी शक्ति भी होती है, यह बात लोग भूल जाते हैं। मैं नहीं भूलता। मैं स्त्री–शरीर को देव–मन्दिर के समान पवित्रा मानता हूँ। उस पर की गई अननुकूल टीकाओं को मैं सहन नहीं कर सकता। इसीलिए मैंने मंडली में ऐसे कठोर नियम बना रखे थे कि स्त्रियों की इच्छा के विरुद्ध उनसे कोई बोल तक नहीं सकता था।" - (पृष्ठ 20–21)

प्रसंग : यह गद्यांश पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला की एम॰ए॰ हिन्दी कक्षा के प्रथम भाग में चतुर्थ पत्रा के अन्तर्गत 'आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी : विशेष अध्ययन' में निर्धारित उनके ऐतिहासिक उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' के द्वितीय उच्छ्वास से चुना गया है।

इसमें कथानायक बाणभट्ट स्वयं अपने विचार व्यक्त करते हुए कहता है कि उसकी नाटक–मण्डली में काम करने वाली स्त्रियों के साथ उसका अपना व्यवहार किस प्रकार का था। वह नारी मात्रा को देवी और उसकी देह को पवित्रा मन्दिर के ही समान घोषित करता है। नारी मात्रा के प्रति सम्मान की यह भावना उसे अपने पूर्वजों से ही

प्राप्त हुई थी।

व्याख्या : बाणभट्ट कहता है कि उसने अपने से प्रेम करने वाली निपुणिका (जिसे वह प्रेम से **'निउनिया'** कहा कर पुकारा करता था) को उसने अपने द्वारा स्थापित नाट्य–मण्डली में आने और काम करने की अनुमति सहज भाव से ही प्रदान कर दी थी। वैसे भी उसकी इस मण्डली में नारियाँ नरों की अपेक्षा अधिक सुख और सुविधा का अनुभव किया करती थीं। इसके बाद वह इस सामान्य–से अपने विचार का भी प्रकाशन करता है कि समाज में प्रायः जिन नारियों को चंचल और कुलच्छनी माना जाता रहा है, उनमें कहीं गहरे में एक दैवी शक्ति भी छिपी हुई हुआ करती है। वास्तव में कोई भी नारी कभी कलंकिता या दोषिनी नहीं हुआ करती है। दोष तो सारे–का–सारा समाज और उसकी दूषित व्यवस्था में ही हुआ करता है। ये पुरुष ही हैं, जिन्होंने अपनी कामवासना की अग्नि को शान्त करने के प्रयोजन से ही नारी जाति को इस प्रकार के कठघरों में क़ैद करके रखा हुआ है, जहाँ उनकी काम–पिपासा की बिना किसी बाधा के शान्ति होती रहे। ऐसा करने वाले लोग प्रायः नारी मात्रा के भीतर सदैव वर्तमान रहने वाली पवित्राता को बिसरा बैठते हैं और उसे काम–वासना की पूर्त्ति का साधन मात्रा बना दिया करते हैं। वास्तव में नारी तो मूल रूप में त्यागशीलता, दया, ममता, करुणा और कोमलता की ही प्रतिमा हुआ करती है। अतः यदि कोई पुरुष किसी नारी को देवी के तुल्य सम्मान देता है, तो फिर उसे वह मांसलता की मूर्त्ति कभी दिखाई दे ही नहीं सकती है। फिर बाण तो कभी भूल कर भी ऐसा नहीं कर सकता है। इससे आगे बाण यह भी कहता है कि वह नारियों के विरुद्ध की जाने वाली आलोचनाओं को रंच मात्रा भी सहन नहीं कर सकता है। उसने मंडली की नारियों की एक सुंदर और स्वच्छ छवि बनाए रखने के लिए उनसे किसी भी पुरुष की बातचीत तक पर प्रतिबन्ध अर्थात् पाबन्दी लगा रखी थी। इससे जनता में यह प्रवाद प्रचलित हो चुका था कि बाण की नाटक–मण्डली में काम करने वाली नारियाँ बन्धन या क़ैद में ही रहा करती हैं। इसके बाद वह निपुणिका से उसकी अनुमति ले कर उसे धीरे–धीरे रंगमंच पर अभिनय करने के लिए भी उतारने लग गया था।

गद्य–सौष्ठव :

1. इन पंक्तियों में बाण ने नारी जाति के प्रति अपने विचारों को सीधी और सरल भाषा में **प्रसाद गुण** के साथ पूरी तरह से प्रकाशित किया है। उसके हार्दिक भावों की इस अभिव्यक्ति से न केवल निपुणिका की चरित्रागत पवित्राता पर ही मुहर लगती है, अपितु उसके अपने चरित्रा की पावनता और निश्छलता का भी एक पुष्ट प्रमाण मिलता है।

2. बाण के द्वारा नारी की देह को बार–बार पवित्रा कहने से कहीं यह ध्वनि भी व्यंजित होती है, कि उस काल के समाज में कहीं नारी–जाति को अपवित्रा बनाने वाले अवांछनीय तत्त्व सक्रिय हो रहे थे, जिससे नारी मात्रा के प्रति पावनता और निश्छलता की भावनाओं को करारा आघात लग रहा था। इसके साथ ही विद्वान् लेखक ने 'आधुनिक' कहे जाने वाले वर्तमान काल में नारी–जाति के प्रति ढाए जाने वाले अत्याचारों और दमन या शोषण के हथकंडों के कारण उसकी दुर्दशा को अतीत के एक काल–खण्ड विशेष में चित्रित करके मानो अपने इस उपन्यास को एक प्रासंगिकता और समय–संगति के गुण से भी मण्डित कर दिया है।

3. इस गद्यांश से यह बात भी विशेष रूप से ध्वनित होती है कि समाज जिन नारियों को चंचल और पतिता समझा करता है, कई बार उन्हीं में देवत्व के गुण भी लुके–छिपे रहा करते हैं। अतः आवश्यकता उन्हीं गुणों को उभार कर सामने लाने की हुआ करती है। इस प्रकार इन पंक्तियों में एक विशेष प्रकार की नैतिकता और सौन्दर्य–चेतना की सम्भावनाओं को निहित करना केवल आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी का ही हिस्सा हो सकता था।

गद्यांश 2. "सद्धर्म में कुतर्क का प्राबल्य बढ़ रहा है, आयुष्मान् ! संयत बन कर आचार्यों के वाक्य का तात्पर्य अनुशीलन कर। कुतर्क सद्विचारों की दावाग्नि है।" –(पृष्ठ 54)

प्रसंग : यह गद्यांश पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला की एम.ए. हिन्दी कक्षा के प्रथम भाग में चतुर्थ पत्रा के अन्तर्गत 'आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी : विशेष अध्ययन' में निर्धारित उनके ऐतिहासिक उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' के चतुर्थ उच्छ्वास अर्थात् अध्याय या परिच्छेद से चुना गया है। इन पंक्तियों में लेखक ने बौद्ध धर्म के आचार्य सुगत भद्र के मुख से ये विचार कहलवाए हैं। अपने काल के धर्म की दुरवस्था पर विचार करते हुए वे कहते हैं कि उसमें कोरा बौद्धिक वाग्जाल ही बढ़ता जा रहा था। अब धर्म मानव मात्रा के लिए हितकारक नहीं रह गया था। वास्तव में धर्म तो हृदय के द्वारा माने और समझे जानी वाली वस्तु ही हुआ करती है। यदि कोई व्यक्ति तर्कों और कुतर्कों की सहायता से किसी भी धर्म की अन्तरात्मा तक पैठ कर उसे समझने का प्रयास करता है, तो उसके हाथ केवल निराशा ही लगा करती है। अतः धर्म के सम्बन्ध में बहुत सोच–विचार करके ही कोई निर्णय लेना या विचार करना युक्तियुक्त हुआ करता है।

चूँकि आजकल धर्म के क्षेत्रा में हार्दिकता के स्थान पर बौद्धिकता का ही प्राधान्य होता चला जा रहा है, इसीलिए धर्म की कोमल भूमि से भी कोमलता, मानवीयता और संवेदनशीलता का भी धीरे–धीरे लोप होता चला जा रहा है। यह एक शोचनीय स्थिति ही है। इधर ढोंगी बुद्धिजीवियों ने धर्म के क्षेत्रा में हृदय के स्थान पर मस्तिष्क की प्रधानता करने का व्रत ले रक्खा है, जिससे वह ज्ञान की जटिलताओं से दिनोंदिन बोझिल ही होता चला जा रहा है। धार्मिक बाह्याचारों और पाखंडों के कारण धर्म के पावन मनभावन क्षेत्रा को भी गँदला किया जा रहा है। जो धर्म विशुद्ध और दोषहीन है, उसकी अनायास ही धज्जियाँ उड़ाई जा रही हैं। लोग अपने–अपने स्वार्थों की ही हर समय पूर्त्ति करने–कराने की चिन्ता में लीन दीखते रहते हैं। बौद्ध धर्म की दोनों शाखाओं महायान और हीनयान के समर्थकों में परस्पर ईर्ष्या–भावना के फलस्वरूप एक दूसरे पर कीचड़ उछालने की प्रवृत्ति दिनोंदिन बढ़ती ही चली जा रही है। विभिन्न धर्मों के प्रचारक परस्पर तर्क–वितर्क करके वातावरण को दिनोंदिन विषैला किए जा रहे हैं। इन सब गतिविधियों से धर्म के प्रति एक ओर तो जनसाधारण का विश्वास उठता चला जा रहा है और इसके साथ ही दूसरी ओर, धार्मिक और सामाजिक अन्धविश्वासों में उनकी आस्था पहले से अधिक भी होती जा रही है। यदि कोई सद्गुरु ऐसे दिग्भ्रमित लोगों को सच्चे धर्म के मार्ग पर चलाना चाहता भी है, तो धर्म के ढोंगी ठेकेदार उस सच्चे गुरु के ही विरुद्ध उठ खड़े होते हैं। इस प्रकार इन पंक्तियों में लेखक ने धर्म के क्षेत्रा में सही विचार–विमर्श करने की आवश्यकता की ओर संकेत किया है।

गद्य–सौष्ठव :

1. चूँकि धर्म हार्दिक आस्था का ही क्षेत्रा या विषय हुआ करता है, अतः धर्म से प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में जुड़ी बातों को आधार बना कर धर्म–पथ के पथिकों को व्यर्थ ही तर्कजाल में ग्रस्त हो कर धर्म की सच्ची सेवा करने–कराने वाले लोगों से तर्क–वितर्क करके अपने बहुमूल्य समय को कभी नष्ट नहीं करना चाहिए।

2. आचार्य सुगत भद्र ने सम्राट् हर्षवर्द्धन के काल में समाज के विभिन्न क्षेत्राों में धार्मिक जनों के द्वारा व्यर्थ का वाग्जाल फैला कर साधारण जनों को भ्रमित करने की प्रवृत्ति की कटु आलोचना की है।

3. यहाँ गद्य की **समास शैली** का प्रयोग किया गया है, जिसमें कम–से–कम शब्दों में अधिकाधिक बातें कहने का ढंग अपनाया जाता है। दूसरे शब्दों में, इस शैली में वैचारिक धरातल पर 'गागर में सागर' भरने की नीति या शैली का ग्रहण करने से एक विशेष प्रकार की सामासिकता का समावेश लेखन या भाषा में हो जाया करता है।

4. इस गद्यांश में बौद्ध धर्म के दार्शनिक आचार्य मठाधीशों के द्वारा समाज के लोगों का शोषण करने की दुर्नीति पर कटाक्ष किया गया है। इन पंक्तियों में विद्वान् आचार्य अपने शिष्यों के साथ उपदेशपरक शैली में बात करने का एक उदाहरण प्रस्तुत करते हैं।

6. **'कुतर्क सद्विचारों की दावाग्नि है** यह पंक्ति अपने आप में एक स्तरीय सूक्ति है।

गद्यांश 3. "क्या बताऊँ, भट्ट ! मेरे जैसी स्त्राी तुम्हारे जैसे पुरुष से क्यों डरती है, यह बात अगर आज तक तुम्हारी समझ में नहीं आई, तो अब नहीं आएगी।" –(पृष्ठ 59)

व्याख्या : प्रसंग : यह गद्यांश पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला की एम॰ए॰ हिन्दी कक्षा के प्रथम भाग में चतुर्थ पत्रा के अन्तर्गत 'आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी : विशेष अध्ययन' में निर्धारित उनके ऐतिहासिक उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' के पंचम उच्छ्वास अर्थात् अध्याय या परिच्छेद से चुना गया है। इन पंक्तियों में निपुणिका बाण से बातचीत के मध्य उससे कहती है कि आज ही प्रभात के समय वह उससे भयभीत थी। यह कथन उस समय का है, जब बाण की सहायता से निपुणिका भट्टिनी को अपने साथ ले कर चण्डी देवी के मन्दिर में पहुँच जाती है। बाण उसकी उपस्थिति में अपने काम की डींग–सी हाँकने लग जाता है। वह स्वीकार करता है कि उसी के कारण से वह भट्टिनी को मौखरी वंश के उस छोटे–से घृणित राजकुल से बाहर निकाल कर चण्डी मन्दिर में ले आने में सफल रहा है। उसकी यह बात सुन कर निपुणिका उससे भयभीत होने की बात कहती है। वैसे वह अपने स्वभाव के अनुसार पर्याप्त निर्भीक और साहसी नारी ही रही है। इसके अतिरिक्त वह प्रत्युत्पन्नमति अर्थात् हाज़िरजवाब और बुद्धिमती स्त्राी ही कही जा सकती है। यद्यपि वह बाणभट्ट जैसे अपने साथी से तो भयभीत होने की बात कह देती है, तथापि वह भयानक वेश वाले चण्डीमन्दिर के पुजारी से तनिक भी भयभीत नहीं होती है। यहाँ यह बात भी ध्यान रखने की ही है कि एक बार इससे पहले वह बाण की सेवा में अपने प्रेमजन्य समर्पण के भाव को ले कर जा चुकी थी, परन्तु उसका कोई सार्थक फल उसे नहीं मिला था। वह अपने दिल की गहराई से उससे प्रेम करती है, जिसकी चरम परिणति उपन्यास के अन्त में नाटिका 'रत्नावली' में नायिका का अभिनय करते हुए उसके निधन में ही होती है। वह प्रेम के प्रसंग में आजीवन अपने पर पूरा नियन्त्राण ही रखे रहती है और प्रेम की पवित्राता का एक महान् आदर्श संसार के सामने रखती है। बाण भी उससे प्रेम तो करता है, परन्तु जहाँ निपुणिका का प्रेम मात्रा दैहिक तृप्ति को ले कर ही चलता है और आगे बढ़ना चाहता है, वहाँ बाण उससे दैहिक की अपेक्षा आत्मिक कोटि का प्रेम ही करता है। उसने उससे प्रेम करते हुए भी अपने मन पर पूरा नियन्त्राण स्थापित किया हुआ है। यही कारण है कि वह नारी–देह को पवित्रा और मन्दिर की प्रतिमाओं की ही तरह से पूजनीय समझता रहा है। बाबा से भी बातचीत करते हुए वह अपने ऐसे ही विचारों की अभिव्यक्ति करता नज़र आता है। चूँकि निपुणिका केवल देह के धरातल पर ही उससे प्रेम करती है, इसीलिए उसकी आत्मिक शक्ति के सामने मन–ही–मन में अपने को कहीं बेहद कमज़ोर, असमर्थ और विवश भी समझती रहती है। यही कारण है कि वह अपने ही प्रेमी से भयभीत होने की बात उससे ही कह जाती है।

गद्य–सौष्ठव :

1. जहाँ लौकिक प्रेम में अस्थिरता और चंचलता देखी जाती है, वहाँ आत्मिक स्तर के प्रेम–भाव में सदैव एक प्रकार की उदात्तता और उच्चता रहा करती है। जहाँ पहले प्रकार के प्रेम में **भोग–तत्त्व** ही प्रमुख होता है, वहाँ दूसरे प्रकार के प्रेम में **त्यागशीलता** का महान् आदर्श निहित हुआ करता है। यही कारण है कि निपुणिका कहीं भीतर–ही–भीतर अपने को अपने प्रेमी बाण के सामने तुच्छ और हीनतर मान कर उससे अस्वीकार सुनने की

आशंका के कारण सदैव भयभीत–सी ही मुद्रा में दीख पड़ती है।

2. प्रायः नारियों में यह बात देखी जाती है कि वे जिस व्यक्ति से प्रेम करती हैं, उससे कुछ–न–कुछ भयभीत भी रहा करती हैं। स्वर्गीय दुष्यन्त कुमार ने इसके ठीक विपरीत अपने एक शे'र में पुरुष को अपनी प्रिया के सामने भयभीत दिखलाया है। उनका शे'र है, "तुम किसी रेल–सी गुज़रती हो, मैं किसी पुल–सा थरथराता हूँ"।

इन पंक्तियों में एक प्रिया का अपने प्रिय के सामने एक कम्पित नारी की–सी दशा में उपस्थित होना अधिक स्वाभाविक कहा जाएगा।

गद्यांश 3. "ब्राह्मण पर तुम्हारा कोप व्यर्थ है। वह न भिखारी होता है, न महासन्धिविग्रहिक। वह धर्म का व्यवस्थापक होता है।" –(पृष्ठ 66)

प्रसंग : यह गद्यांश पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला की एम.ए. हिन्दी कक्षा के प्रथम भाग में चतुर्थ पत्रा के अन्तर्गत 'आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी : विशेष अध्ययन' में निर्धारित उनके ऐतिहासिक उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' के पंचम उच्छ्वास अर्थात् अध्याय या परिच्छेद से चुना गया है। इन पंक्तियों में आचार्य सुगत का राजकुमार कृष्णवर्द्धन के प्रति उपदेशपरक वक्तव्य देखा जा सकता है। आचार्य प्रवर ने दो टूक शब्दों में राजवंश के इस दिग्भ्रमित राजकुमार को खूब खरी–खरी सुनाई हैं।

व्याख्या : ये शब्द बौद्ध धर्म के श्रेष्ठ आचार्य सुगत भद्र के द्वारा ही कहे गए हैं और मौखरी वंश के छोटे कुल के कुमार कृष्णवर्द्धन को सीधे सम्बोधित हैं। इन शब्दों के साथ ही वे राजकुल में चलने वाले भोग–विलासों पर भी व्यंग्य–बाण छोड़ने में किसी प्रकार का कोई भी संकोच अनुभव नहीं करते हैं। इसी से इनकी निर्भीकता और साहसिकता का पता चलता है। आचार्य सुगत भद्र एक ब्राह्मण को परम ज्ञानी और सत्य का सही व्याख्याकार मानते हैं। वे उसे सदैव अपनी कथनी और करनी में एकता रखने वाला तत्त्वज्ञ प्राणी समझते हैं और उसी के पक्ष की बात करते प्रतीत होते हैं। इससे उनकी ब्राह्मणवादी धारणा की ही पुष्टि होती है। वह एक ब्राह्मण को सदैव परम सत्य का प्रचार करने वाला ही ठहराते हुए उसकी भूरि–भूरि प्रशंसा भी करते हैं।

आचार्य के कहने का आशय यह है कि समाज में एक ब्राह्मण व्यक्ति स्वयं कभी भी राजा का पद ग्रहण नहीं करना चाहता है, अपितु वह तो किसी सुयोग्य व्यक्ति को ही राजा बना देने की भूमिका सम्पन्न करने तक ही अपने को सीमित करता है। महर्षि चाणक्य ने भी इसी प्रकार सम्राट् चन्द्रगुप्त को सम्राट् बनाने में एक महती ऐतिहासिक भूमिका सम्पन्न की थी। यही कारण है कि एक सच्चा ब्राह्मण किसी महल या प्रासाद आदि में निवास करने के स्थान पर सदैव किसी कुटिया में ही आजीवन रहने को वरीयता (अधिमान) प्रदान किया करता है। इस दृष्टि से आचार्य सुगत भद्र ब्राह्मण जाति के व्यक्तियों को पूर्ण रूप से निःस्वार्थ और परहितैषी ही ठहराते हैं। यह एक विशुद्ध ब्राह्मणवादी धारणा या विचार ही कहा जाएगा।

वास्तव में एक सच्चा ब्राह्मण अपने जन्म से ब्राह्मण नहीं होता है, अपितु अपने ब्रह्म–ज्ञान से ही इतना श्रेष्ठ हुआ करता है कि सारा समाज उसके द्वारा प्रदर्शित पथ पर आँखें मूँद कर चलता रहे। यह और बात है कि कुछ ब्राह्मण जन भी राजसत्ता के लोभों में पड़ कर कभी–कभार अपने प्रशंसनीय ज्ञान से वंचित हो जाया करते हैं। ऐसी स्थिति में वे धर्म की संस्थापना करने वाला अपने प्रमुख लक्ष्य और जातीय चरित्रा भूल जाया करते हैं। वे यह भी भूल जाते हैं कि वे तो वास्तव में विश्व–कल्याण और परहित के लिए ही समाज में अन्य सभी वर्गों के व्यक्तियों से अधिक समादर के पात्रा माने जाते रहे हैं।

गद्य–सौष्ठव :

1. इन पंक्तियों में बौद्ध आचार्य सुगत भद्र एक सच्चे ब्राह्मण का आदर्श प्रस्तुत करते हैं और उसे समाज और संसार में धर्म का संस्थापक घोषित करते हैं।

2. इसी प्रकार वे उसके स्वाभिमान को उसका नित्य स्वभाव ठहराते हुए उसे एक तुच्छ भिखारी समझने की भूल न करने या उसकी तरह से एक याचक होने या माने जाने का विरोध करते हुए राजकुमार कृष्णवर्द्धन को सदुपदेश करते हैं। उनके स्वर में कटाक्ष और व्यंग्य का स्वर देखते ही बनता है।

3. इन पंक्तियों में भी गद्य की **समास–शैली** अपनाते हुए थोड़े में बहुत–कुछ कह जाने की चेष्टा की गई है।

4. गुप्त वंश से ले कर हर्ष के काल तक राजप्रशासन के क्षेत्रा में महासन्धिविग्रहिक सेना के एक उच्च पद का नाम होता था। यहाँ आचार्य सुगत भद्र राजकुमार कृष्णवर्द्धन से बात करते हुए ब्राह्मण को किसी ऐसे ही राजसी पद से कहीं ऊपर का व्यक्ति ठहराते हैं। कुल मिला कर इन शब्दों में **ओज गुण** माना जा सकता है।

गद्यांश 4. "जब तक तुम पुरुष और स्त्राी का भेद नहीं भूल जाते, तब तक तुम अधूरे हो, अपूर्ण हो, आसक्त हो। तुम और मैं का भेद तब तक तुमसे निरन्तर चिपटा रहेगा। अगर तुम में नैरात्म्यभावना की प्रवृत्ति होती, तो शक्ति के बिना भी साधना चल सकती। तुम में यह प्रवृत्ति नहीं है। पर मैं अपनी ओर से यह साधना तुम्हारे लिए लादना नहीं चाहता। तुम्हारी रुचि हो, तो स्वीकार करो। देखो, न तो प्रवृत्तियों को छिपाना उचित है, न उनसे डरना कर्त्तव्य है और न लज्जित होना युक्तियुक्त है। इतनी बात गाँठ बाँध लो, फिर गुरु के उपदेश पर चलते रहो। आज तुम चक्र में एकत्रा बैठ सकते हो।"

प्रसंग : यह गद्यांश पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला की एम.ए. हिन्दी कक्षा के प्रथम भाग में चतुर्थ पत्रा के अन्तर्गत 'आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी : विशेष अध्ययन' में निर्धारित उनके ऐतिहासिक उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' के षष्ठ उच्छ्वास अर्थात् अध्याय या परिच्छेद से चुना गया है।

व्याख्या : अघोर भैरव विरतिवज्र को देख कर अपनी भीतरी आँखों से यह निष्कर्ष निकालता है कि उसने जो संन्यास लिया है, वह मात्रा देह से ही लिया है, किन्तु इसके विपरीत उसका मन अभी तक इस मायाग्रस्त संसार के साथ बँधा हुआ है और वह उससे पूरी तरह से मुक्त नहीं हो पाया है। उसका मन इसी कारण से आज तक अशान्त है। वह आज तक सदा ही निराशा की धुँध में डूबा रहा है। वह इस मानवीय जीवन को आज तक अच्छी प्रकार से समझ ही नहीं पाया है। अन्त में थक–हार कर ही वह अघोर भैरव की शरण में आया है। यही कारण है कि उसके अन्तर्मन में भली प्रकार से झाँक कर ही वह इन निष्कर्षों पर पहुँच पाया है। वह कहता है कि जब तक कोई साधक इस संसार में रहते हुए पुरुष और स्त्राी के अन्तर को मिटा कर उन दोनों में एकता की स्थापना नहीं करता है, तब तक वह पूरी तरह से निर्बल और अधूरा ही कहा जाएगा। विरतिवज्र ने अपने बचपन में मोक्ष पाने की बलवती इच्छा के कारण ही अपना घर–बार छोड़ कर संन्यास धारण कर लिया था और बौद्ध धर्म में जा कर दीक्षा भी ग्रहण कर ली थी। सुचरिता के पति के रूप में उसने अपना अधिकार भी छोड़ दिया था। उसके बाद भी उसका मन निराश और अशान्त ही बना रहता है और अपनी मानसिक दुविधा मिटाने के लिए सीधे अघोर भैरव की शरण में चला आता है।

वास्तव में स्त्राी और पुरुष दोनों ही मूलतः शिव के ही अंग या तत्त्व हैं और आगे भी रहेंगे। एक साधक तो उसकी दृष्टि में स्वयं किसी देवता के समान हुआ करता है। यही कारण है कि उसके लिए यह बात अत्यन्त आवश्यक हो जाया करती है कि वह स्त्राी और पुरुष दोनों में किसी भी भेद को स्वीकार न करे और इस

लौकिक जगत् और सारी प्रकृति को आत्मरूप ही समझा करे, क्योंकि हमारी आँखों के सामने जो कुछ दिख रहा है या घटित हो रहा है, वह सारे–का–सारा क्रियाकलाप उसी एक ईश्वर की शक्ति और सौन्दर्य का ही प्रतिफल कहा जा सकता है।

एक साधक को शिष्य के रूप में चाहिए कि वह अपना सारा दिल पूरी तरह से अपने गुरु के सामने खोल कर धर दे और तुम और मैं के अन्तर को कभी भी स्वीकार न करे और न ही उससे सदैव बँधा रहे। उसने विरतिवज्र से यह भी कहा कि वह प्रभु से शक्ति पाए बिना कोई भी तपस्या कभी भी फलीभूत नहीं हो सकती है। उसमें **नैरात्म्य–भावना** जैसी कोई भी प्रवृत्ति नहीं है। इसके साथ ही यह भी एक कटु सत्य है कि वह उस तपस्या को अपनी ओर से उस पर थोपना नहीं चाहता है। यदि उसकी अपनी रुचि उस साधना को ग्रहण करके उसे करने की है, तो वह उसे अपना सकता है। उसकी ओर से उसे ऐसा करने की कोई भी बाध्यता या विवशता नहीं है।

अन्त में अघोर भैरव विरतिवज्र को यह उपदेश भी करता है कि मानव की जो मूल काम–भाव जैसी प्रवृत्तियाँ हैं, उसे न तो उन्हें छिपा कर रखना चाहिए और न ही उनसे भयभीत हो कर अपना जीवन जीना चाहिए। ऐसी गोपनीय प्रवृत्तियों को जब कभी वह अपने भीतर पनपता हुआ देखे या अनुभव करे, तो उनसे उसे किसी प्रकार की कोई लज्जा भी नहीं होनी चाहिए। उसे यह बात अपने मन में अच्छी प्रकार से बिठा लेनी चाहिए। उसके बाद उसे बिना अधिक विचार या चिन्तन–मनन किए अपने सच्चे गुरु के सदुपदेशों के अनुसार जीवन और जगत् में आचरण और व्यवहार करना चाहिए, यही उसके लिए सबसे अच्छा करणीय कर्म होता है।

गद्य–सौष्ठव :

इन पंक्तियों से पता चलता है कि जिस कौल मार्ग से अघोर भैरव जुड़ा हुआ है, उसमें भय नहीं किया जाता है। जब एक साधक अपने गुरु तक से डरना छोड़ देता है, तभी वह पूरी तरह से निर्भय हो जाया करता है। उसे काम–भाव जैसी अपनी मूल मानवीय प्रवृत्तियों को सीधे ढंग से प्रकाशित करते रहना चाहिए। एक निर्भीक साधक ही सही तरीके से अपनी साधना के साथ न्याय कर सकता है। अघोर भैरव विरतिवज्र को सदुपदेश करते हुए बार–बार इसी बात पर बल देता है। वह उसे गुरु, वेद आदि किसी से भी न डरने के लिए कहता नज़र आता है। इसका कारण केवल यही है कि वह भय को ही साधना के पथ की सबसे बड़ी बाधा समझता है। किसी भी पथ–बाधा से मुक्त होने पर ही एक साधक अपने लक्ष्य की प्राप्ति कर सकता है। जब कोई साधक गहरी अनुभूतियाँ करते हुए साधना में लीन होता है, तब वह भय और काम जैसी मानव मात्रा की मूलभूत प्रवृत्तियों को छिपाना और उनसे सन्त्रास्त होना छोड़ दिया करता है। इसके साथ ही उसका यह दृढ़ विचार है कि जिस साधक ने अपनी भीतरी मूल प्रवृत्तियों का कभी भी प्रकाशन नहीं किया है, वह साधना के द्वार तक पहुँचने में सदैव असमर्थ ही रहा करता है। ऐसा करके वह मानव के मनोविज्ञान के विरुद्ध ही कार्य कर रहा होता है, जोकि किसी भी प्रकार से उसके या समाज के लिए लाभप्रद कार्य नहीं कहा जाएगा।

गद्यांश 5 "स्त्री प्रकृति है। वह उसकी सफलता पुरुष को बाँधने में है, किन्तु सार्थकता पुरुष की मुक्ति में है।"(पृष्ठ 88)

प्रसंग : यह गद्यांश पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला की एम.ए. हिन्दी कक्षा के प्रथम भाग में चतुर्थ पत्रा के अन्तर्गत 'आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी : विशेष अध्ययन' में निर्धारित उनके ऐतिहासिक उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' के षष्ठ उच्छ्वास अर्थात् अध्याय या परिच्छेद से चुना गया है।

व्याख्या : यहाँ उपन्यास में महामाया के द्वारा योगमाया के सिद्धान्त पर विस्तार से विचार किया गया है। उसकी इसी सन्दर्भ में जो भी स्थापनायें या मान्यतायें हैं, यहाद उन्हीं में से सूत्रा रूप में कही गई स्थापना या धारणा दी

गई है। वह यहाँ कथानायक बाण को नारी मात्रा के तीन रूपों का आख्यान करती है और अपने जीवन–दर्शन की एक गम्भीर व्याख्या या विवेचना करने की चेष्टा करती दीख पड़ती है। यदि सफलता की बात करें, तो कहना होगा कि नारी जब पुरुष को अपने बन्धन में बाँध लेती है, तब वह सही अर्थ में सफल हो जाया करती है। इसी प्रकार जब वह इस महत्त्वपूर्ण कार्य की सम्पन्नता के बाद पुरुष को स्वयं ही मुक्त कर देती है, तब मानो उसका अपना पूरा जीवन ही सार्थक हो जाया करता है। सार्थकता पुरुष की मुक्ति में है।"

–(उपन्यास, पृष्ठ 88)

सफलता शब्द को महामाया योग की साधना के अर्थ या सन्दर्भ में प्रयुक्त करने के बाद **'सार्थकता'** शब्द की दार्शनिक मीमांसा करने की चेष्टा करती नज़र आती है। उसका यह दृढ़ विचार है कि उसने अपने जीवन में यही एक निष्कर्ष निकाला है कि सभी प्रकार के जप–तप, साधनायें और भजन आदि अपने जीवन में सही अर्थ में सार्थकता पाने के लिए ही हुआ करते हैं और वह सार्थकता अपने द्वारा पहले बाँधे गए पुरुष को पूरी तरह से अपने बन्धनों से मुक्त करने में ही उसे प्राप्त हो सकती है, अन्यथा कभी नहीं। एक नारी को पुरुष को अपना इष्ट देवता मान कर चलना तो अवश्य चाहिए, किन्तु उसे लौकिक मोह और ममता को सदैव आत्मिक मोह और ममता में बदल देने का आध्यात्मिक महत्त्व का कार्य करना चाहिए। जब उसके मन में एक विशुद्ध रागात्मिक भावना जन्म ले लेती है, तब समझो कि वह सार्थकता की ओर तीव्र गति से अपने पग बढ़ाने लग गई है। एक नारी अपने भीतर के सभी प्रकार के बुरे संस्कारों और भावों का दमन करके ही ऐसा अनुभव कर सकती है। इस दृष्टिकोण से देखने–समझने पर यह कहा जा सकता है कि इस विवेच्य उपन्यास में निपुणिका, भट्टिनी और महामाया तीनों के चरित्रा या तो सार्थकता पा चुके हैं, या फिर पाने की ओर तेज़ी से अग्रसर हैं।

इसके बाद महामाया एक सुघड़ या आदर्श गृहिणी की सार्थकता का इसी रूप में प्रतिपादन करती है कि उसे अपने रूप–शृंगार, आत्म–समर्पण और सेवा की निःस्वार्थ भावना से अपने को अपने पति के आगे समर्पित कर देना चाहिए। उसे पुरुष को सदैव अपने प्रति आसक्त रखने की चेष्टा करते रहना चाहिए। कौल मार्ग की साधना में भी नारी मात्रा को हितकारिणी, सुख–मोददायिनी और सौन्दर्यशालिनी घोषित किया गया है। चूँकि इस संसार के रचनाकार ईश्वर ने अपने भीतरी सौन्दर्य को प्रकाशित करने के प्रयोजन से प्रकृति की रचना की है, इसीलिए नारी मात्रा को भी प्रकृति के साथ एकाकार करके उसे भी **'प्रकृति'** की ही संज्ञा से मण्डित करना युक्तियुक्त और तर्कसंगत प्रतीत होता है।

गद्य–सौष्ठव :‼

1. इन पंक्तियों में गद्य की **समास शैली** का ही प्रयोग किया गया है।

2. सफलता और सार्थकता शब्दों में सूक्ष्म अन्तर दिखाने में अर्थ–सम्बन्धी गम्भीरता और दार्शनिकता का गहरा अंश है। वाक्य हमें सोचने के लिए बाध्य कर देता है।

3. महामाया यहाँ स्वयं एक नारी हो कर उसके जमाबिन्दु गिनाती है कि वह पुरुष को बाँध पाती है, तो यह उसके चरित्रा की सफलता का ही सूचक है, किन्तु उसे सदैव बाँधे रखने से मानो उसका व्यक्तित्व या चरित्रा एक प्रकार से निरर्थक हो जाया करता है। उसे पुरुष को अपने से बाँधने के बाद भी पूरी तरह से स्वतन्त्रा कर देना चाहिए, क्योंकि वह तभी अपने जीवन में एक सार्थक कार्य करने का श्रेय पा सकती है, अन्यथा कभी नहीं। इस प्रकार कम–से–कम शब्दों में **सूक्तिमयी शैली** का प्रयोग करते हुए महामाया एक गहरी बात कह जाती है।

गद्यांश 6. "मैंने स्वेच्छा से यह कैसा बन्धन अपने लिए तैयार कर लिया है। कल तक मैं स्वतन्त्रा था, आज

पराधीन हूँ। मेरे मित्रा अपने नहीं हैं, मेरी गति अपनी नहीं है, मेरा मन अपना नहीं है। क्योंकर ऐसा हुआ? आजीवन फक्कड़ की ज़िंदगी बिताने वाला बाणभट्ट आज अपने को इतना पराधीन क्यों समझ रहा है ?"
–(पृष्ठ 93)

प्रसंग : यह गद्यांश पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला की एम॰ए॰ हिन्दी कक्षा के प्रथम भाग में चतुर्थ पत्रा के अन्तर्गत 'आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी : विशेष अध्ययन' में निर्धारित उनके ऐतिहासिक उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' के षष्ठ उच्छ्वास अर्थात् अध्याय या परिच्छेद से चुना गया है।

व्याख्या : इन पंक्तियों में बाणभट्ट कथानायक अपने जीवन का सिंहावलोकन–सा कर रहा है। वह यहाँ मन–ही–मन चिन्तन करने में लीन नज़र आता है। वह अपने से प्रेम करने वाली निपुणिका और भट्टिनी दोनों ही नारियों के बारे में सोच–विचार कर रहा है। उसे अपने अतीतकालीन जीवन की मस्ती और फक्कड़पना स्मरण आता है और वह अपनी दुर्गति के बारे में पश्चात्ताप के स्वरों में ही यह सब सोच रहा है। वह अपने को उस अभिनेता की तरह अनुभव करता है, जिसका प्रत्येक कार्य मात्रा सूत्राधार के आदेशों का ही मुहताज हो कर रह गया हो। उसे ऐसा लगता है कि इन दोनों नारियों के प्रति उसके मन में कुछ ऐसा आकर्षण और मोह–भाव हो चुका है कि वह अपने स्थान पर जैसे हिल–डुल भी न सकता हो और उसकी अपनी इच्छा और अपना व्यक्तित्व तक जैसे घुल कर रह गया हो। वह इन्हीं सब अन्तर्द्वन्द्वों में ग्रस्त हो कर मन–ही–मन चिन्तातुर हुआ जा रहा है। वह सोचता है कि ऐसी दीन–हीन स्थिति तो उसकी इससे पहले कभी भी न थी। वह अपने मन की कोमलता और कमज़ोरी के कारण ही मानो इन दोनों के पराधीन हो कर ही रह गया है। इससे पहले वह रात भर अपनी नींद सोया और उठा करता था। जब जी चाहता, वह सोते से उठ कर जिधर जी किया, मुँह उठा कर चल दिया करता था। उसके कार्य में किसी भी प्रकार की रोक–टोक करने वाला कोई भी पुरुष या स्त्राी पहले न थी, जबकि अब उसे इन्हीं दोनों नारियों के संकेतों के ही अनुसार अपने सभी काम संचालित करने के लिए सदैव बाध्य होना पड़ता है।

आज की इस परवशता का उत्तरदायी भी वह स्वयं ही है, क्योंकि उसी ने बन्धनों में बँध कर रहने में ही मानवीय जीवन की सारी सार्थकता मानी और समझी थी। यह और बात है कि आज वही उसे अपनी एक भारी भूल ही दिख रही है। यह ठीक है कि प्रत्येक प्रकार का बन्धन मानव अपनी ही इच्छा से स्वीकार किया करता है और एक अर्थ में वही उसके जीवन का सहारा हुआ करता है, जैसे अँधे के हाथ की कोई लाठी हुआ करती है।

यह भी सही है कि बन्धनों की बदौलत ही मानव के जीवन की दिशा निर्धारित होती है और एक प्रकार की आत्मतोष करने वाली सार्थकता भी मिला करती है। उत्तरदायित्वों का अनुभव करके उनका सुचारु रूप से वहन करने में मानव का जीवन सार्थकता का अवश्य अनुभव करता ही है। बाण अब सोचता है कि यह सारी सृष्टि किसी–न–किसी बन्धन के आधार पर ही चल रही है और कदाचित् आगे भी चलती रहेगी। जहाँ बन्धन नहीं हैं, वहाँ बिखरावों का होना भी स्वाभाविक हो जाया करता है। एक जागरूक जीव का जीवन ईश्वर, प्रकृति, देश, विश्व या ईश्वर किसी के साथ भी बँध सकता है। इसके सम्बन्ध में कोई निश्चित अनिवार्यता या विवशता का बन्धन कभी भी नहीं हुआ करता है। बन्धनों के बिना जीवन तो निरर्थक ही हुआ करता है, जबकि बन्धनों वाला जीवन ही सदैव सार्थक और सोद्देश्य हुआ करता है। इस प्रकार इन पंक्तियों में कथानायक बाण अपने विगत जीवन पर जो दृष्टिपात कर रहा है, उसका कारण अपनी वर्तमान निराशा, अकेलेपन और उदासी जैसी नकरात्मक भावनाओं के मूल कारणों की खोज करना ही है। वह इसी निष्कर्ष पर पहुँचता है कि यद्यपि वह निपुणिका और भट्टिनी इन दोनों नारियों के मोह–पाश में बँध कर भी इनमें से किसी एक से भी अपने दिल से प्रेम नहीं कर रहा है और ये दोनों नारियाँ उसके मन को बाँध कर उसी के पूर्व जीवन की स्वतन्त्राता का पूरी तरह से हरण किए जा रही हैं, तथापि बन्धनों के कारण ही

तो जीवन सही अर्थों में जीवन हुआ करता है और बन्धनों के अभाव के कारण मानव मात्रा का समूचा जीवन ही लक्ष्यहीन और निरर्थक हो सकता है।

गद्य–सौष्ठव :

इन पंक्तियों में लेखक का कथ्य या अभिप्रेत यही है कि मानव मात्रा के लिए बन्धन, नियम और संघर्ष की चेतना ही उसके जीवन को एक 'सार्थकता' प्रदान किया करती है। यदि यही न हों, तो उसका यह जीवन एकदम निरर्थक और उद्देश्यहीन हो कर रह जाया करता है। अतः इन पंक्तियों से हमें यही पाठ या शिक्षा मिलती है कि मानव मात्रा को अपने जीवन में संघर्ष आदि से कभी भी घबराना नहीं चाहिए और सदैव उत्साहपूर्वक अपने काम में ही संलग्न रहना चाहिए। यदि वह ऐसा नहीं करेगा, तो आने वाली पीढ़ियाँ उसका अवश्य उपहास किया करेंगी और तब अपने निस्तार के लिए उसे कहीं से कोई सहारा नहीं मिलेगा।

गद्यांश 7. "राज्य–गठन, सैन्य–संचालन, मठ–स्थापना और निर्जन वास पुरुष की ममताहीन, मर्यादाहीन, शृंखलाहीन महत्त्वाकांक्षा के परिणाम हैं। इनको नियन्त्रित कर सकने की एक मात्रा शक्ति नारी है।"

–(पृष्ठ 112–113)

प्रसंग : यह गद्यांश पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला की एम.ए. हिन्दी कक्षा के प्रथम भाग में चतुर्थ पत्रा के अन्तर्गत 'आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी : विशेष अध्ययन' में निर्धारित उनके ऐतिहासिक उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' के षष्ठ उच्छ्वास अर्थात् अध्याय या परिच्छेद से चुना गया है।

व्याख्या : इन पंक्तियों में लेखक के विचार ये हैं कि इस संसार में छोटे–बड़े राज्यों का संगठन करने हो या सेनाओं के संगठन का काम, मठों में जा कर वहाँ की कठिनाइयों का रात–दिन अनुभव करते हुए सामान को अपने मानसिक सन्तोष के लिए एकत्रा करने का काम हो, या फिर वन में किसी प्राणिहीन स्थान पर जा कर रहने की बात हो, ऐसे ही प्रत्येक काम में मानव को अपनी समूची देह को जला–गला देना पड़ता रहा है। सच्चाई यही है कि आजकल के अनेक साधक न तो इस सत्य को जानते हैं और न ही जान कर उसके अनुसार आचरण ही कर सकते हैं। एक नारी का समूचा जीवन अपार कष्ट झेल कर भी दूसरों की सुख–सुविधा के लिए जीना और अपने उसी लय को धीरे–धीरे पाने के लिए प्रयत्नशील होना पड़ता है। मानव जीवन में चरम लक्ष्य आनन्द की प्राप्ति का एक यही कारण कहा जा सकता है। खेद का ही विषय है कि आज के मानव ने अनेक बाहरी कार्यक्रमों का तो सफलतापूर्वक आयोजन किया है, परन्तु उसने प्रकृति कहलवाने वाली महाशक्तिस्वरूपा नारी की हर पग केवल उपेक्षा ही की है। यही उपेक्षा पुरुष के पतन का निरन्तर कारण बनती चली आई है।

गद्य–सौष्ठव :

1. इन पंक्तियों में विद्वान् लेखक आचार्य द्विवेदी ने नारी को ही सम्मान की पात्राा बनाने के लिए यह सुझाव दिया है कि पुरुष मात्रा को भूल कर भी कभी भी उसकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। यहाँ 'गागर में सागर' भरने वाली गद्य की **समास–शैली** का ही प्रयोग किया गया है।

2. राज्य–गठन, सैन्य–संचालन, मठ–स्थापना इत्यादि अनेक शब्द **संस्कृत भाषा के तत्सम शब्द** ही हैं।

गद्यांश 8. "नारीहीन समस्या संसार की भद्दी भूल है। यह धर्म-कर्म का विशाल आयोजन, सैन्य-संगठन और राज्य–व्यवस्था सब फेन बुद्बुद की भाँति विलुप्त हो जायेंगे, क्योंकि नारी का इसमें सहयोग नहीं है। यह सारा ठाट–बाट संसार में अशान्ति पैदा करेगा।"

प्रसंग : यह गद्यांश पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला की एम॰ए॰ हिन्दी कक्षा के प्रथम भाग में चतुर्थ पत्रा के अन्तर्गत 'आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी : विशेष अध्ययन' में निर्धारित उनके ऐतिहासिक उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' से चुना गया है।

व्याख्या : ┐यद्यपि रावण ने भगवान् शिव की उपासना करके एक विशाल साम्राज्य का गठन तक कर लिया था, परन्तु नारी की शक्ति की उपेक्षा करने के कारण ही उसे‼अपने जीवन में भारी विनाश का ही सामना करना पड़ा था। इसी प्रकार इस जीवन में जब–जब किसी सत्तालोभी अहंकारी आदमी ने नारी की शक्ति की उपेक्षा की, तब–तब उसे भारी हानि ही उठानी पड़ी है। मानवता का इतिहास इसी तथ्य का साक्षी रहा है। नारी से लेखक का आशय मात्रा उसकी देह से ही नहीं है, अपितु उसके तत्त्व से ही है। नारी मात्रा का यही धर्म है कि वह पुरुष के भीतर विद्यमान मातृत्व की भावना को सोते से जगाए, क्योंकि ऐसा करने से पूरे संसार का कल्याण हो सकता है। जब नारी के द्वारा ही पूर्ण सहयोग करने से किसी भी पुरुष में नारी–तत्त्व का महान् उदय हो जाएगा, तब जा कर पुरुष के द्वारा समय–समय पर प्रदर्शित होने वाली उच्छृंखल और निरंकुश प्रवृत्तियों का निराकरण होने लगेगा और उसके जीवन और व्यक्तित्व में एक ऐसा सन्तुलन आने लगेगा, जिससे समाज और संसार को निश्चित रूप से लाभ ही होगा। अतः आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी इसी बात का संकेत करते हैं कि पुरुष को नारी से सहयोग ले कर अपने कठोर व्यक्तित्व को कोमल और अपनी उच्छृंखल वृत्तियों पर लाभकारी अंकुश लगाने चाहियें। ऐसा होने पर ही इस संसार का कल्याण सम्भव है, अन्यथा उसका निरंकुश व्यवहार समाज और संसार को कभी भी विनाश के कगार पर ले जा कर खड़ा कर सकता है।

गद्य–सौष्ठव :

1. इस गद्यांश से हमें पुरुष मात्रा के लिए नारी जाति के सहयोग की अपेक्षा और आवश्यकता का महत्त्व पता चलता है। चूँकि नारी मात्रा में अपने को खपा देने, समर्पण करने की अद्‌भुत शक्ति और स्वभावगत प्रवृत्ति आरम्भ से ही विद्यमान रही है, इसीलिए आज उसी शक्ति या विशेषता को उद्‌बुद्ध करके हमें मानवता का कल्याण करने की बात सोचनी चाहिए। दूसरे शब्दों में, नारी के सहयोग को पा कर ही पुरुष के जीवन की जय–यात्राा सार्थक सिद्ध हो सकती है, अन्यथा न तो अर्द्धनारीश्वर की सांस्कृतिक अवधारणा और परिकल्पना का कोई अर्थ या लाभ रह जाएगा और न ही पुरुष जाति में सर्वहितकारी सन्तुलन ही स्थापित हो सकता है। सच्चाई तो यही है कि यह नारी ही है, जिसमें अपने को समर्पण–धर्म के अनुसार अंगूरलता की ही तरह से पूरी तरह से निचोड़ कर दूसरे लोगों को तृप्त–सन्तुष्ट करने की भावना भरी होती है। इसी नारी–तत्त्व में सारी सृष्टि को सन्तुष्ट और लाभान्वित करने के गुण विद्यमान होते हैं, इस सम्बन्ध में कहीं भी दो मत नहीं हैं, हो भी नहीं सकते हैं।

2. **नारीहीन, समस्या, संसार, धर्म, कर्म , विशाल आयोजन, सैन्य, संगठन,राज्य, व्यवस्था, फेन बुद्‌बुद, विलुप्त** इत्यादि सभी शब्द संस्कृत भाषा के तत्सम शब्द ही हैं।

3. लेखक ने ठाट–बाट सामासिक शब्द का अशुद्ध प्रयोग किया है, वास्तव में इसका रूप ठाठ–बाठ ही वैयाकरणों ने शुद्ध प्रयोग माना है।

गद्यांश 9. "अमृत के पुत्राो, मृत्यु का भय माया है। राजा से भय दुर्बल चित्राों का विकल्प है। प्रजा ने राजा की सृष्टि की है। संगठित हो कर म्लेच्छवाहिनी का सामना करो। देवपुत्राों और महाराजाधिराजों की आशा छोड़ो। समस्त उत्तरापथ की लाज तुम्हारे हाथों में है। ....अमृत के पुत्राो ! धर्म की रक्षा अनुनय-विनय से नहीं होती; शास्त्रा–वाक्यों की संगति लगाने से नहीं होती; वह होती है अपने को मिटा देने से। न्याय के

लिए प्राण देना सीखो, धर्म के लिए प्राण देना सीखो। अमृत के पुत्रो ! मृत्यु का भय माया है।"(पृष्ठ193)

प्रसंग : यह गद्यांश पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला की एम.ए. हिन्दी कक्षा के प्रथम भाग में चतुर्थ पत्रा के अन्तर्गत 'आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी : विशेष अध्ययन' में निर्धारित उनके ऐतिहासिक उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' से चुना गया है।

व्याख्या : प्रसंग पूर्ववत् है। ये शब्द **महामाया** जनसाधारण को सम्बोधित करती हुई एक भाषण में कहती है। यह गद्यांश आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी क उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' के चतुर्दश उच्छ्वास से चुना गया है। इसमें महामाया **जनतान्त्रिाक पद्धति** की पैरवी करते हुए प्रजा के द्वारा ही राजा की रचना होने की बात घोषित करती है और लोगों को पूरी तरह से निर्भीकता की गुणवत्ता अपने व्यक्तित्व में धारण करने की भरपूर प्रेरणा देती हुई दीख पड़ती है। इन पंक्तियों में महामाया आधुनिकता–बोध से लैस हो कर ऐसी बातें कहती है, जोकि उसे राष्ट्रीय हितों की साधना से जोड़ देता है। वह मानो सम्पूर्ण आर्यावर्त्त को उद्‌बोधित करने का ही एक महान् कार्य सम्पादित कर रही है। उसकी इस वाणी में मानो स्वयं स्वामी विवेकानन्द का गुरु–गम्भीर घोष ही निनादित हो रहा है। जो अराजकता उस काल में कान्यकुब्ज शासन में चारों ओर धर्म, दर्शन, राजनीति, समाज, सभ्यता और संस्कृति के क्षेत्राों में भिन्न–भिन्न रूपों में परिव्याप्त थी, लगभग वैसी ही स्थिति आज भारत ही नहीं, अन्य अनेक देशों के मानचित्रा पर भी व्यापकता से घटित हो रही है। उस समय भी हमारा यह भारत देश स्वतन्त्रा होने पर भी छोटे–छोटे रजवाड़ों में बँटा हुआ था और उनके विविध शासक, राजा या सामन्त भोग–विलासिता की मदिरा के मद में उन्मत्त हो कर अपने कर्त्तव्य भूल बैठे थे। यही कारण है कि उनमें परस्पर एकजूट हो कर कार्य करने, विशेष रूप से देश पर आक्रमण करने वाले आक्रान्ताओं को सीमाओं से बाहर खदेड़ देने के बारे में चिन्ता तक न थी। वास्तव में यही वह पराधीनता की ऐसी पृष्ठभूमि थी, जिसके कारण हमारा देश आगे चल कर लगभग तीन सौ सालों तक विदेशी शासन के हाथों में कठपुतली बन कर पराधीनता का नरक भोगता रहा था। महामाया की यह भविष्यवाणी आगे चल कर अक्षरशः यथार्थ ही सिद्ध होती है। इस प्रकार हर्षवर्द्धन के शासनकाल से हमें एक विशेष शिक्षा यह मिलती है कि अपने कर्त्तव्यों को भूल कर जब–जब किसी देश या काल के कोई शासक मात्रा भोग–विलासों में ही लिप्त हो कर अपने विभिन्न कर्त्तव्यों से च्युत हो बैठेंगे, तब–तब वे अपनी आगे आने वाली पीढ़ियों के लिए संकटों और समस्याओं की विरासत ही उनके लिए छोड़ जाया करेंगे।

महामाया का यह सुदृढ़ विचार है कि प्रजा ही सदैव राजा का चुनाव या निर्माण किया करती है। अतः उसे उससे डरने का कभी भी कोई कारण नहीं हुआ करता है। विशेषकर अत्याचारी और अन्यायी राजा का विरोध तो जनसाधारण और उनके प्रतिनिधियों को अपने प्राण हथेली पर रख कर सदैव करना ही चाहिए। ऐसा करने से ही वह अपने देश को आने वाले भावी ख़तरों से बचा सकती है, अन्यथा पूरा देश पराधीन हो कर रहा जा सकता है। प्रजा को राष्ट्रीय सुरक्षा का भार केवल राजाओं और देवपुत्राों के कँधों पर छोड़ कर सदैव निश्चिन्त नहीं हो जाना चाहिए। केवल दूसरों के आगे कायरों की तरह से विनम्र भाव से प्रार्थनायें करते रहने से कुछ भी होने वाला नहीं है। इसी प्रकार केवल शास्त्राों में कथित वाग्जाल से हम राष्ट्र की सुरक्षा का विश्वास नहीं कर सकते हैं। यदि नागरिक देश की सुरक्षा के लिए सभी को उत्तरदायी समझेंगे, तभी वह सुरक्षा स्थापित हो पायेगी, अन्यथा कभी नहीं। इसके लिए सबसे पहले नागरिकों को अपने मनों से मृत्यु के उस भय को सदा–सदा के लिए बाहर निकालने के लिए तैयार होना होगा, जिसके बिना न तो हम अपने घर–परिवार की सुरक्षा के प्रति निश्चिन्त हो सकते हैं और न ही पूरे राष्ट्र की सुरक्षा के प्रति पूर्ण रूप से आशावान् हो सकते हैं। अपने धर्म, न्याय, सत्य और स्वतन्त्राता के लिए हमें निर्भय हो जाना होगा। ऐसा करने पर ही हमें देवताओं की ही तरह से अमरता की रसानुभूति सम्भव

हो सकती है।

गद्य–सौष्ठव :

1. इस गद्यांश में लेखक ने महामाया की वाणी में राष्ट्रीय चेतना का ही शंखनाद किया है और जनता को मानो किसी कल्याणी देवी के समान ही अभयदान किया है।
2. इन पंक्तियों में **ओज गुण** ओतप्रोत है और आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी का मानवतावादी सन्देश मुखरित हो रहा है।
3. शैली सरल, स्पष्ट और सुबोध है और उसमें प्रभावशालिता का भी गुण विद्यमान है।
4. इस गद्यांश में भी सदा की तरह संस्कृत के तत्सम शब्दों की भरमार देखी जा सकती है यथा **"अमृत,पुत्रा, मृत्यु, भय, माया, राजा,भय, दुर्बल चित्रा, विकल्प, प्रजा, राजा, सृष्टि, संगठित, म्लेच्छवाहिनी, देवपुत्रा, महाराजाधिराज, आशा** इत्यादि।

1.8.2 शब्दावली :

इन गद्यांशों में अनेक कठिन शब्द आए हैं, जिनमें से कुछ के अर्थ यहाँ कोष्ठकों में दिए जा रहे हैं। छात्राों को चाहिए कि इसी प्रकार उपन्यास से अन्य कठिन शब्दों का चुनाव करके शब्द–कोशों की सहायता से उनके अर्थ लिख कर याद करते रहें।

कुलभ्रष्टा (जिसका वंश ही पतित या गिरा हुआ हो), **दैवी** (अलौकिक, स्वर्गिक), **अननुकूल टीकाओं** (प्रतिकूल आलोचनाओं), **सद्धर्म** (सच्चा धर्म), **कुतर्क** (बुरे तर्क या दलीलें), **आयुष्मान्** (चिरंजीवी, लम्बी आयु तक जीने वाला), **संयत** (संयमपूर्ण, अपने पर नियन्त्राण रखने वाला), **अनुशीलन** (ध्यानपूर्वक अध्ययन या निरीक्षण), **सद्विचारों** (अच्छे विचारों), **दावाग्नि** (जंगल की आग, लक्ष्यार्थ है–विनाश करने वाली या उसकी सूचिका), **महासन्धिविग्रहिक** (राजप्रशासन में सेना का एक उच्च पदवीधारी, सेनापति या कोई और पद, जिसका उत्तरदायित्व **सन्धि** और **शान्ति** जैसे राष्ट्रीय हितों के सन्दर्भ में विचार–विमर्श के बाद कोई निर्णय लेना हुआ करता था), **नैरात्म्य–भावना** (वस्तुनिष्ठ भावना, जिसमें वैयक्तिकता या आत्मनिष्ठता नहीं रहती है और एक प्रकार की तटस्थता की ही वृत्ति प्रधान हुआ करती है), **चक्र** (यहाँ हर्षकाल में होने वाली धार्मिक संगोष्ठी या प्रार्थना–सभा से आशय है), **सार्थकता** (उपयोगिता, अर्थपूर्णता, महत्ता), **आजीवन** (जीवन भर , पूरे जीवन, ताउम्र), **फक्कड़** (अलमस्त, सांसारिक कामों से अलग, अपने में लीन मस्तमौला), **सैन्य संगठन** (सेना को गठित करने का कार्य या व्यवस्था), **निर्जन वास** (वन जैसे किसी एकान्त स्थान में जा कर निवास करना), **मर्यादाहीन** (किसी भी नैतिक सीमा से रहित या विहीन), **शृंखलाहीन** (क्रमहीन, बेतरतीब, बिखरी हुई, असंगठित), **फेन बुद्बुद** (पानी के झाग से बनने वाले बुलबुलों) इत्यादि।

1.8.3 सहायक पुस्तकें :

1. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' (नयी दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, सोलहवाँ संस्करण सन् 2009)
2. डॉ॰ सत्यपाल चुघ, 'प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों की शिल्पविधि' (दिल्ली, प्रथम संस्करण सन् 1967)
3. महेशचन्द्र भारतीय, 'बाणभट्ट और उनका हर्षचरित' (प्रथम संस्करण)

4. डॉ॰ शशिभूषण सिंहल, 'यात्राा–गाथा'(प्रथम संस्करण)

5. डॉ॰ त्रिाभुवनसिंह, 'उपन्यासकार हज़ारी प्रसाद द्विवेदी' (वाराणसी, प्रथम संस्करण)

6. डॉ॰ हरमोहन लाल सूद, 'हज़ारी प्रसाद द्विवेदी का सर्जनात्मक साहित्य' (दिल्ली–94, निर्मल पब्लिकेशन, सन् 1998)

7. डॉ॰ मीरा मिश्रा, 'उपन्यासकार हज़ारी प्रसाद द्विवेदी : ऐतिहासिक सन्दर्भ और आधुनिक बोध' (वाराणसी, विजय प्रकाशन मन्दिर, बी॰ 21/76, कमच्छा, प्रथम संस्करण गंगा दशहरा सन् 1993 ई.)

8. डॉ॰ यश गुलाटी, 'प्रतिनिधि हिन्दी उपन्यास' (चण्डीगढ़, हरियाणा साहित्य अकादमी, प्रथम संस्करण सन् 1989)

9. डॉ॰ कृष्ण भावुक, 'हिन्दी साहित्य का प्रामाणिक इतिहास' (पटियाला, पेप्सु बुक डिपो, संस्करण वर्तमान वर्ष)

10. संपादक डॉ॰ शिवप्रसाद सिंह, आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी :'शान्तिनिकेतन से शिवालिक तक'

11. आचार्य हज़ारीप्रसाद द्विवेदी, निबन्ध–संग्रह 'कल्पलता'

12. नरेन्द्र कोहली, 'हिन्दी उपन्यास : सृजन और सिद्धान्त' (दिल्ली, सौरभ प्रकाशन, प्रथम संस्करण सन् 1979)

13. हज़ारीप्रसाद द्विवेदी–ग्रन्थावली, भाग 10. (नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण)

14. डॉ॰ रामदरश मिश्र, –हिन्दी उपन्यास– एक अन्तर्यात्राा' (नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, तीसरा संस्करण संस्करण सन् 2001)

15. डॉ॰ शशिभूषण सिहल, 'हिन्दी उपन्यास : यात्राा–गाथा'

16. वेदप्रकाश अमिताभ, 'उपन्यासकार हज़ारी प्रसाद द्विवेदी'

17. यदुनाथ चौबे, 'आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी का समग्र साहित्य : एक अनुशीलन'

Mandatory Student Feedback Form

https://forms.gle/KS5CLhvpwrpgjwN98

Note: Students, kindly click this google form link, and fill this feedback form once.